

A g m i s h i k t a

2005

Jan.

Mar.

Apr.

Jun.

Jul.

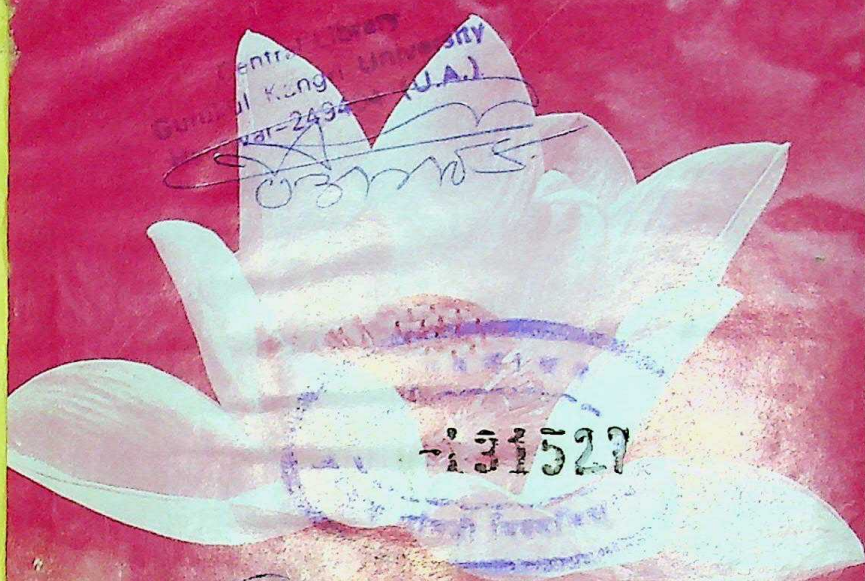
Dec.

Stock Verification-2024

1315-27
Stock Verification-2024



131527



131527

भागवत मुहूर्त

अग्निशिखा

जनवरी २००५



प्रथम काल में

थोड़ा-सा प्रयत्न करने पर
बड़े परिणाम पैदा होते हैं
और भाग्य बदल जाता है;

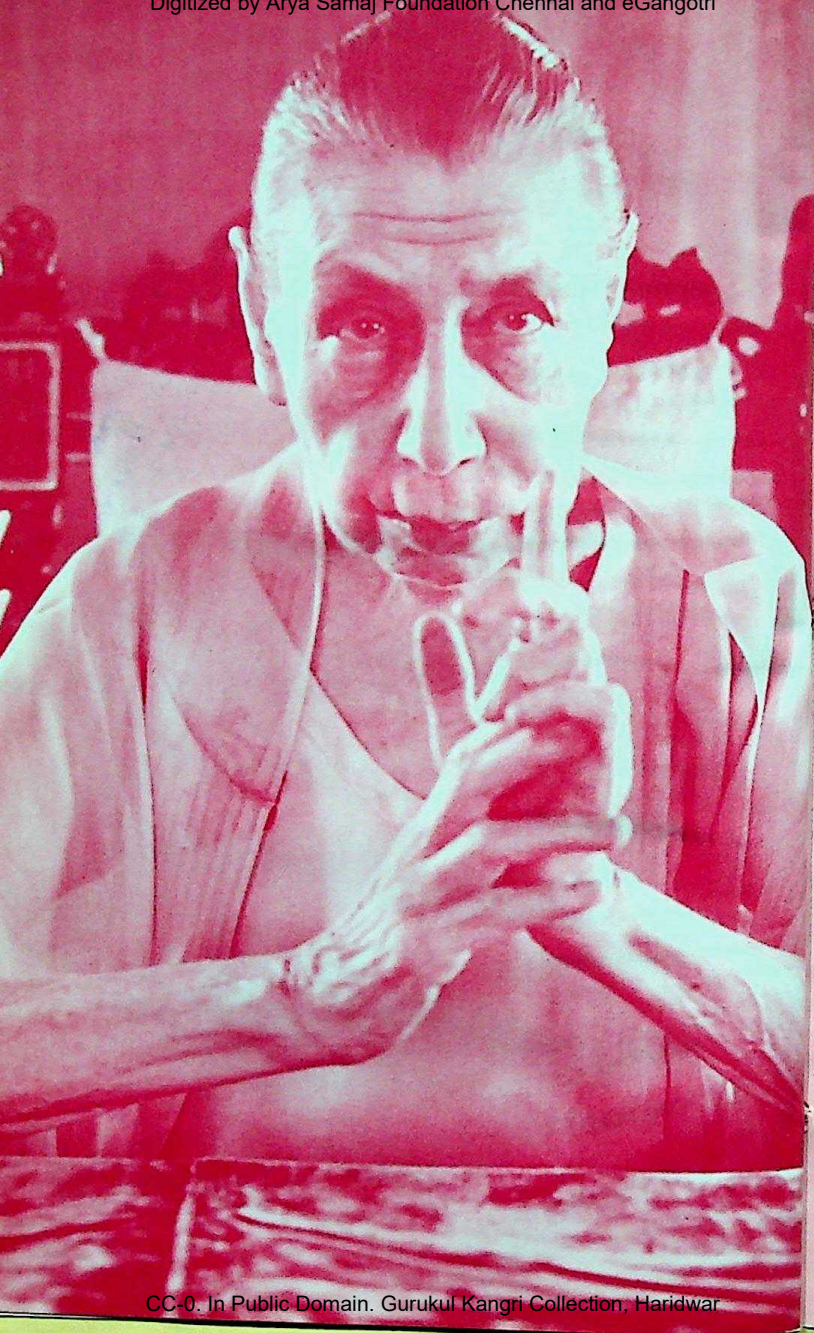
दूसरे काल में

जरा से परिणाम के लिए
बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

यह सच है

कि दूसरा पहले के लिए तैयारी कर सकता है,
यज्ञ का थोड़ा-सा धुंआ बनकर
स्वर्ग में जा सकता है
और वहां से भगवान् की देन का
आवाहन कर सकता है।

Gurukul Kangri University
Central Library
Haridwar-249404 (U.A.)



अभागा है वह मनुष्य या राष्ट्र जो,
भागवत मुहूर्त के आने पर,
सोया हुआ रहे या उसके उपयोग के लिए तैयार
न हो, क्योंकि उसके स्वागत के लिए दीया
संजोकर नहीं रखा गया है और उसकी पुकार
की ओर से कान बंद कर लिये गये हैं।

पर कहीं अधिक अभागे हैं वे जो
सशक्त और तैयार होते हुए भी उस
शक्ति का अपव्यय करते हैं
और उस मुहूर्त का दुरुपयोग करते हैं;
उनके भाग्य में होती है पूरी न हो सकनेवाली
क्षति या एक महान् विनाश।



भागवत मुहूर्त में धो डालो अपनी अंतरात्मा से
अपने-आपको धोखा देने की वृत्ति, ढोंगबाजी
और झूठी आत्म-प्रशंसा ताकि तुम
सीधे अंतःपुरुष को देख सको
और उसकी पुकार को सुन सको।

तुम्हारी प्रकृति का समस्त कपट,
जो पहले तुम्हें प्रभु की दृष्टि से तथा
आदर्श की ज्योति से बचाये हुए था,
अब तुम्हारे कवच में एक छेद बन जाता है
और ऊपर से प्रहारों को निमंत्रण देता है।

यदि क्षण भर के लिए तुम जीत भी गये तो वह
तुम्हारे लिए और भी बुरा है,
क्योंकि प्रहार तो बाद में आयेगा ही
और तुम्हारी विजय के समय भी
तुम्हें पटक देगा।



शुद्ध होकर झाड़ फेंको समस्त भय को;
क्योंकि यह घड़ी प्रायः भयंकर होती है,
यह आग, बवण्डर और तूफान की न्याई है
और है रुद्र का ताण्डव नृत्य;

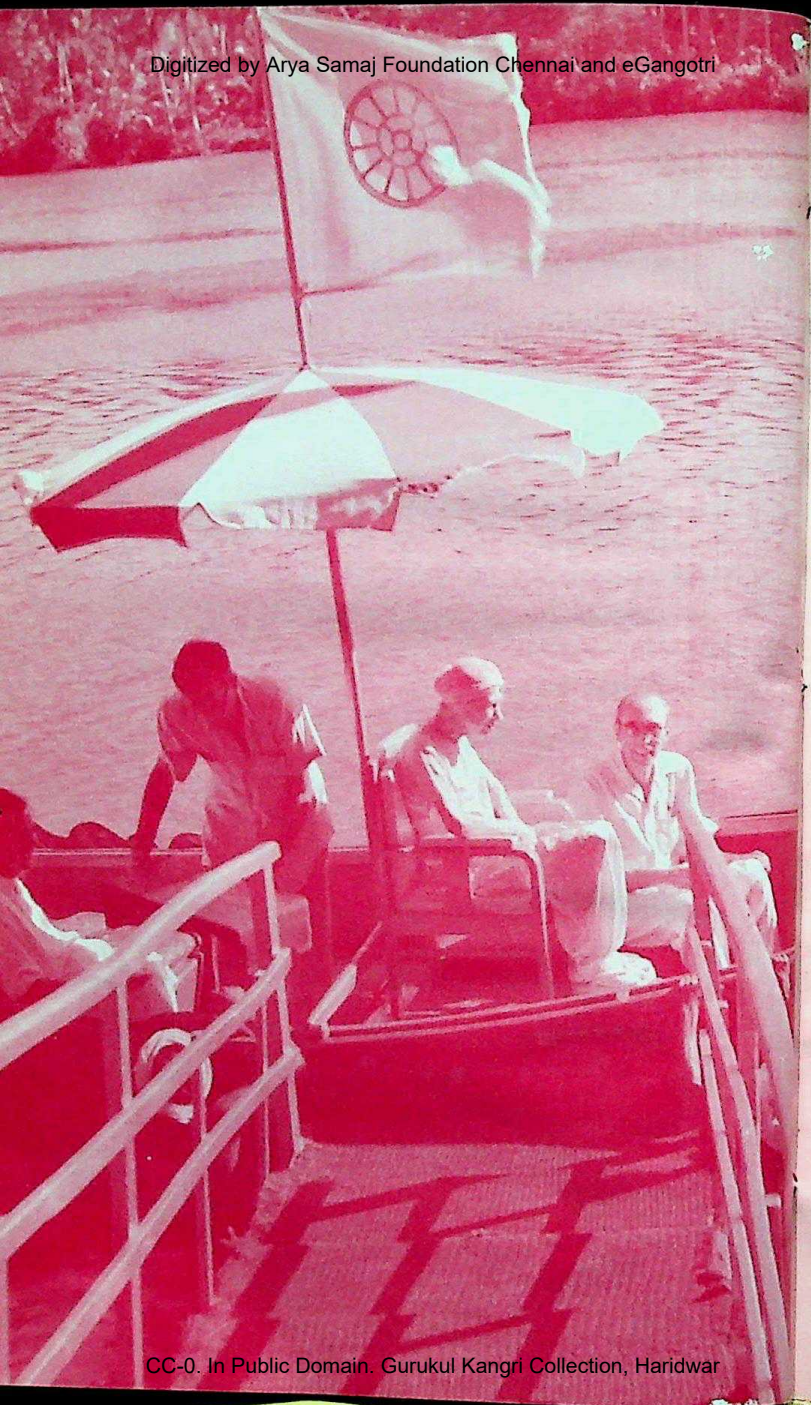
परंतु जो इसमें अपने उद्देश्य की सच्चाई के बल पर
खड़ा रह सकता है
वही खड़ा रहेगा;
चाहे वह वायु के पंखों पर
उड़ भी क्यों न जाये,
फिर भी वह जरूर वापिस
आ जायेगा।



सांसारिक बुद्धिमत्ता को तुम अपने साथ अधिक
कानाफूसी न करने दो,
क्योंकि यह अप्रत्याशित की, गणनातीत की,
अपरिमेय की घड़ी है।

भागवत 'श्वास' की शक्ति को अपने
तुच्छ यंत्रों से न मापो,
लेकिन विश्वास रखो
और आगे बढ़ते चलो।

लेकिन सबसे बढ़कर,
चाहे क्षण-भर के लिए ही क्यों न हो,
अंतरात्मा को अहं के कोलाहल से मुक्त रखो।



तब रात को अग्नि तुम्हारे आगे चलेगी और
तूफान तुम्हारा सहायक होगा
और तुम्हारी ध्वजा, जिस महानता को
जीतना है उसके सबसे ऊंचे शिखर पर
फहरायेगी।

—श्रीअरविन्द

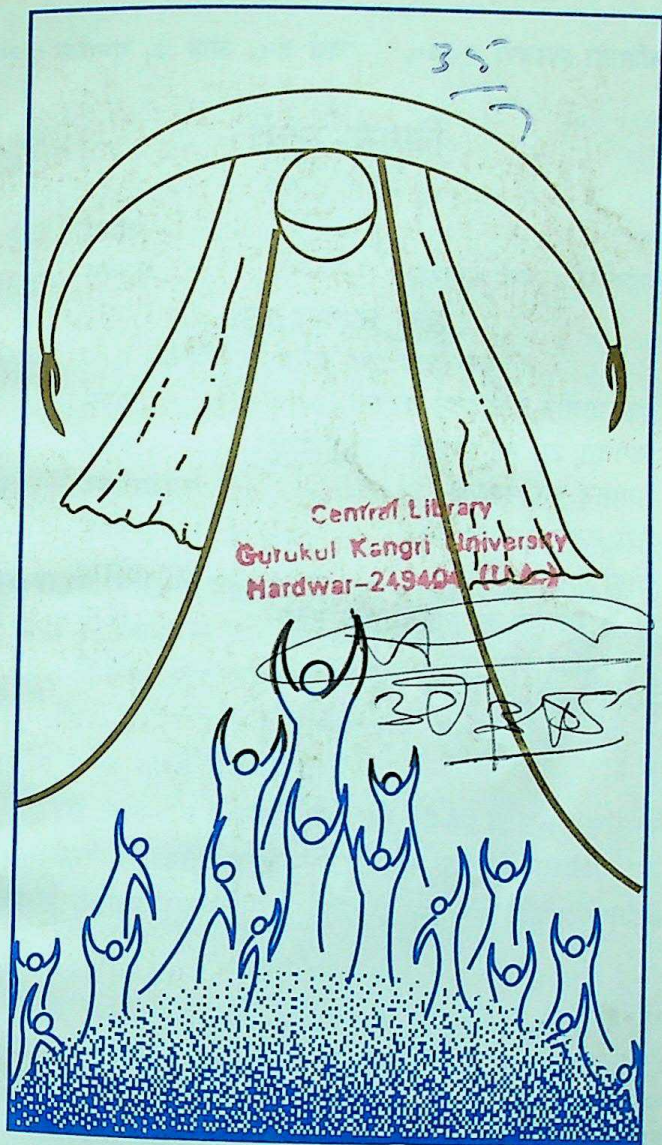
नव वर्ष का जन्म
हमारी चेतना का नव जन्म हो।
अतीत को बहुत पीछे छोड़
आओ, हम उज्ज्वल भविष्य की ओर
दौड़ चलें।

आशीर्वाद

—श्रीमां

अग्निशिखा—जनवरी २००५ वर्ष—३५ अंक—६ पूर्णांक—४१४
संपादक : अनुबेन; प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी -२;
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी -६०५००२

Regn. No. TN/PMG (CCR) 108/03-05 AND WPP No. 40/03-05
Registered With the Registrar of Newspapers for India; No. 18135/70
Pages: 16+2 (supplement)
Rs. 7.00



अग्निशिखा

अखिल भारतीय मजिद

कस्वरी २००५

अग्निशिखा फरवरी २००५ वर्ष ३५, अंक ७, पूर्णांक ४१५

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां	१
‘सम्पादकीय’ : वन्दे मातरम्	अनुबेन	२
रक्षक भागवत कृपा		
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के वचन)		
एक प्राचीन कैल्डियन कहानी	श्रीमां	९
भागवत प्रेम की पंखुड़ियां	श्रीमां	१०
भगवान् की मधुरता	श्रीअरविन्द	१८
मेरी नन्हीं मुस्कान को	श्रीमां	१९
श्रीमां का प्रेम	श्रीअरविन्द	२५
सफेद गुलाबों का शांतिदायक सौरभ	श्रीमां	२७
“मैं तुम्हारे साथ हूँ”	श्रीमां	३२
सोसायटी समाचार		३३

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

मैं सदा तुम्हें अपनी शांति में लपेटे रहती हूँ। तुम्हें उसे बनाये रखना सीखना चाहिए। मैं सदा तुम्हारे हृदय में रहती हूँ। तुम्हें मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन होना चाहिए, उस शक्ति को ग्रहण करना और उसका उपयोग करना चाहिए जिसे मैं तुम्हारे अंदर उंडेल रही हूँ ताकि तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पाने के योग्य बन जाओ।

... इस आनन्द को, इस विश्राम को, विजय के इस आश्वासन को सावधानी से बनाये रखो। ये दुनिया भर की समस्त धन-सम्पदा से अधिक मूल्यवान् हैं और ये तुम्हें मेरे बहुत नजदीक रखेंगी।

—श्रीमां

‘सम्पादकीय’ :

वन्दे मातरम्

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण की शाश्वत वाणी आज भी उतनी ही वास्तविक है जितनी कुरुक्षेत्र के समय अर्जुन को उपदेश देते समय थी। उनकी वह वाणी मानवता को आश्वासन देती हुई अमर प्रतिज्ञा है—

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थ कितना गुह्य है ! “जब-जब धर्म में मनुष्यों का उत्साह नहीं रहता, धर्म में अरुचि हो जाती है, जब धर्म का पतन हो जाता है और अधर्म उठ खड़ा हो जाता है, तब-तब मैं स्वयं पृथ्वी पर उतरता हूँ।”

पिछली शताब्दी में भारत का जैसा पतन हुआ, वैसा कभी न हुआ, क्योंकि जितनी भी विदेशी सत्ताएं आक्रमण करने आयी थीं, उनका भारत की संस्कृति पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा जैसा पिछली शताब्दी में अंग्रेज-सरकार का पड़ा था। भारत को समझनेवाले विदेशी व्यक्ति भी इस बात को मानते हैं कि अंग्रेज ही भारतीय संस्कृति और भारत की जनता को अपने सच्चे रूप से उल्टी दिशा में मोड़ने में कुछ हद तक सफल हुए। उसका मुख्य कारण था अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति जो भारतीयों को केवल किरानी, मुंशी बनाकर कमाऊ पूत बना देती थी।

ऐसी परिस्थिति में वही चिर पुरातन प्रतिज्ञा फिर से गूँज उठी होगी दिग्-दिगंत में। जब भारत की यह दुर्दशा हुई तब जिस भगवान् ने आश्वासन दिया था उनका पृथ्वी पर आगमन अवश्यम्भावी था।

नियति का खेल देखो; उनका जन्म ऐसे पिता के यहां हुआ जो अंग्रेजों के प्रशंसक थे और उन्होंने अपने बच्चों को भारतीय संस्कार से अछूता रखने के लिए बचपन से ही इंग्लैण्ड भेज दिया। किंतु जिसे अपना कार्य करना था वह सात समंदर दूर रहकर भी करने आ ही गया। पिता ने नाम भी कैसा सार्थक रखा—अरविन्द—जो भारतीय कला में और जनता में अति प्रिय पुष्प है!

पूरे अंग्रेज बनकर आये श्रीअरविन्द अपनी मातृभूमि में! भारत की दुर्दशा देखकर उन्होंने निश्चय किया कि भारत को स्वाधीन करना उनका मुख्य कार्य होगा!! अंग्रेजी शिक्षा से सराबोर युवक श्रीअरविन्द भारत की अपदशा का कारण देख पाए थे। उन्होंने लिखा, “भारतीय धर्म खोखला, कीड़ों से खाया हुआ, सुस्ती से धीरे-धीरे भरभरा कर गिरने को तैयार है। धर्म के इस आश्चर्यजनक विघटन की आशंका मुझे भयभीत नहीं कर पाती। इन सब आभासों के अंदर निद्रामग्न सजीव संस्कृति की आत्मा को मैं देख पाता हूं।”

श्रीअरविन्द ने कई वर्ष पहले धार्मिक वृत्ति के पतन का जो वर्णन किया है वह भारत की स्वाधीनता के बावजूद आज भी वैसी ही है। वे और कहीं लिखते हैं, “भारत में भ्रष्टाचार की वृद्धि, अतिवृद्धि है, उसके सत्य की अधोगति हुई है, उसका धर्म भी सब धर्मों की न्याई गंवारू मन से दूषित हो गया है, विचार और व्यवहार में भी वह गिर चुका है।”

सोये हुए भारत को जगाने के लिए उन्होंने ऐसे आग्नेय लेख लिखे कि जनता में और अंग्रेजी सरकार में खलबली मच गयी। अंग्रेज सरकार को चुनौती देने के लिए वे जनता को तैयार करना चाहते थे। वे लिखते हैं, “विशेष परिस्थितियों में जनता का संघर्ष सचमुच युद्ध हो जाता है और युद्ध के नीति-शास्त्र में और शांति के नीति-शास्त्र में अंतर होता है। रक्तपात और हिंसा जैसी परिस्थिति

से झिझकना ऐसी कमजोरी है जिसके लिए श्रीकृष्ण ने भी कुरुक्षेत्र के मैदान में इतने भीषण, भयंकर हत्याकांड से भयभीत, कांपते हुए अर्जुन की भर्त्सना की थी। स्वाधीनता एक राष्ट्र के जीवन का प्राण होती है। जब जान पर बन आये, जब अत्याचार से, दमन से, राष्ट्र की सांस को रोकने का प्रयास किया जाये तब राष्ट्र का आत्म-रक्षा के लिए किया गया हर साधन, हर उपाय न्यायोचित और सही हो जाता है।”

श्रीअरविन्द ने अपने महाकाव्य ‘सावित्री’ में लिखा है कि एक मनुष्य भी मानवजाति की नियति को बदल सकता है। और उन्होंने अपनी पत्रिका ‘वन्दे मातरम्’ के द्वारा सारे भारत को ऐसा जगा दिया, ऐसा खड़ा कर दिया कि अंग्रेज सरकार थरा उठी। देशभक्ति ऐसी जीवंत हो उठी कि डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या ने अपनी पुस्तक ‘द हिस्टरी ऑफ द इण्डियन नैशनल काँग्रेस’ में श्रीअरविन्द का उल्लेख ऐसी प्रज्वलित भाषा में किया है कि पाठक मंत्रमुग्ध हो जाता है। वे लिखते हैं, “अरविन्द की प्रतिभा एक उल्का की भांति तेजी से चमक उठी और थोड़ी देर तक आकाश में चमकती रही। अपने उज्ज्वल महाप्रकाश से उन्होंने सारे राष्ट्र को हिमालय से कन्याकुमारी तक परिप्लावित कर दिया।” किन्तु... जिस कार्य को करने के लिए भगवान् ने उन्हें भेजा था, उसे एक राष्ट्र की स्वाधीनता के चौखटे में सीमित नहीं बनाना था, इसलिए जेल की यातना सहते-सहते उन्हें अपने सच्चे कार्य का संदेश मिला जो सारी मानवजाति के लिए क्रम-विकास का अगला कदम होगा।

जब मानवजाति को उच्चतर स्तर पर ले जाना हो तो केवल उसके अर्धांग ही से काम नहीं चलेगा। अभी तक किसी भी महत् कार्य में स्त्रियों के सहयोग का प्रयास न हुआ था, किन्तु अब इस नवीन अभियान में उनकी सहायता अनिवार्य थी...।

और भगवान् ने भारत से नहीं, फ्रांस से, स्वतंत्र प्रकृति की एक अनोखी महिला को भारत भेजा जो बचपन से आध्यात्मिक जीवन की प्यासी थी। उनका नाम भी कितना सार्थक था! फ्रांस में भी उनका नाम था मीरा!! आश्चर्य की बात यह थी कि जब वे ध्यान करती थीं तब उनके सामने एक व्यक्ति दिखायी देते थे जिन्हें वे श्रीकृष्ण मानती थीं क्योंकि वे उनका मार्ग-दर्शन करते थे। श्रीकृष्ण से परिचय कैसे हुआ? फ्रांस में एक भारतीय सज्जन से मीरा की मुलाकात हुई। उसने उनकी तीव्र अभीप्सा देखकर श्रीमद्भगवद्गीता की फ्रेंच भाषा में अनूदित पुस्तक थमा दी। जिसे पढ़कर मीरा ने समझ लिया कि अब मार्ग-दर्शक श्रीकृष्ण होंगे।

वर्षों बाद ध्यान में उन्हें एक तांत्रिक यंत्र दिखाई देने लगा था। वे उसका अर्थ जानना चाहती थीं और जब उन्हें पता चला कि पांडिचेरी के निवासी योगी उसका सही अर्थ बता पाये हैं तो वे उनसे मिलने भारत आ गयीं। इस तरह जब उनका श्रीअरविन्द से साक्षात्कार हुआ तो वे कितनी आश्चर्य-मुग्ध हुई होंगी!! क्योंकि ये योगी ही उन्हें ध्यान में मार्गदर्शन देते थे और इन्हें ही वे श्रीकृष्ण मानती थीं!! उस साक्षात्कार में क्या हुआ हम नहीं जानते किंतु मीरा ने निश्चय कर लिया कि अब श्रीअरविन्द के साथ ही उनको कार्य करना है।

मीरा ध्यान में एक दरवाजे के पास जाती थीं जिस पर उनका नाम संस्कृत में लिखा था, उन्होंने संस्कृत का थोड़ा ज्ञान फ्रांस में ही प्राप्त किया था किंतु वे उस दरवाजे को खोल न पाती थीं। श्रीअरविन्द ने उस दरवाजे को खोलने में उनकी सहायता की थी। उसके पीछे क्या था हम नहीं जानते किंतु २४ नवंबर १९२६ में जब श्रीअरविन्द ने अपनी निवृत्ति की घोषणा की थी तब उन्होंने मीरा को 'मदर' मां कहना शुरू किया और उनको सारे साधकों के मार्गदर्शन की जिम्मेदारी

दी। थोड़े ही वर्षों में साधकों की संख्या बढ़ गयी और उसने आश्रम का रूप लिया। श्रीअरविन्द ने अपनी पुस्तक 'द मदर' में महासरस्वती का जो वर्णन किया है उसे अब हम यथार्थ में देख पाए। श्रीअरविन्द लिखते हैं, "महासरस्वती दिव्य माता की कार्य-शक्ति हैं, संपूर्णता की भावना और व्यवस्था की शक्ति हैं। महासरस्वती व्यवस्था और कार्यान्वयन के व्योमों की अधिष्ठात्री देवी हैं। वे विभिन्न विभागों के संबंध जोड़ती हैं, विभिन्न शक्तियों का संयोजन करके सटीक परिणाम और परिपूर्ति लाती हैं..."

तो माताजी ने आश्रम में सबसे पहले व्यवस्था पर नजर रखी। वे जब आयी थीं तब जिसकी जब इच्छा हो भोजन करने जाता था। रसोई में सफाई भी कम थी। वहां उन्होंने सफाई, स्वच्छ भोजन पर जोर दिया और भोजन लेने के लिए निश्चित समय-सीमा बांध दी। यह तो पहला कदम था; फिर खाना पकाने के लिए आश्रम-निवासियों को नियुक्त किया। उसके बाद आश्रम में फूलों के पौधे लगवाये। आज आश्रम के बगीचे दर्शनीय हैं, और यह सारा काम आश्रम के लोग करते हैं। इस समय आश्रम में प्रायः साठ विभाग चलते हैं; उनमें से एक है कृषि, जिसमें माताजी के निर्देशन में खाद केवल 'ऑर्गेनिक' ही होती है। सारे विभाग माताजी ने ही शुरू करवाये थे। आश्रम के अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र में नये ढंग से पढ़ाया जाता है, शारीरिक शिक्षा का विभाग अनोखा है।

अब माताजी का महालक्ष्मी-रूप देखें—उन्होंने आश्रम में सौंदर्य की भावना जगाने के लिए चित्रकला, संगीत, नृत्य और अभिनय के विभाग शुरू करवाये क्योंकि वे सौंदर्य, सामंजस्य की देवी हैं और श्रीअरविन्द के योग में सौंदर्य, व्यवस्था, परिपूर्णता, विशालता और अतुल शक्ति सबका समावेश है।

माताजी केवल आश्रम ही नहीं, सारे संसार की गतिविधि पर

नजर रखती थीं। चूंकि श्रीअरविन्द और माताजी मानवजाति को क्रम-विकास के नये चरण पर ले जाना चाहते थे इसलिए संसार पर नजर रखना अनिवार्य था। उनका यह नीरव कार्य कोई समझ भी नहीं पाता। विस्तृत पृथ्वी पर उनका जो कार्य होता है, वह गुप्त और गुह्य होता है।

तो संसार की वर्तमान दुरवस्था को देखकर दो अवतारों की अत्यधिक आवश्यकता थी।

माताजी ने स्त्रियों के लिए बहुत काम किया है। वे स्त्री को पुरुष के समान स्वाधीन और स्वतंत्र देखना चाहती हैं और इस समय संसार पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि आज स्त्री जितनी मुक्त है शायद ही पहले कभी थी।

हम माताजी और श्रीअरविन्द के प्रति कृतज्ञ रहें कि अतीत और भावी प्रगति के बीच के इतने उग्र संघर्ष के समय हम पृथ्वी पर हैं।

अब माताजी का महेश्वरी रूप देखते हैं, “राजराजेश्वरी-सी महेश्वरी बहुत ऊंचे स्तर पर विराजमान हैं। वे सुशांत, विस्तृत क्षितिज पर दृष्टिपात करती हैं। उनका व्यक्तित्व विशाल शांति का है, सर्व-समावेशी ज्ञान का, नीरव सौम्यता का है और वह असीम अनुकंपा से भरा है। उनमें प्रभुत्व का ऐश्वर्य और सर्वदमन महानता का समावेश है। ये देवी समस्त संसार की गतिविधि पर नजर रखती हैं और जहां कहीं आसुरिक शक्ति का राज्य देखती हैं उसे पराजित कर देती हैं।”

दूसरे विश्व-युद्ध के समय जब हिटलर किसी असुर के प्रभाव में आकर विश्व-विजेता बनने का प्रयास कर रहा था तब उन्होंने रहस्यमय कार्य द्वारा उस युद्ध में हस्तक्षेप किया था। केवल माताजी ने ही नहीं श्रीअरविन्द ने भी मित्र-राष्ट्रों की सहायता करने के अपने

हस्तक्षेप को स्वीकार किया था। वे जानते थे कि विश्व के किस कोने में क्या हो रहा है, और जहां कहीं आवश्यकता होती वे दोनों बेझिझक सहायता करते थे। भारत-पाकिस्तान युद्ध में माताजी के अप्रत्याशित महाकाली रूप भी प्रकट हुए थे। कई सैनिकों ने मशाल लिए हुए उनको महत्त्वपूर्ण स्थलों पर घूमते हुए देखा था।

माताजी और श्रीअरविन्द—ये दो अवतार—आज संसार का जो भीषण संकट-काल है उसके लिए आवश्यक थे, इसीलिए दोनों का अवतरण अनिवार्य था।

दोनों अब भी उपस्थित हैं और अगर हम सच्चे दिल से उन्हें पुकारें तो वे हमारी अवश्य सहायता करते हैं।

माताजी ने लिखा है, “श्रीअरविन्द हमारे बीच सारे समय उपस्थित हैं और जो लोग उन्हें देखने के लिए तैयार हैं, सुनने के लिए तैयार हैं उनके सामने प्रकट होते हैं।” लेकिन इस तरह के दर्शन करने के लिए हमें योग्य होना चाहिए। कैसे? उपाय एक ही है, समर्पण! अपना सर्वस्व उन्हें समर्पित करके, हर कदम पर उनके आदेशानुसार चलना!!

आज भारत उठ रहा है। हम भारतवासियों का कर्तव्य है कि इस शुभ अवसर पर हम स्वार्थ छोड़कर ‘वन्दे मातरम्’ का जाप जपें और देश की, जितनी संभव हो सेवा करें।

—अनुबेन



प्रभो, हम अनुनय करते हैं कि हमारे अंदर कोई चीज तुम्हारी उपस्थिति को अस्वीकार न करे और हम वही बन सकें जो तुम हमें बनाना चाहते हो; वर दो कि हमारे अंदर सब कुछ तुम्हारी इच्छा का अनुमोदन करे।

रक्षक भागवत कृपा

एक प्राचीन कैलडियन कहानी

बात पुरानी है, बहुत पुरानी। एक रेगिस्तान में जहां अब अरब देश है भगवान् ने परम प्रेम को जगाने के लिए धरती पर अवतार लिया था। जैसा कि हुआ करता है, मनुष्यों ने उन्हें गलत समझा, उनपर संदेह किया, उन्हें कष्ट दिये और उनका पीछा किया। आततायियों के आघातों से ये बहुत बुरी तरह घायल हो गये। अपना काम पूरा करने के लिए ये शांति के साथ अकेले में मरना चाहते थे। आततायियों के पीछा करने पर ये दौड़े। उस बंजर भूमि में अचानक एक अनार की झाड़ी दिखायी दी। रक्षक देव ने शांति के साथ शरीर त्याग करने के लिए झाड़ी के नीचे शरण ली। तुरंत चमत्कारिक रूप से झाड़ी की शाखाएं बड़ी हो गयीं और चारों ओर इस तरह छा गयीं कि पीछा करनेवालों को यह पता ही न लगा कि वे जिसकी तलाश में हैं वह यहीं छिपा है। वे अपनी राह पर चलते गये।

बूंद-बूंद करके पवित्र रक्त धरती पर गिरता गया और उसे उपजाऊ बनाता गया। झाड़ी बहुत सुन्दर, बड़े-बड़े, गहरे लाल रंग की पंखुडियों से भरे हुए फूलों से लद गयी, मानों रक्त की असंख्य बूंदें हों।...

ये वही फूल थे जो हमारे लिए भागवत प्रेम^१ का प्रतीक हैं।

—श्रीमां

^१ काली पूजा के दिन श्रीमां हर साल “भागवत प्रेम” (अनार के फूल) की पंखुडियां बांटती थीं।

भागवत प्रेम की पंखुड़ियां

(श्रीमां द्वारा दिये गये कुछ उत्तर)

प्यारी मां,

मुझे अपने सत्य के आवास में ले चलो, ... मैं तुम्हें अपने उत्तरोत्तर समर्पण की इच्छा और बढ़ते हुए पूजा-भाव की भेंट करता हूँ।

रास्ता खुला हुआ है मेरे प्यारे बालक ! मैं भुजाएं फैलाये हुए प्रेम के साथ तुम्हें उनमें बांध लेने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२२ अक्तूबर १९३८

मेरे जीवन के जीवन, मैं भी तुम्हारे पास आना चाहता हूँ; क्योंकि केवल तुम्हारी भुजाओं में मुझे शांति, सुख, आनंद, सत्य का सत्य और मेरे जीवन तथा मेरी सत्ता की परिपूर्णता मिलेगी। फिर भी, मेरे उज्ज्वल प्रकाश, मेरे लिए मार्ग स्पष्ट नहीं है। मैं तुम्हारे चकरानेवाले शिखरों तक अपनी मर्त्य प्रकृति की जकड़नेवाली भारी जंजीरों के साथ कैसे चढ़ पाऊंगा?

तुम मुझे अपनी भुजाओं में ले लेने दो, तब चढ़ना आसान हो जायेगा।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२५ अक्तूबर १९३८

प्यारी, प्यारी, प्यारी मां,

हर रोज मेरे लिए आप अधिक-से-अधिक प्यारी और

अधिक-से-अधिक आराधनीय बनती जा रही हैं। आप किस भागवत रहस्य द्वारा हम पर यह मधुर जादू डालती हैं?

एकमात्र रहस्य और एकमात्र जादू है मेरा प्यार—मेरा वह प्यार जो मेरे बच्चों पर फैला हुआ है और जो उनकी सहायता और रक्षा के लिए भागवत कृपा को नीचे पुकारता है।

६ नवंबर १९३८

प्यारी मां, मैं जानता हूँ कि आपका प्रेम और आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ हैं। कभी-कभी मैं चाहता हूँ कि आप मेरे ऊपर निरपवाद रूप से इतनी मेहरबान और कृपालु न होतीं। इसके कारण मुझे यह कहना और भी ज्यादा कठिन लगता है कि मेरी प्रकृति की कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो मुझे आपको और आपके योग को उचित भाव में स्वीकार करना कठिन बना देती हैं। और इसके बिना शिष्यत्व ही क्या हुआ?

मैं गुरु की तरह प्रेम और आशीर्वाद नहीं देती, बल्कि मां की तरह देती हूँ जो अपनी दी हुई चीज के बदले में कुछ भी नहीं मांगती।

९ जुलाई १९३९

प्यारी, प्यारी, प्यारी मां,

मैं आपको ढेरों, ढेरों प्रेम भेजता हूँ। मेरे हृदय-कमल में आपके चरण-कमल प्रेम के सिंहासन पर सदा प्रतिष्ठित रहें।

मेरे प्यारे स्नेहमय बालक,

तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हारा हृदय बहुत मधुर स्थान है—मुझे

हमेशा उसमें रखो ताकि मैं तुम्हारी सारी सत्ता को प्रकाश, प्रेम और आनंद से भर सकूँ।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

८ अगस्त १९३९

क्या आप मुझे मेहरबानी करके बतलायेंगी मेरी प्यारी मां, कि मेरी अकिंचन मानवता के बावजूद क्या आप सचमुच मेरे साथ अकृत्रिम रूप से प्रेम करती हैं या यह सारा एक परीक्षण ही है? मुझे ऐसा प्रश्न करते हुए लज्जा आती है, लेकिन मैं "परीक्षण" शब्द का बहुधा ऐसे नाना अर्थों में उपयोग सुनता हूँ कि मुझे डर लगता है और मैं स्वयं आपसे सुनना चाहूँगा कि आप हमारे साथ केवल परीक्षण ही तो नहीं कर रही? क्षमा-प्रार्थना करता हुआ...

मेरे प्यारे बालक,

हां, तुम जो सबसे अच्छी चीज कर सकते हो वह यह है कि लोग तुमसे जो कहें उसपर कान न दिया करो। यह तुम्हें चेतना की बहुत-सी गिरावटों से बचा लेगा। आज तीसरे पहर जब मैंने तुम्हें मूक रूप से देखा तो मैंने कहा, "अपने प्रेम के प्रति निष्ठा बनाये रखो।" मेरा ख्याल है कि यह तुम्हारे लिए पर्याप्त उत्तर है और तुम मुझसे यह आशा न करोगे कि ऐसी अज्ञानभरी मूर्खतापूर्ण टीकाओं के आगे मैं अपने प्रेम की सफाई दूँ। तुम विश्वास करो या संदेह करो, मेरा प्रेम और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१२ अगस्त १९३९

प्यारी मां,

मैं अपने कल के प्रश्न के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ और प्रार्थना

फरवरी 2005

13

करता हूँ कि मेरी मूढ़ता को क्षमा कर दिया जायेगा।

ओह! मैं आपके प्रेम के बारे में शंका कर ही कैसे सकता हूँ जब कि आप सत्य, प्रेम और शुभ की आत्मा हैं?

मेरे प्यारे बालक,

मैं जानती थी कि वह एक उड़ता हुआ मनोभाव था और तुम शीघ्र उसमें से निकल आओगे—लेकिन इस प्रेम और इस सत्य को अपनी ढाल बना लो जो मिथ्यात्व की किसी भी शक्ति की घुसपैठ से तुम्हारी रक्षा करे।

मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हें अपने लक्ष्य की ओर ले जायेंगे।

१३ अगस्त १९३९

प्यारी मां,

आपका प्रेम ही मेरे लिए सच्चा आश्रय और एकमात्र बल है। मां, मैं आपको जो कुछ अर्पित करता हूँ वह एक गदला मिश्रण है जिसके बारे में मैं लज्जित हूँ, लेकिन उसे आप ही शुद्ध कर सकती हैं।

मेरे बहुत प्यारे बच्चे,

अर्पण का रूप चाहे जैसा हो, जब वह सचाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अंदर भागवत प्रकाश की एक चिंगारी लिए रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है। तुम मेरे प्रेम के बारे में विश्वस्त रह सकते हो, तुम मेरी सहायता के बारे में विश्वस्त रह सकते हो और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१९ अगस्त १९३९

आप कितनी प्यारी हैं, प्यारी मम्मा! क्या सारे संसार में आप
जैसा कोई और है? प्रेम।

मेरे प्यारे, प्यारे बालक को प्रेम, प्रेम, प्रेम; समस्त आनंद, समस्त
ज्योति और दिव्य प्रेम की समस्त शांति और साथ ही मेरे प्रेममय
आशीर्वाद।

२० अगस्त १९३९

मेरे जीवन की जीवन! मेरी अपनी मधुरतम मां!

मेरे प्रेम को स्वीकार करो और जैसा तुम बरसों से करती
आयी हो मेरी भूलों को क्षमा करो। मैं आशा करता हूं कि ये
मानसिक वृत्तियां आती-जाती रहेंगी। इन सब आते-जाते बादलों
के बीच मैं तुम्हारे आलोकमय मुस्कुराते चेहरे को कभी न
भूलूं!

मेरे अत्यंत प्रिय बालक,

मैं सचमुच आशा करती हूं कि तुम शीघ्र ही अपनी सब कठिनाइयों
से बाहर निकल आओगे। उच्चतर चेतना की ओर बस एक अच्छी
छलांग, जहां सब समस्याओं का समाधान हो जाता है, और तुम
अपनी कठिनाइयों से बाहर हो जाओगे। मुझे कभी ऐसा नहीं लगता
कि मैं क्षमा कर रही हूं। प्रेम क्षमा नहीं करता, वह समझता और
उपचार करता है।

सदा मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२८ अगस्त १९३९

फरवरी 2005

15

(साधक के जन्मदिन पर दिया गया संदेश)

भागवत प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो।

शुद्ध प्रेम तुम्हारा मार्ग हो।

अपने प्रेम की ओर सदा सच्चे रहो और तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पा लोगे।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

९ सितंबर १९३९

मेरी प्यारी प्रेममयी मां,

जन्मदिन की मेरी कापी में श्रीअरविन्द ने लिखा है, “उच्चतर चेतना में उठो, उसकी ज्योति प्रकृति पर शासन और उसका रूपांतर करे।” कुछ समय पहले आपने मुझे लिखा था, “उच्चतर चेतना की ओर, बस एक ही छलांग, जहां सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है और तुम अपनी कठिनाइयों से बाहर हो जाओगे।” तो यह उच्चतर चेतना चीज क्या है और मैं उसकी ओर कैसे उठ सकता या छलांग लगा सकता हूं? और फिर आपने कहा है, “भागवत प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो। शुद्ध प्रेम तुम्हारा मार्ग हो, अपने प्रेम की ओर सदा सच्चे रहो और तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पा लोगे।” क्या यह उच्चतर चेतना वही चीज है जो शुद्ध प्रेम की अवस्था है, अगर ऐसा है तो उसका उच्चतर ज्ञान की स्थिति से क्या संबंध होगा?

उच्चतर चेतना शुद्ध प्रेम की अवस्था है लेकिन साथ ही वह भागवत ज्ञान की ओर शुद्ध उद्घाटन भी है। वहां इन दो सजातीय चीजों में कोई विरोध नहीं है; मन ही इन्हें अलग करता है।

वहांतक पहुंचने का सबसे अच्छा तरीका है कि जब कभी मानसिक हलचल आये, प्राणिक कामनाएं और उथल-पुथल आये तो उसे स्वीकार करने से इंकार कर दो और मन तथा हृदय को जहांतक हो सके सतत भगवान् की ओर मुड़ा रखो। यह करने के लिए भगवान् के लिए प्रेम सबसे अधिक बलवती शक्ति है।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१९ अक्तूबर १९३९

प्रिय मां!

माताजी ने अपने आवास के लिए ऐसे दुर्बल पात्र को क्यों चुना? मैं जानता हूं कि जबतक वे यहां अपना निवास-स्थान बनाना चाहती हैं, देर या सवेर मुझ गरीब को महामहिम के लिए गद्दी छोड़नी ही पड़ेगी और जबतक वह दिन न आ जाए मुझ बेचारे को चैन न मिलेगा।

मेरे प्यारे बालक,

अतः सबसे अच्छी बात है तुरंत अपदस्थ होकर चैन, शांति और आनंद पा लेना। जब तुम्हें किसी हठीले प्रतिरोध से पिंड छुड़ाना हो तो तुम्हें देर न लगानी चाहिए जैसे रुग्ण दांत^१ को निकाल फेंकने में देर नहीं लगायी जा सकती।

अंदर, बाहर और सब जगह, माताजी की सहायता है... उनके प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२८ अक्तूबर १९३९

^१ साधक दांतों का चिकित्सक था।

मेरे २२ जुलाई^१ के पत्र के उत्तर में आपने मुझे आश्वासन देने की कोशिश की है पर उसने मुझे आश्वासन नहीं दिया। ऐसा क्यों हुआ मां, शायद आपको मेरा लहजा पसंद नहीं आया, शायद आप मेरी अक्षमता से असंतुष्ट हैं, हो सकता है कि आप मुझसे पूरी तरह थकती जा रही हैं। अगर ऐसा है तो मुझे आश्चर्य न होगा, मैं आपको दोष न दूंगा क्योंकि स्वयं मैं उस समस्या से तंग आ गया हूं जिसे कहते हैं “मैं”।

जैसा कि आपने मुझे आश्वासन दिया है, अगर इससे आपके प्रेम और आपकी दयालुता में कोई फर्क नहीं पड़ता तो मैं इस धन को रखना चाहूंगा और इस व्यवस्था को जारी रखूंगा। लेकिन अगर आपको पसंद न हो तो कृपया ऐसे शब्दों में कहिए जिन्हें मैं समझ सकूँ और मैं इसे छोड़ दूंगा। कृपया विश्वास रखिये कि अगर यह व्यवस्था आपको पसंद न हो तो मैं इसे छोड़ सकता हूँ।

मेरे प्यारे बालक,

इससे मैं जरा भी असंतुष्ट नहीं हूँ। तुमने उस दिन इस विषय में जो लिखा^२ था उसका अगर मैंने उत्तर नहीं दिया था तो इसलिए कि मैंने इसे बहुत महत्त्व नहीं दिया। मेरे वाक्य का मतलब केवल इतना ही था कि मेरा प्रेम समझ सकता है और मेरे आशीर्वाद ऐसी सतही गतिविधियों पर निर्भर नहीं रहते।

^१ साधक ने इस पत्र में पूछा था कि क्या वह अपने रिश्तेदार द्वारा भेजे हुए रुपयों को स्वीकार कर सकता है। माताजी ने जवाब दिया, “मेरे प्यारे बालक, तुम मेरे प्यार और आशीर्वाद के बारे में विश्वास रखो।”

^२ साधक ने २२ जुलाई के पत्र में स्वयं अपने लिए कुछ बातें लिखी थीं, उसीके विषय में श्रीमां कह रही हैं।

आज मैं इतना और जोड़ दूँ कि मैं "मैं" कहलानेवाली समस्या से बिलकुल नहीं ऊबी हूँ और मुझे विश्वास है कि उसका सफलता के साथ समाधान हो जायेगा...

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ जुलाई १९४०

भगवान् की मधुरता

... वे भगवान् की सम्मोहक मधुरता का जादू फैलाती हैं। उनके पास होने का अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदय के अंदर अनुभव करने का अर्थ है जीवन का आनन्दोल्लास और चमत्कार से भर जाना; उनसे लावण्य, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होते हैं जैसे सूर्य से प्रकाश और वे जहां-जहां अपनी अद्भुत दृष्टि को स्थिर करती हैं या जिस किसी पर अपने स्मित की मधुरता उंडेलती हैं वहां-वहां अन्तरात्मा उनकी पकड़ में आकर बन्दी बन जाती है और अथाह आनन्द की गहराई में डुबकी लगाती है। उनके हाथों का स्पर्श चुम्बकीय है और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को परिष्कृत करता है और जहां-जहां उनके चरण पड़ते हैं वहां-वहां सम्मोहक आनन्द की दिव्य धाराएं बहने लगती हैं।

—श्रीअरविन्द

हां, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ। लेकिन तुम्हें मुझे पुकारना कभी न भूलना चाहिए, क्योंकि मुझे पुकारने पर ही उपस्थिति प्रभावकारी होती है।

—श्रीमां

मेरी नहीं मुस्कान को

(श्रीमां के कुछ उत्तर)

मेरी नहीं 'शाश्वत मुस्कान',

मुस्कुराती जाओ और विशेष रूप से जब कठिनाइयां आयें तो और भी अधिक मुस्कुराओ। मुस्कानें सूर्य की किरणों की तरह हैं, वे बादलों को छितरा देती हैं... और अगर तुम आमूल उपचार चाहती हो तो यह रहा : स्पष्टवादिता, पूरी तरह स्पष्टवादी बनो, मुझे पूरी तरह बतलाओ कि तुम्हारे अंदर क्या चल रहा है और जल्दी ही उपचार आ जायेगा, एक संपूर्ण और सुखकर उपचार।

मेरी नहीं मुस्कान को बहुत-से स्नेह के साथ।

६ सितम्बर १९३६

मेरी नहीं मुस्कान,

मैं बहुत खुश हूँ कि तुमने लिखा है; मुझे विश्वास है कि अब तुम्हें ज्यादा अच्छा लग रहा है।

इन सब चीजों को बहुत ज्यादा महत्त्व न दो। ये एक ऐसे बालक की कल्पनाएं हैं जो जीवन के बारे में, उसके दुःख-दर्द और कुरूपता के बारे में कुछ नहीं जानता। क्योंकि जीवन ऐसा नहीं है जैसा उपन्यासों में चित्रित किया जाता है। दैनन्दिन जीवन छोटे-बड़े कष्टों से भरा है और केवल भागवत चेतना के साथ तादात्म्य साध कर ही सच्चे अपरिवर्तनशील आनंद को पाया और बनाये रखा जा सकता है।

अपना विश्वास और अपनी श्रद्धा बनाये रखो, मेरी नहीं मुस्कान, और सब कुछ ठीक हो जायेगा।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१ अगस्त १९३२

बच्ची, बहुत सावधान रहो। अवसाद, अनुत्साह और विद्रोह के लिए दरवाजा न खोलो, यह तुम्हें चेतना से दूर, बहुत दूर ले जाकर अंधकार की गहराइयों में डुबा देता है जहां सुख कभी घुस भी नहीं सकता। मुस्कान ही तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति थी; क्योंकि तुम जीवन के आगे मुस्कुराना जानती थीं, साथ ही तुम साहस और स्थिरता से काम करना भी जानती थीं और इसमें तुम अपवाद-रूप थीं। लेकिन तुमने और लोगों के उदाहरण का अनुसरण करना सीख लिया, तुमने उनसे असंतुष्ट, विद्रोही, अवसादग्रस्त होना सीखा और अब तुमने अपनी मुस्कान को भी खिसक जाने दिया और साथ ही मेरे ऊपर विश्वास और श्रद्धा को भी। इस स्थिति में अगर सभी दिव्य शक्तियां तुम्हारे ऊपर केंद्रित हो जाएं तो भी बेकार होंगी—तुम उन्हें ग्रहण करने से इंकार करोगी।

इलाज एक ही है और तुम्हें उसे स्वीकार करने में देर न लगानी चाहिए; अपनी मुस्कान को वापिस ले आओ, अपनी श्रद्धा को वापिस ले आओ, फिर से वही विश्वस्त बालिका बन जाओ जो तुम थीं, अपने दोषों और कठिनाइयों पर एकाग्र न होओ—तुम्हारी मुस्कान उन सबको भगा देगी।

१६ दिसम्बर १९३२

मेरी प्यारी मां,

आज भी मैं प्रेम पर साड़ी लगाने में व्यस्त रही, लेकिन मैंने देखा कि साड़ी बिल्कुल सीधी नहीं है; इसलिए अब मुझे इसे खोलना पड़ेगा ताकि इसे ज्यादा अच्छी तरह किया जा सके—इसे करने में मेरे तीन दिन लगे थे।

यह मेरी नहीं मुस्कान के लिए थकानेवाला होगा ! लेकिन यह जीवन

फरवरी 2005

21

का सच्चा चित्र है, जहां ज्यादा अच्छा करने के लिए तुम्हें अपने किये कराये को निरन्तर अनकिया करना पड़ता है।

२४ अगस्त १९३३

मेरी प्यारी बच्ची, आज सवेरे प्रणाम के समय तुम इतना अधिक रो क्यों रही थीं? मुझे बड़ा दुःख हुआ कि मैं तुम्हें दिलासा न दे सकी। तुम मुझे अपने दुःख के बारे में न बतलाओगी, ताकि अगर संभव हो तो मैं उसे दूर कर सकूँ? तुम जानती हो कि मेरा समस्त प्रेम सदा तुम्हारे साथ रहता है और साथ ही मेरी समस्त इच्छा भी, ताकि वह तुम्हें अपनी कठिनाइयों में से बाहर आने में मदद दे सके।

२४ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी मां,

मुझे पता ही न चला कि मैं वहां रो रही थी। मेरे रोन के कारण कृपया आप परेशान न हों। मां, मैं अच्छी तरह जानती हूँ, पर मैं आपसे पूछती हूँ “क्या मैं, मेरा हृदय शांति में है? क्या मेरे अंदर सच्ची शांति है? क्या मैं अचंचल हूँ? उस थोड़े से समय के लिए भी जब मैं आपके साथ आपके कमरे में होती हूँ? उन ५, १० मिनटों के लिए भी क्या मैं अचंचल और शांत होती हूँ जब मेरा सिर आपके घुटनों पर प्रणाम की मुद्रा में टिका होता है?

तब फिर आप मुझे खुश देखने की आशा कैसे कर सकती हैं?... मैं जानती हूँ कि आप चाहती हैं कि मेरे अंदर शांति हो, मैं खुश रहूँ और यह भी कि आपका समस्त प्रेम हमेशा मेरे साथ होता है। लेकिन मुझे उसे सारे समय अनुभव कर सकना चाहिए। (और क्या यह संभव है कि शांति न हो सकने

पर भी व्यक्ति उस शांति का हर क्षण अनुभव कर सके?)

...मेरे रोने पर आप परेशान न होएं—और कुछ नहीं तो कम-से-कम मुझे आपका प्यार-भरा स्पर्श तो मिला (कल सवेरे मेरे आंसू टपक रहे थे) जो बहुत ही विरल है (शायद विरलता के कारण स्पर्श इतना अधिक प्रिय है मुझे) आप हमेशा मुझे ऐसे नहीं सहलाती हैं।

आपकी बच्ची

मैं आज सवेरे तुमसे मिलूंगी...

२५ जनवरी १९३४

मैं आशा करती हूँ कि यह नया महीना तुम्हारे लिए वह उपलब्धि लायेगा जिसके लिए तुम इच्छा करती हो—सुखद स्थिरता, अपरिवर्तन-शील शांति, प्रकाशमय नीरवता।

मेरी यही इच्छा है और यही मेरा आशीर्वाद है।

१ फरवरी १९३४

माताजी,

मैं आपको अपने हृदय में पकड़ लूंगी। मुझे शांति और सुख के बारे में सोचने की जरूरत नहीं। अगर तुम हमारे हृदयों में निवास करो तो ये चीजें निश्चित रूप से रहेंगी।

मेरी प्यारी बच्ची,

मुझे पकड़ने के लिए तुम्हें कहीं दूर न जाना होगा क्योंकि मैं पहले से ही तुम्हारे हृदय में मौजूद हूँ और जैसे ही तुम्हारी आंखें खुलेंगी कि तुम मुझे वहां देख पाओगी। अनुभव करने की अपनी क्षमता को बाहर छितराने की जगह अंदर मोड़ो, और तुम मेरी

फरवरी 2005

23

उपस्थिति को उतने ही ठोस रूप में (बल्कि उससे भी बढ़कर) अनुभव कर सकोगी जैसे तुम सरदी, गरमी को अनुभव करती हो।

२ फरवरी १९३४

माताजी,

आपने मुझे बतलाया है कि मेरे अंदर कोई चीज बंद है जो आपकी ओर नहीं खुलती और इसीलिए जब मैं अपने हृदय में आपके प्रेम को अनुभव करना चाहती हूँ (जिसके बारे में आपने कहा है कि वह हमेशा रहता है) तो मैं उसे अनुभव नहीं करती। मेरे अंदर ऐसी कौन-सी चीज है जो बंद रहती है? मेरा हृदय? या कोई और चीज है? मैं यह सब नहीं समझ पाती।

मैं चाहती हूँ कि मेरा हृदय सदा खुला रहे और आपके प्रेम का अनुभव करे। लेकिन अगर वह सचमुच बंद है तो मैं उसे कैसे खोल सकती हूँ? मुझे उसे खोलने के लिए क्या करना चाहिए? मैं सचमुच चाहती हूँ कि वह आपके प्रति खुल जाये। और मैं हमेशा सुखी रहना चाहती हूँ।

मेरी प्यारी नन्हीं बच्ची,

मैं केवल एक ही तरीका जानती हूँ, अपने-आपको पूरी तरह, पूर्ण उत्सर्ग के साथ भगवान् को दे दो। तुम अपने-आपको जितना अधिक दोगी उतनी ही अधिक खुलती जाओगी और जितनी अधिक खुलती जाओगी उतना ही अधिक पाओगी; और आत्मदान की इस घनिष्ठता में तुम आंतरिक उपस्थिति और उसके साथ आनेवाले आनंद के बारे में सचेतन हो जाओगी।

तुम्हारी मां की ओर से मधुर प्रेम।

२५ जुलाई १९३६

मां,

केवल "उत्सर्ग" शब्द से मैं यह नहीं समझ पा रही कि हमें कितनी सचाई और यथार्थता के साथ अपने-आपको भगवान् के समर्पित करना चाहिए। अपने-आपको आपके प्रति अधिकाधिक समर्पित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? किस तरह, किस विधि से मैं स्वयं को आपको अधिकाधिक दे सकूंगी?

श्रीअरविन्द का उत्तर :

ठीक उसी तरह जैसे तुम मां के लिए काम करते समय स्वयं को पूरी तरह उन्हें समर्पित कर देती हो, यानी तब एक आंतरिक दान, उत्सर्ग होता है। सामान्यतया, मन और प्राण अपने लिए जीते हैं। यह या वह चीज चाहते हैं, उसके पीछे दौड़ते हैं और उसके न मिलने पर असंतुष्ट और असफल अनुभव करते हैं। लेकिन जब वे अपने-आपको दे देते हैं तो यह सब बंद हो जाता है। श्रीमां उनके साथ जिस तरह व्यवहार करती हैं वे उसे स्वीकार कर लेते हैं—किसी चीज की मांग नहीं करते, पूरी तरह उन पर निर्भर होते हैं, अपनी कामनाओं के लिए नहीं बल्कि उनकी इच्छा के लिए जीते हैं। तब वे अपनी पुरानी गतियों को बाहर निकाल कर अपने अंदर श्रीमां की उपस्थिति, मां की इच्छा, मां की क्रियाएं भर लेते हैं—यही उनके जीवन का सारतत्त्व बन जाता है।

श्रीमां ने जोड़ा :

मेरी नन्हीं मुस्कान को प्रेम।

२७ जुलाई १९३६

श्रीमां का प्रेम

(श्रीअरविन्द के कुछ उत्तर)

तुम श्रीमां के बालक हो और मां का अपने बच्चों के लिए प्रेम सीमातीत होता है और वे धीरज के साथ उनके स्वभाव के दोषों को सहती रहती हैं। श्रीमां के सच्चे बालक बनने की कोशिश करो : यह क्षमता तुम्हारे अंदर है, लेकिन तुम्हारा बाहरी मन छोटी-छोटी नगण्य चीजों में व्यस्त रहता है और बहुत बार इन तुच्छ चीजों का बतंगड़ बना देता है। तुम्हें श्रीमां को केवल सपने में नहीं देखना चाहिए बल्कि सारे समय उन्हें देखना सीखो और अपने साथ तथा अपने अंदर उनको अनुभव करना सीखो। तब तुम्हें अपने ऊपर संयम पाना और अपना परिवर्तन करना अधिक आसान लगेगा — क्योंकि मां वहां उपस्थित होंगी और तुम्हारे लिए यह कर देंगी।

*

निश्चय ही, अगर लोग श्रीमां से सामान्य तरीके के—प्राण और उनकी सनकों पर आधारित—प्रेम की आशा करें तो उनके हाथ हताशा ही लगेगी। लेकिन प्राण का यह प्रेम ऐसा प्रेम है जिसे योग में पार कर जाना या किसी दूसरी चीज में रूपांतरित कर देना होता है।

*

निश्चित रूप से, तुम्हें इसलिए “अच्छा” नहीं बनना है ताकि श्रीमां तुम्हें अपना प्रेम दें। उनका प्रेम तो हमेशा रहता है और मानव प्रकृति की कमजोरियां उसके सामने कोई मायने नहीं रखतीं। बस एकमात्र चीज है कि तुम इस तत्त्व के बारे में अभिज्ञ हो जाओ कि

उनका प्रेम हमेशा उपस्थित रहता है। क्योंकि चैत्य के सामने आने के लिए यह अभिज्ञता जरूरी है—चैत्य जानता है, जब कि मन, प्राण और भौतिक केवल सतही आभासों को देखते और उनका गलत अर्थ लगाते हैं।

*

‘क्ष’ शायद दो भूलें कर रहा है—पहली, वह श्रीमां से प्रेम की बाहरी अभिव्यक्ति की आशा करता है, दूसरी, उद्घाटन और समर्पण पर केंद्रित होने, बिना मांग के समर्पण करने की बजाय, वह कितनी प्रगति हुई है यही देखने में लगा रहता है। साधक ये दोनों भूलें हमेशा किया करते हैं। अगर तुम खुले हुए हो, अगर तुम समर्पण करो तो जैसे ही तुम्हारी प्रकृति तैयार हो जायेगी, प्रगति अपने-आप हो जायेगी, लेकिन कितनी प्रगति हुई है इसके लिए हमेशा चिंता और व्यग्रता कठिनाइयां, प्रतिरोध और हताशा ले आती हैं क्योंकि तब मन चीजों को सही दृष्टिकोण से नहीं देखता। ‘क्ष’ पर श्रीमां की विशेष कृपा है और हर रोज प्रणाम के समय वे उस पर सतत शक्ति बरसाती हैं। उसे मन तथा प्राण में बहुत शांत रहना सीखना होगा, आत्मोत्सर्ग करना होगा ताकि वह सचेतन हो सके और साथ-साथ ग्रहण भी कर सके। मानव प्रेम से एकदम भिन्न, भागवत प्रेम गभीर, विस्तृत तथा शांत होता है। उसके प्रति सचेतन होने और उसे प्रत्युत्तर देने के लिए तुम्हें अचंचल और विशाल होना होगा। ‘क्ष’ का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए—समर्पित होना; ताकि वह भगवान् का पात्र तथा साधन बन सके—उसे भागवत प्रज्ञा और प्रेम पर यह छोड़ देना चाहिए कि वे उसे आवश्यक वस्तु से भर दें। उसे मन में यह बात भी बहुत अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि इस बात पर आग्रह न करे कि निर्धारित समय पर उसे प्रगति करनी चाहिए,

विकसित होना तथा उपलब्धियां प्राप्त करनी चाहिए—इन सब चीजों में चाहे जितना समय लगे उसे प्रतीक्षा करने, डटे रहने के लिए तैयार रहना चाहिए, उसका सारा जीवन अभीप्सामय हो, उस एकमात्र चीज—भगवान्—के प्रति उद्घाटन हो। साधना का रहस्य है—अपने-आपको दे देना, किसी भी चीज की न मांग करना न उसे उपलब्ध करने की कामना ही करना। तुम जितना अधिक अपने-आपको दोगे उतना अधिक तुम्हारे अंदर प्राप्त करने की शक्ति बढ़ेगी। लेकिन उसके लिए समस्त अधैर्य और विद्रोह को जाना होगा। मुझे कुछ नहीं मिलता, कोई मेरी सहायता नहीं करता, कोई मुझसे प्रेम नहीं करता, मैं यहां से चला जाऊंगा, जीवन का त्याग कर दूंगा, आध्यात्मिक प्रयास छोड़ दूंगा—इस तरह के सभी सुझावों का त्याग करना होगा।

सफेद गुलाबों का शांतिदायक सौरभ

(श्रीमां के कुछ उत्तर)

मेरा कोई भी बालक शून्य नहीं हो सकता; वास्तव में, मेरे बालकों में से हर एक का अपना नियत स्थान और चरितार्थ करने के लिए विशेष लक्ष्य है। मैं उन सभी से समान रूप से प्रेम करती हूं और प्रत्येक के लिए समान रूप से—बिना किसी अभिरुचि या पक्षपात के—उसकी भलाई और प्रगति के लिए जो सचमुच आवश्यक होता है वही करती हूं।

रही बात प्रहारों की, तो यह तो बहुत समय से चला आ रहा मामला है और हो सकता है कि इन्हें एकदम से बंद करना आसान न हो—लेकिन एक दिन इन्हें बंद होना ही होगा। और तब तक मेरे वचन पर श्रद्धा बनाए रख कर और मेरी मदद को पुकार कर, जो

हमेशा प्रस्तुत रहती है, तुम प्रहारों को अल्पकालिक तथा तीव्रता में कम कर सकते हो।

६ नवम्बर १९५५

मैं केवल उन्हीं को आदेश देती हूँ जो पूरी तरह से और निःशेष रूप से समर्पित हों, क्योंकि इन आदेशों पर चर्चा नहीं की जा सकती, इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

औरों को मैं 'प्रकाश' तथा 'सत्य' दिखलाती हूँ और उन्हें तभी सलाह देती हूँ जब वे उसकी मांग करते हैं, और उन्हें हमेशा वह करने की छूट होती है जिसे वे अपने लिए उत्तम समझते हैं।

रही बात मेरी कृपा, प्रेम और आशीर्वादों की, वे तो हमेशा सभी के ऊपर छाये रहते हैं, लेकिन हर एक अपनी क्षमता, ग्रहणशीलता तथा समर्पण के अनुपात में उनसे लाभ उठाता है।

१ जुलाई १९५६

गभीर प्रेम की शांति तुम्हारी सारी सत्ता में प्रवेश करे और तुम्हें अचंचल हर्ष तथा बल से परिप्लावित कर दे।

२६ नवम्बर १९५६

यह रही 'लिओनार्डो द विंची' की एक पेंटिंग (संत ऐन की)। भागवत प्रेम और अनुकम्पा का कैसा सुन्दर चित्रण है—ऐसी अनुकम्पा जो सभी भूलों को मिटा देती और सभी गलतियों को पोंछ देती है...।

६ फरवरी १९५७

भागवत उपस्थिति ही जीवन को मूल्य प्रदान करती है। भागवत

उपस्थिति ही समस्त 'शांति', समस्त 'हर्ष' और समस्त 'सुरक्षा' का स्रोत है। अपने अंदर इस 'उपस्थिति' को ढूंढो और सारी कठिनाइयां गायब हो जायेंगी।

१९५७

हम जिसे 'अपना आप' कहते हैं वह तो बस अहं होता है—
हमारा सच्चा स्व तो भगवान् हैं।

२३ मार्च १९५८

केवल भगवान् सत्य हैं—बाकी सब मिथ्यात्व है।

और फिर भी भगवान् सब जगह उपस्थित हैं—पापी में भी और संत में भी।

७ अप्रैल १९५८

केवल भगवान् ही प्रेम हैं—बाकी सब स्वार्थी भावुकता है।

लेकिन भगवान् का प्रेम सब जगह और सबमें है।

१४ अप्रैल १९५८

शांत और विश्वस्त रहो तथा मुझे अंदर पाने की कोशिश करो, इससे तुम्हें सोने में मदद मिलेगी।

५ अगस्त १९५९

... जब मैं कहती हूं कि भगवान् की शरण में जाओ तो मेरा यह मतलब नहीं होता कि बस यह अपने-आप में काफी है। नहीं, ऐसा नहीं है; प्रगति की तीव्रता के लिए व्यक्तिगत प्रयास और अनुकूल परिस्थितियां भी आवश्यक होती हैं। लेकिन जो लोग भागवत प्रेम

की शरण लेते हैं वे वहां एक ऐसा सहारा, एक ऐसी सुरक्षा, और एक ऐसा हर्ष पाते हैं जो उन्हें सभी अग्निपरीक्षाओं का सामना करने और सभी मुश्किलों से पार पाने की शक्ति देता है।

३१ जनवरी १९६१

लेकिन 'वे' हमेशा हम सबके साथ होते हैं और अगर हम आवश्यक चीज करें—वह है बस उनसे प्रेम करना—तो हम सब उनके सतत संपर्क में हो सकते हैं।

२८ फरवरी १९६३

'प्रेम' जगत् का मूल है और 'प्रेम' ही उसका 'लक्ष्य' है।

२४ जुलाई १९६३

हमेशा कृतज्ञ रहो, परम प्रभु की इस अनुपम 'कृपा' को कभी न भूलो जो हर एक को उसकी त्रुटियों, उसके अज्ञान और गलत-फहमियों तथा उसके अहंकार, अहंकार के विरोधों और विद्रोहों के बावजूद छोटे-से-छोटे रास्ते से भागवत लक्ष्य की ओर ले जाती है।

हमारे ऊष्माभरे, प्रेममय और उज्ज्वल हृदय में कृतज्ञता की पवित्र लौ हमेशा जलती रहनी चाहिए ताकि वह समस्त अहंकार तथा समस्त अंधकार को विलीन कर दे; परमोच्च कृपा की उस कृतज्ञता की वह पवित्र लौ जो साधक को उसके लक्ष्य की ओर ले जाती है—और वह जितना अधिक कृतज्ञ होता है, जितना अधिक उस परम कृपा की क्रिया को स्वीकारता है, उसका आभारी होता है उतना अधिक उसके लिए रास्ता छोटा हो जाता है।

२६ जून १९६४

और
करने

१६१

हम
सब

१६३

१६३

मी न

लत-

ों के

ी है।

की

कार

उस

र ले

धिक

ता है

१६४

तुम्हारा सुन्दर गुलाब ही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा है, “क्या करना चाहिए?” परम प्रभु के प्रति समर्पण कर दो और उन्हें तुम्हें शांत और प्रसन्न बनाने दो।

२३ जुलाई १९६४

तुम्हारी यह प्रार्थना, “मेरे जीवन में बस एक ही प्रेम, एक ही सत्य, यानी प्रभु का सत्य हो” ठीक वही प्रार्थना है जो मैं चाहती हूँ और तुम्हारे लिए हमेशा चाहूँगी।

२६ सितम्बर १९६४

सभी अवसादक भावनाओं के परे जाने के लिए श्रीअरविन्द तुम्हें २४ के लिए यह सुंदर संदेश भेज रहे हैं।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

“हमारे अंदर प्रेम ऐसी भावना है जो पूरी तरह से अहेतुकी और स्वयम्भू होती है; प्रेम का प्रेम के सिवाय और कोई उद्देश्य नहीं है।”

—श्रीअरविन्द

२४ अप्रैल १९६६

प्रेम विश्व का वह स्रोत और शक्ति है जो धरती को उसके सर्जक से जोड़ती है।

सच्चे हृदय से अभीप्सा करो और एक दिन तुम प्रेम का अनुभव करोगे और प्रेम बन जाओगे।

२ सितम्बर १९६६

यहां चीजों के यथार्थ सत्य को कोई नहीं जानता। और हर एक

इस तरह बोलता है मानों वह जानता हो, लेकिन सचमुच कोई नहीं जानता।

अगर किसी दिन 'सत्य' यहां सबके लिए अपने-आपको प्रकट कर दे तो यहां के अधिकतर लोग—सभी जगहों के लोगों की तरह—अपने अज्ञान और अपनी मिथ्या व्याख्याओं के महा-अपराध से आतंकित हो उठेंगे।

इसलिए, मैं तुम सबको यह सलाह देती हूं कि शांत रहो और सभी निर्णयों से अपने-आपको दूर रखो—यही सबसे सुरक्षित है।

२२ मार्च १९६७

भूतकाल के साथ एकदम से संबंध काट लेना अच्छा है—ताकि केवल 'शाश्वत प्रेम' रहे।

८ सितम्बर १९६७

“मैं तुम्हारे साथ हूं”

(श्रीमां के वचन)

मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में विराजमान हूं, सचेतन रूप से तुम्हारे अंदर रहती हूं।

*

अपने हृदय को खोलो और तुम मुझे वहां पहले से ही मौजूद पाओगे।

*

मेरी निरन्तर प्रेममयी उपस्थिति का भान सदा बनाये रखो और सब कुछ ठीक होगा।

*

फरवरी 2005

बढ़ते हुए प्रकाश और शांति में हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।

आगे बढ़ो, सदा ऊपर उठते हुए प्रेम और आनन्द और शांति में हमेशा आगे बढ़ते रहो।

*

तुम्हें जगाने के लिए मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहते हैं, लेकिन तुम्हें उनका उपयोग करना भी तो चाहना चाहिए।

*

वे सभी अंतरात्माएं जो अभीप्सा करती हैं, मेरे सीधे संरक्षण में होती हैं।

*

प्रश्न—आप हमारी तरह क्यों आर्यो? आप सचमुच जैसी हैं उस तरह क्यों नहीं उतरतीं?

उत्तर—क्योंकि अगर मैं तुम्हारी तरह नहीं आती तो मैं तुम्हारे निकट कभी न आ पाती और तुमसे यह न कह पाती : “वह बनो जो मैं हूँ।”

सोसायटी समाचार

माताजी ने अपने नब्बेवें जन्मदिन पर कहा था—

तुम जितने वर्ष जिये हो उनकी संख्या तुम्हें बूढ़ा नहीं बनाती। तुम बूढ़े तब होते हो जब प्रगति करना बंद कर देते हो।

जैसे ही तुम्हें लगे कि तुम्हें जो कुछ करना था वह कर चुके, जैसे

ही तुम अनुभव करो कि तुम्हें जो कुछ जानना था वह जान चुके, जैसे ही तुम बैठकर अपने परिश्रम का फल भोगना चाहो और यह सोचो कि तुम जीवन में काफी कुछ कर चुके तो तुम एकदम बूढ़े हो जाते हो और तुम्हारा क्षय शुरू हो जाता है।

इसके विपरीत, जब तुम्हें यह विश्वास हो कि जो जानना बाकी है उसकी तुलना में तुम जो जानते हो वह कुछ भी नहीं है, जब तुम्हें लगे कि तुमने जो कुछ किया है वह जो कुछ करना बाकी है उसका केवल आरंभ-बिंदु है, जब तुम भविष्य को प्राप्त करने योग्य अनन्त संभावनाओं से भरे चमकते सूर्य के रूप में देखो तब तुम युवा हो। तुमने धरती पर चाहे जितने वर्ष बिताये हों तुम युवा और भावी कल की उपलब्धियों से समृद्ध हो।

और अगर तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा शरीर तुम्हें धोखा दे तो व्यर्थ की उत्तेजना में अपनी शक्ति नष्ट करने से बचो। तुम जो भी करो शांत, स्थिर और प्रकृतिस्थ होकर करो। शांति और नीरवता में अधिकतम शक्ति है।

२१ फरवरी १९६८

१७ नवम्बर—माताजी के महासमाधि-दिवस पर उनका कक्ष दर्शन के लिए खोला गया। सवेरे छह से साढ़े छह तक आश्रम में तथा शाम को क्रीड़ांगण में ध्यान हुआ। २० नवम्बर को भी उसी तरह सवेरे तथा शाम को ध्यान हुआ।

२४ नवम्बर—श्रीअरविन्द के 'सिद्धि-दिवस' पर लोगों ने उनके कमरे के दर्शन किये। सवेरे आश्रम में ध्यान हुआ।

५ दिसम्बर—श्रीअरविन्द के महासमाधि-दिवस पर उनका कमरा दर्शनार्थ खोला गया। सवेरे आश्रम में तथा शाम को क्रीड़ांगण में ध्यान हुआ। ९ दिसम्बर को भी उसी तरह सवेरे तथा शाम को ध्यान हुआ।

महत्त्वपूर्ण दिवसों पर ये संदेश बंटे :

१७ नवम्बर—श्रीमां को याद रखो और उनसे दूर होने पर भी ऐसा अनुभव करो कि वे तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी आंतरिक सत्ता जैसा कहे कि श्रीमां की इच्छा क्या होगी, उसी तरह क्रिया करो। तब तुम उनकी और मेरी उपस्थिति को सबसे अच्छी तरह अनुभव कर सकोगे और जहां कहीं जाओगे वहां-वहां अचंचलता तथा प्रकाश तुम्हारे संग चलेंगे और तुम हमारे वातावरण को अपने चारों तरफ सुरक्षा के रूप में लिये रहोगे।

—श्रीअरविन्द

२४ नवम्बर—तुम्हें भगवान् पर निर्भर रहना चाहिए और साथ-साथ साधना को भी जारी रखना चाहिए—भगवान् साधना के अनुपात में नहीं बल्कि अंतरात्मा की निष्कपटता तथा अभीप्सा के अनुपात में फल देते हैं। (अंतरात्मा की निष्कपटता से मेरा मतलब भगवान् के प्रति उसकी उत्कंठा और उच्चतर जीवन के प्रति उसकी अभीप्सा से है।) साथ ही, चिंता इसमें कोई सहायता नहीं पहुंचाती—“मैं यह बनूंगा, मैं वह बनूंगा, मैं क्या बनूंगा?” बल्कि कहो—“जो मैं चाहता हूं वह नहीं, बल्कि जो भगवान् चाहते हैं कि मैं बनूं वही बनने के लिए मैं तैयार हूं।” बाकी सब कुछ को इसी आधार पर चलना चाहिए।

—श्रीअरविन्द

५ दिसम्बर—श्रीअरविन्द हमारे बीच हमेशा हैं और उनके सामने अपने-आपको प्रकट करते हैं जो उन्हें देखने और सुनने के लिए तैयार हैं।
आशीर्वाद।

—श्रीमां

१ दिसम्बर २००४—आश्रम के विद्यालय—श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र ने अपनी ६१वीं जयन्ती मनायी। इस अवसर पर आश्रम के थियेटर में “रक्षक भागवत कृपा” नामक एक नृत्य-नाटिका प्रस्तुत की

गयी। इसी नाटिका के आमन्त्रण-पत्र पर छपी 'पेंटिंग' इस महीने की अग्निशिखा के आवरण पृष्ठ पर है जिसे हमारे विद्यालय की ही एक छात्रा ने आंका है।

इस नृत्य-नाटिका में प्रकाश और अंधकार, सत्य और मिथ्यात्व, ज्ञान और अज्ञान के बीच चल रहे महान् युद्ध को दर्शाया गया। इसमें दिखलाया गया कि मनुष्य अपने अंदर सचेतन प्रगति की संभावना को संजोये हुए है और अगर वह भागवत शक्ति और कृपा के प्रति उद्घाटित हो जाए तो ये उसे तथा सारे संसार को अन्धकारमयी शक्तियों पर अंतिम विजय दिलाने में सफल होंगे।

२ दिसम्बर २००४—आश्रम के शारीरिक शिक्षण की जयन्ती पर 'स्पोर्ट्स ग्राउण्ड' में वार्षिक कार्यक्रम हुआ। "समर्पण" नामक इस कार्यक्रम में छोटे बच्चों ने 'भावी ओलम्पियन्स' नामक सुंदर ड्रिल की। इसके बाद विभिन्न दलों ने अपनी-अपनी ड्रिलें प्रस्तुत कीं।

*

श्रीअरविन्द सोसायटी पांडिचेरी के नारी-आयोग ने 'समता' विषयक सेमिनार का आयोजन २१, २२ तथा २३ नवम्बर को पांडिचेरी के बीच ऑफिस के हॉल में किया। भारत के विभिन्न प्रदेशों से ७५ तथा विदेश के १० सदस्यों ने इसमें भाग लिया।

श्री प्रदीप नारंग ने लंदन इत्यादि का दौरा अक्तूबर-नवम्बर में किया। २३ अक्तूबर को श्रीअरविन्द केन्द्र 'फेयरफैक्स मैशन' में उनका भाषण हुआ और ६ नवम्बर को हैरो, लंदन श्रीअरविन्द सोसायटी केन्द्र में वे 'प्रार्थनाओं का प्रतीक' विषय पर बोले।

श्री गोपाल भट्टाचार्य ने सितम्बर में जर्मनी का दौरा किया और उन्होंने श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के विषय में भाषण दिये। बाद में वे श्रीअरविन्द सोसायटी लंदन भी गये।

नैरोबी (केनया)— केंद्र ने ८ नवम्बर २००४ को नैरोबी अस्पताल में १२०० लघु-पुस्तिकाएं बांटीं जिनमें श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के ग्रंथों से उद्धृत वचन तथा लेख हैं। साथ ही छोटी पुस्तिकाओं की ११०० प्रतियां उन्होंने २८ अक्तूबर २००४ को 'नैरोबी हॉस्पिस' में भी बांटीं। केंद्र ने ११ लघु-पुस्तिकाओं के तीस सेट 'रोटरी क्लब' को भी उपहार-स्वरूप दिये तथा बीस हजार लघु-पुस्तिकाएं नैरोबी के Y.M.C.A. में भी दीं।

जयपुर (राजस्थान) में २५ से २७ अक्तूबर तक 'सावित्री' पर श्री कैवल्य स्मार्त ने एक शिविर लगाया। 'जयपुर-विकास-समिति' ने यह अनुमति दे दी कि वहां के 'सेण्ट्रल पार्क' में श्रीमां द्वारा दिये गये फूलों के आध्यात्मिक अर्थ भी लिखे जायें।

बैंगलोर (कर्णाटक) के जे. पी. नगर केंद्र में श्रीअरविन्द शिक्षाकेंद्र पांडिचेरी की नीलजे ने १ अक्तूबर २००४ को "चैत्य शिक्षा" पर तीन घण्टे के 'वर्कशॉप' का आयोजन किया।

आश्रम के किट्टू रेड्डी ने कक्षा तीन के लिए "Moral & Dynamic Spiritual Values" नामक पुस्तक का विमोचन किया।

अम्बाला (हरियाणा) शाखा ने ११ अक्तूबर से १० नवम्बर २००४ तक पांडिचेरी के श्री सोम देव के 'सावित्री' तथा 'योग पर पत्र' विषयक भाषणों का आयोजन अम्बाला में किया। इसके अतिरिक्त ये अन्य विषयों पर भी विभिन्न स्थानों पर बोले।

पूर्णिया (बिहार) में नवनिर्मित 'मातृ मन्दिर'—ध्यान-कक्ष—का उद्घाटन २४ नवम्बर को हुआ।

इन्दौर (मध्य प्रदेश) में डॉ. सुमन कोचर इन्दौर की कई संस्थाओं में गयीं। उनका लेख "श्रीअरविन्द ने हमें चेतना को परिवर्तित करने का रास्ता दिखलाया" दैनिक अखबार "नयी दुनिया" में १५ अगस्त को छपा।

यदि आप, जैसा श्रीमां ने बताया है, उसके अनुरूप श्रीअरविन्द का अध्ययन करने में रुचि रखते हैं :

“श्रीअरविन्द का अध्ययन पुस्तकों के द्वारा नहीं बल्कि उन्होंने विषयों के ऊपर—दिव्य सत्ता पर, एकता पर, धर्म पर, विकास पर, शिक्षा पर, आत्म-पूर्णता पर, अतिमानस इत्यादि पर—क्या कहा है, उसके आधार पर किया जाना चाहिए।”

और “श्रीअरविन्द ने समस्त विषयों पर क्या कहा है, इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करके कोई व्यक्ति सरलता से इस जगत् की वस्तुओं का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है।”

(‘श्रीमातृवाणी’ खण्ड १२)

ऑन लाइन विश्वविद्यालय से पढ़ें

जो संचालित है

श्रीअरविन्द उच्च शोध केन्द्र

पाण्डिचेरी द्वारा

७.८.१९७२ को

विश्वविद्यालय का नाम श्रीमां द्वारा अनुमोदित और

आशीर्वाद प्राप्त है।

श्रीअरविन्द-दर्शन : आगामी कल का विश्वविद्यालय

विस्तृत जानकारी के लिए लॉग ऑन करें :

www.the_university_of_tomorrow.net

यदि आप २००५ से आरम्भ होनेवाले दूसरे सेमेस्टर से आना चाहते हैं तो आवेदन-पत्र २९ मार्च २००५ तक पहुंच जाना चाहिए।* किसी भी जानकारी के लिए कृपया ई-मेल करें :

sacar@auromail.net

* सीमित गणना में ही छात्र लिए जायेंगे। आवेदन-पत्र शीघ्र भेजें।

“हमारा लक्ष्य है अपनी सत्ता की पूर्णता को चरितार्थ करना और मानव पशु को भागवत मनुष्य में बदल देना।”

□ श्रीअरविन्द

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

विशेषताएं

- (१) पूज्या मां के आशीर्वाद से पुण्डित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- (२) नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- (३) महर्षि श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- (४) प्राचीन आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- (५) बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।

- शिक्षण सत्र प्रतिवर्ष ०१ अप्रैल से प्रारम्भ।
- पंजीकरण प्रतिवर्ष २० जनवरी से प्रारम्भ।
- प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १०० डाक से प्रोस्पेक्टस मंगाने पर रु. १५०

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

☎ 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

amarnath_mtr@rediffmail.com/aditya_vajpeyi@rediffmail.com

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura
New Delhi - 110015

Phone : 530537

Telex : 31-76124 STEXIN

Gram . SPINTEX

खा

35
8



Haridwar

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

मार्च २००५

अग्निशिखा मार्च २००५

वर्ष ३५, अंक ८, पूर्णांक ४१६

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां	१
'सम्पादकीय' : सुनामी	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		६
श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष :		
निष्कर्ष	नीरदवरण	९

सबसे पहले व्यक्ति बनो (श्रीमां के वचन)

व्यक्तित्व	१४
सच्ची वैयक्तिक सत्ता	१५
पहले यंत्र को गढ़ना जरूरी है	१६
बहुत-से व्यक्तित्व हैं, बहुत-सी नियतियां हैं	२१
हमेशा चुनाव होता है	२८
व्यक्ति किससे बनता है ?	२९
सचेतन सत्ता बनो	३०

तुम्हें
अपने
में ग्रह
ही भग
तुम्हें
अंदर
१८ ज

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ
नव सर्जन

सबल, स्थायी, सुरभिमय, यह आकाश की ओर सीधा उठता है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

तुम्हें हमेशा पूरी-पूरी सहायता दी जाती है, लेकिन तुम्हें उसे अपने बाहरी साधनों द्वारा नहीं बल्कि अपने हृदय की नीरवता में ग्रहण करना सीखना चाहिये। तुम्हारे हृदय की नीरवता में ही भगवान् तुमसे बोलेंगे और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे और तुम्हें अपने लक्ष्य तक पहुंचावेंगे। लेकिन इसके लिए तुम्हारे अंदर भागवत कृपा और प्रेम में पूरी श्रद्धा होनी चाहिये।

१८ जनवरी १९६२

—श्रीमां

‘सम्पादकीय’ :

सुनामी

क्या कारण हो सकता है कि बार-बार भारत पर भीषण आपत्तियाँ आती जा रही हैं? सबसे पहले कच्छ में भीषण भूकम्प हुआ, संसार के कोने-कोने से सहायता आ पहुँची, फिर आया छोटा-सा प्रलय ओड़िसा में और सब कुछ तहस-नहस हो गया। अभी ओड़िसा संभल नहीं पाया था कि केवल भारत ही नहीं, सारे एशिया पर दहाड़ता हुआ समुद्र सीमा तोड़ कर सर्वनाश करने उछलता-कूदता, फूँफकारता हुआ पानी की ऊँची-ऊँची दीवारों को तट की ओर धकेलता दौड़ा चला आया मानों शिव ने रुद्र-रूप धारण कर प्रलयकारी तांडव से समुद्र को मथ डाला और भयातुर मनुष्यों की ‘त्राहि माम्, त्राहि माम्’ की पुकार और चीखें चारों ओर फैल गयीं, किंतु उस समय समुद्री शंकर के क्रोध को शांत करना असंभव था। कुछ ही घण्टों में लाखों मनुष्यों की जीवनलीला समाप्त हो गयी, नन्हें-मुत्रे माँ-बाप को खोजते रहे, तो कहीं माता-पिता अपने बच्चों के लिए बिलखते रहे। दिशाहारा जनता भटकती रही।

इस सर्वनाशी घटना को जापानी भाषा में ‘सुनामी’ कहते हैं। कितना शुभ नाम है! फिर भी हम जानते हैं कि हर अशुभ के पीछे कोई-न-कोई शुभ संकेत अवश्य रहता है। पता नहीं इस भयंकर तूफान में भी क्या शुभ छिपा बैठा है। असंख्य मनुष्य काल की चपेट में आ गये, लेकिन यहाँ भी ‘जाको राखे साइंया मेट सके ना कोय’ जैसी घटनाएं भी हुई। कुछ महीनों की छोटी बच्ची घर में थी, माँ-बाप बाहर थे, तेज़ी से आती लहर के कारण वे अपने घर में जा न पाये। जब लहर पीछे हटी तब माँ-बाप ने सहमते हुए घर में पाँव

मार्च २

रखा अ
पानी ते

ए

एक स्

मिनटों

बढ़ा।

बच्चों

में अदृ

आयी,

लहरों

ला छो

ह

प्रयास

दुष्कर्म

करने

को जा

होकर

की अ

य

के अ

मनुष्य

‘सुनाम

भेद-भ

समय

भाई-ब

हम ब

मार्च 2005

रखा और देखा कि बच्ची अपनी छोटी गद्दी पर लेटी है और गद्दी पानी के ऊपर तैर रही है !

ऐसी कितनी घटनाएं इस तूफ़ान के समय हुई होंगी ! इसी तरह एक स्त्री अपने दो छोटे बच्चों को लेकर समुद्र-तट पर आई और मिनटों में समुद्र विकराल रूप धारण कर तीनों को लीलने आगे बढ़ा। स्त्री के शरीर में इतनी शक्ति न थी कि लहरों के थपेड़ों से बच्चों को बचा कर सुरक्षित बाहर निकल पाती। एक बच्चा लहरों में अदृश्य हो गया, दूसरे बच्चे को छाती से लगाये वह बाहर निकल आयी, लेकिन उसकी आँखें बरस रही थीं। कुछ समय बाद ही लहरों ने मानों करुणावश खोये हुए बेहोश बालक को जमीन पर ला छोड़ दिया। माँ हँस रही थी और रो भी रही थी।

हम लौटकर फिर इन दुर्घटनाओं के कारण को खोजने का प्रयास करें। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि पृथ्वी मनुष्यों के दुष्कर्मों से, पापों से अत्यंत दुःखी होकर भगवान् के पास फ़रियाद करने गयी थी, क्या उसी के परिणाम-स्वरूप कुपित देव ने मनुष्यों को जाग्रत् करने इन दुर्घटनाओं को दोहराया ? या प्रकृति स्वयं क्रुद्ध होकर भयंकर रूप धारण कर रही है ताकि मनुष्य अपने सच्चे रूप की ओर लौट आये ?

यह सब कल्पना हो सकती है किंतु एक बात सच है कि अतिमानस के अवतरण के बाद भी मानव समाज में कोई जागृति नहीं आई। मनुष्य अपने वही पुराने ढर्रे पर चल रहा है। ऐसा लग रहा है कि 'सुनामी' ने संसार को ऐसा झकझोर दिया है कि लोग जाग उठे। भेद-भाव भूल कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' साकार हो उठा है। इस समय हम सब एक हैं, चाहे कोई जापानी हो, अंग्रेज़ हो, सब अपने भाई-बहनों को सहायता देने के लिए तैयार हैं। बस इसी भावना को हम बनाये रखें।

अतिमानस के अवतरण के बाद भी वही भ्रष्टाचार, वही झूठ-फरेब, धोखा-धड़ी और अहम् के फेरे चलते रहे। शायद यह सब देख कर माताजी ने १९६७ में ऐसा एक संदेश दिया था जो कि हमें झकझोर दे। उन्होंने लिखा था,

१९६७

मनुष्यो, देशो

महाद्वीपो !

चुनाव अनिवार्य है;

सत्य या फिर

रसातल ।

चूँकि हम लापरवाही बरतते रहे, इसलिए प्रकृति ने या पृथ्वी माता ने हमें रसातल का छोटा-सा रूप दिखा दिया।

माताजी ने हमें चेतावनी दी थी किन्तु... क्या हमने उस चेतावनी की ओर ध्यान दिया?

माताजी ने हमसे कहा था कि पृथ्वी के इतिहास में स्वर्णिम अवसर आया है जब पहली बार मानवजाति के सामने एक ऐसा साहस-कार्य प्रस्तुत है जिसके बारे में ऋषियों ने सोचा तक न था और वह साहस-कार्य था पृथ्वी के भौतिक जीवन का परिवर्तन करना। युगों से कहीं सोया हुआ यह स्वप्न साकार होने जा रहा है किंतु उसके लिये हमें ग्रहणशील होना चाहिये। उस दिव्य जीवन के लिये अभीप्सा करनी चाहिये, अपनी तुच्छ इच्छाओं तथा कामनाओं को त्यागना चाहिये और हमारे बिखरे व्यक्तित्वों को एक ही सूत्र में बाँध कर एकलव्य की भाँति लौलीन होकर, दिव्य ध्येय पर पूरे मन, प्राण और शारीरिक चेतना से माताजी के स्वप्न को साकार करने के लिए एकाग्र होना चाहिये। भारतवासियों को भगवान् ने यह स्वर्णिम

मार्च 2005

अवसर दिया है कि वे अपने गौरव को पुनः प्राप्त कर लें।

‘सुनामी’ ने संसार को ऐसा झकझोर दिया है कि लोग जाग उठे हैं। सारा संसार भेद-भाव भूलकर, लड़ाई-झगड़े भुलाकर एशिया की ओर सहानुभूति से सहायता करने आ रहा है। यह स्वाभाविक है कि सबसे ज्यादा सद्भावना और प्रेम की धारा भारत के लोगों और सारे एशिया पर बह रही है। सबसे कर्मठ और उदार पंजाब का एक दल दक्षिण भारत आया और बेघर लोगों के लिए खाना पका कर उन्हें परोस रहा है। यह है सच्चा, उदार प्रेम!! इस तरह ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ साकार हो उठा है। यही सुनामी का शुभ लक्षण है न? इस भावना को अगर हम बनाये रखें तो समझिये कि हमने निश्चित रूप से प्रगति कर ली है, किंतु यह केवल प्रारंभ है; हमें दूर, दूर जाना है।

हमारे राष्ट्र में युगों से पूर्वजों ने अपनी साधना से जो अद्वितीय वातावरण तैयार किया है वह हमारी विरासत है। माताजी और श्रीअरविन्द तो हमारे साथ हैं ही, केवल हमें उनकी ओर खुलना चाहिये। उनकी सहायता से असंभव संभव होता है, अकल्पनीय साकार हो उठता है। बस, हमारी ओर से अभीप्सा और समर्पण ही चाहियें।

—अनुबेन

दैनन्दिनी

मार्च

१. यह वर्ष तुम्हारे लिए पूर्ण उद्घाटन और सीमाओं को तोड़ने का वर्ष हो।
२. फिर से दृढ़ निश्चय हो कि तुम अपनी चेतना और अपनी क्रिया में से उस सबको निकाल बाहर करो जो उसे कुरूप बनाता, छोटा करता, धुंधला बनाता और अंततः तुम्हारी प्रगति को रोक देता है और तुम्हारे स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।
३. हर एक में और सब में उच्चतम चेतना को जीवन का शासक होना चाहिये।
४. हमें सतत अभीप्सा की स्थिति में रहना चाहिये लेकिन जब हम अभीप्सा न कर सकें तो हम एक बालक की सरलता के साथ प्रार्थना करें।
५. जो सच्चाई के साथ भगवान् को पुकारते हैं उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।
६. मेरे अंदर सब कुछ तेरी सेवा में रहे।
७. मेरे प्रभु, प्रतिदिन, सभी परिस्थितियों में हृदय की पूरी सच्चाई के साथ मैं जपूँ—तेरी इच्छा पूरी हो मेरी नहीं।
८. हे प्रभु, बड़ी विनय के साथ मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपने प्रयास के शिखर पर रहूँ, कि मेरे अन्दर कोई भी चीज़ सचेतन या अचेतन रूप से, मेरे पवित्र उद्देश्य की सेवा करने में कोताही करके तेरे साथ विश्वासघात न करे।
गभीर भक्ति के साथ मैं तुझे प्रणाम करता हूँ।
९. हे प्रभु, मुझे भय और चिंता से मुक्त कर ताकि मैं अपनी अधिक-से-अधिक योग्यता के साथ तेरी सेवा कर सकूँ।

मार्च 2005

१०. प्रभु, वर दे कि एक बार की गयी और पहचानी गयी मूर्खता फिर से न होने पाये।
११. मुझे निश्चल विश्वास, शांत बल, उदीप्त श्रद्धा और भक्ति प्रदान कर।
१२. प्रभु, वर दे कि मैं पूरी तरह, सदा के लिए तेरे प्रति निष्ठावान् रहूँ।
१३. मेरे प्रभु, चेतना को स्पष्ट और यथार्थ बना, वाणी को पूरी तरह सच्चा बना, समर्पण पूर्ण हो, स्थिरता सम्पूर्ण और सारी सत्ता को प्रकाश और प्रेम के सागर में रूपांतरित कर दे।
१४. प्रभु, मुझे पूर्ण सच्चाई प्रदान कर, वह सच्चाई जो मुझे सीधा तेरे पास ले जाये।
१५. प्रभु, मुझे वास्तविक सुख दे, वह सुख जो केवल तेरे ऊपर निर्भर रहता है।
१६. मैं तेरा हूँ, मैं तुझे जानना चाहता हूँ ताकि जो कुछ मैं करूँ वह सब केवल वही हो जो तू मुझसे करवाना चाहता है।
१७. प्रभु, मैं तुम्हारा और तुम्हारे योग्य बनना चाहता हूँ, मुझे अपना आदर्श बालक बना।
१८. मेरे मधुर प्रभु, मेरी छोटी-सी माँ, मुझे सच्चा प्रेम प्रदान करो, ऐसा प्रेम जो अपने-आपको भूल जाता है।
१९. अचल शांति का रस लेने का एकमात्र उपाय है सभी परिस्थितियों-में सदा वही चाहना जो तू चाहता है।
२०. प्रभु, हमें बल दे कि हम पूर्ण रूप से उस आदर्श को जी सकें जिसकी हम घोषणा करते हैं।
२१. हमें यशस्वी भविष्य में श्रद्धा और उसे चरितार्थ करने की क्षमता प्रदान कर।
२२. हे अद्भुत कृपा, वर दे कि हमारी अभीप्सा हमेशा अधिक

तीव्र, हमारी श्रद्धा हमेशा अधिक जीवन्त हो, हमारा विश्वास हमेशा अधिक निरपेक्ष हो।

तू सर्व-विजयी है।

२३. हमारी सहायता कर कि हम तेरे योग्य बालक बन सकें।

२४. प्रभु, सुन्दरता और सामञ्जस्य के देव,

वर दे कि हम संसार में तेरी परम सुन्दरता को अभिव्यक्त करने योग्य यन्त्र बन सकें।

यही हमारी प्रार्थना और हमारी अभीप्सा है।

२५. मधुर माँ, वर दे कि हम सरल रूप से अब और हमेशा के लिए तेरे नन्हें बालक बने रहें।

२६. तेरा हृदय मेरे लिए परम आश्रय है जहाँ हर चिंता शांत हो जाती है। कृपा कर कि यह हृदय पूरा खुला रहे ताकि वे सब जो यातना में हैं, परम आश्रय पा सकें।

२७. समस्त हिंसा को शांत कर दे, तेरा प्रेम ही राज्य करे।

२८. हे मेरे प्रभु, तेरी सुरक्षा सर्वसमर्थ है। वह हर शत्रु को हरा देती है।

२९. मेरी एक छोटी-सी माँ है

जो मेरे हृदय में आसीन है;

हम दोनों एक साथ इतने प्रसन्न हैं

कि हम कभी अलग न होंगे।

३०. तुम्हारा जीवन दिव्य सत्य के लिए सतत खोज हो, तब वह जीने योग्य होगा।

३१. अपनी अभीप्सा को उद्दीप्त और निष्कपट बनाओ और यह कभी न भूलो कि तुम भगवान् के बालक हो। वह तुम्हें कोई भी ऐसी चीज़ करने से रोकेगी जो भगवान् के बालकों के अयोग्य हो। ('श्रीमातृवाणी', खंड १५ से)

श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष

निष्कर्ष

वे यहीं हैं

फिर से अप्रत्याशित ! जो दिव्य लीला बारह वर्ष तक चलती रही उस पर हठात् परदा गिर गया। कौन इस घटना का पूर्वाभास कर सकता था भला ? परम अभिनेता जिन्होंने अपने जन्म-दिवस— १५ अगस्त और साथ ही २४ नवम्बर को भक्तों को दर्शन दिये, फिर एकदम अप्रत्याशित रूप से मंच छोड़ कर चले गये ! जब रेडियो द्वारा दुनियाभर में उनके असंख्य भक्तों के पास यह हृदय-विदारक बात पहुँची तो उनके लिए उस पर विश्वास करना सचमुच कठिन हो गया। बहुत-से लोग किसी-न-किसी साधन द्वारा दिवंगत मनीषी के अन्तिम दर्शन करने पॉण्डिचेरी आ पहुँचे।

वे हमें बाईस वर्ष पहले छोड़ गये।^१ उनकी जन्म-शताब्दी अब आ रही है और श्रीअरविन्द की महिमा को सम्मान देने भारत सरकार विनम्र किन्तु सार्थक भूमिका निभा रही है। शताब्दी सारे भारत में और दुनिया के कई प्रदेशों में मनायी जायेगी। १९५६ में अतिमानस का अवतरण हुआ। इस घटना के बाद संसार आश्रम को एक ऐसी आध्यात्मिक संस्था मानने लगा है जहाँ से सारे संसार पर नयी दिव्य ज्योति फैल रही, विकीरित हो रही है। राजनीतिक क्षेत्र में भी भारत संसार के राष्ट्रों में प्रतिष्ठा पा रहा है और भारत की महानता को स्वीकार करने में जो गम्भीर बाधा थी उसे भी काफ़ी हद तक दूर कर दिया गया है। श्रीअरविन्द की भविष्यवाणी भी सच साबित हुई।

^१ नीरद दा ने सन् १९७२ में लिखा था। (सं.)

अब हम समझ पाते हैं कि श्रीअरविन्द ने जन्म क्यों लिया था। जिन स्वप्नों को उन्होंने संजोया था और जिनके लिए वे अथक परिश्रम करते रहे वे अब चरितार्थ होने जा रहे हैं। श्रीअरविन्द इने-गिने व्यक्तियों के लिए नहीं आये थे, न वे किसी एक राष्ट्र के लिए या जाति के लिए आये थे; वे तो पृथ्वी का रूपांतर करने आये थे। उस पृथ्वी को रूपांतरित करने आये थे जिसको भगवान् ने और मनुष्य जाति ने भी उसके भाग्य पर छोड़ दिया था। बहुत सारे ईश-मानव दुःखी मानवजाति को कुछ राहत दिलाने या दुःख-दर्द से बच निकलने का दरवाज़ा दिखाने आये थे किंतु अतिमानसिक अवतार यानी श्रीअरविन्द से पहले कोई भी ऐसा नहीं आया जिसने जड़तत्त्व को तत्त्वतः ब्रह्म के रूप में स्वीकार कर उसे दिव्य बनाने की राह सुझायी हो। जब कार्य तेजी से चल रहा था, तभी हठात् परदा गिर गया।

दबे हुए किसी पुराने दर्द की न्याई प्रश्न उमड़ पड़ता है, “उन्होंने शरीर क्यों छोड़ा? हालाँकि यह इच्छा-मृत्यु थी, फिर भी ऐसी कौन-सी अति आवश्यक अनिवार्यता थी जिसके कारण उन्हें पीछे हटना पड़ा? क्या उस दुर्घटना (पाँव की चोट) के पीछे कोई सूक्ष्म या अप्रत्यक्ष कारण था जिसने उनकी दिनचर्या की लय को बदल दिया और वे पीछे हट गये? अगर दुर्घटना न होती तो बाद की घटनाओं का क्रम क्या होता?”

माताजी ने १९३५ में एक साधक से कहा था कि वे दस वर्ष में १६ साल की किशोरी दीखेंगी। मुझे भी उन्होंने विस्तार से अपने एक अन्तर्दर्शन की बात सुनायी थी जिसका सारांश यह था कि उस अन्तर्दर्शन में वे स्वयं और श्रीअरविन्द इतने युवा और परम सुन्दर थे कि साधकों में से कोई भी उन्हें पहचान नहीं पाया। श्रीअरविन्द के पत्रों से भी हमें यही अंतःप्रेरणा मिली कि अतिमानस का भौतिक

मार्च 2005

स्तर पर उतरना निकट है। १९४० में लिखे उनके सानेट में से एक में हम पाते हैं कि वे मृत्यु के अंत और अपने भौतिक रूपांतर की बात करते हैं। वे कहते हैं,.... "मुखौटे के पीछे अविनाशी, अक्षर मुख का साँचा अधिक स्पष्ट होता जा रहा है..." इन सब शुभ लक्षणों के बावजूद ऐसा क्या हो गया कि जिसने शुभ-चक्र को उल्टा घुमा दिया? किस अनिवार्य आदेश ने यशस्वी प्रतिज्ञा को रद्द कर दिया और उस पर अपना सर्वोपरि आधिपत्य जमा लिया? ऐसे अनुमान, कल्पना और प्रश्न बेकार हैं, व्यर्थ हैं क्योंकि उत्तर भी अटकलबाजी ही होगी जब तक कि श्रीअरविन्द या स्वयं माताजी इस रहस्य को सुलझा न दें।

श्रीअरविन्द के रहस्यमय आत्म-बलिदान के साथ-साथ दूसरा रहस्यमय प्रश्न भी उठता है जो हमें उलझन में डाल देता है। जिस तरह योगी अपना शरीर यौगिक उपाय से छोड़ते हैं उसी तरह वे भी आसानी से वही उपाय अपना लेते, किन्तु उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया और शरीर छोड़ने के लिए सामान्य तरीका क्यों चुना? मुझे जो उत्तर मिला वह यह है कि श्रीअरविन्द ने अपने जीवन में प्रकृति के सारे नियमों और विधानों को माना, जिन्हें वे प्रकृति के खेल की शर्तें कहा करते थे। इन शर्तों को भी नयी दिशा में मोड़ा जा सकता है यद्यपि जिनका अनुसरण प्रकृति करती नहीं है, लेकिन फिर भी उनका अनुसरण करने की क्षमता प्रकृति में छिपी रहती है। इस तरह प्रकृति का प्रयोग अतिप्राकृतिक ढंग से भी किया जाता है। जब कभी श्रीअरविन्द को अपने बारे में या और लोगों के बारे में सीधा चमत्कारिक ढंग से या विशेष रूप से हस्तक्षेप करना होता था तब भी उन नियमों और विधानों की पूरी-पूरी अवज्ञा करके वह कोई सनकी और अंत में नगण्य क्रिया नहीं होती थी। ऐसे समय भी एक प्रक्रिया का नियम बना रहता था। श्रीअरविन्द दिव्य कार्य के

विभिन्न पक्षों को यूँ समझाते हैं : “उसमें भी भगवान् खेल की शतों के अनुसार ही कार्य करते हैं। पहले उन्हें उन नियमों, विधानों को बदलना पड़ता है, तब कहीं जाकर वे आगे बढ़ते हैं और चमत्कारों की शृंखला खड़ी कर देते हैं।” प्रकृति के नियम का अनुसरण करते हुए शायद वे मृत्यु की ठोस अनुभूति लेना चाहते थे ताकि मृत्यु की शक्ति पर विजय पाकर संसार के लिए उसे जीत लें। साथ-साथ मृत्यु की इस सामान्य प्रक्रिया ने वह अप्रत्याशित अवस्था खड़ी कर दी जो आध्यात्मिक शक्ति से अत्यंत महत्त्वपूर्ण और असाधारण प्रत्युत्तर लायी। मृत्यु की ओर बढ़ने के साथ-साथ अतिमानसिक दिव्य प्रकाश भी वेग से नीचे उतरने लगा। माताजी के वक्तव्य से उस समय क्या हो रहा था उसका संकेत हम पा सकते हैं, “जैसे ही श्रीअरविन्द अपने शरीर से हट गये वैसे ही जिसे वे ‘प्रकाश का मन’ कहते थे, मेरे अन्दर चरितार्थ हो गया।” हम यह भी समझ पाये कि उनकी मृत्यु के परिणाम-स्वरूप कई दिनों तक उनका शरीर अतिमानसिक प्रकाश से आप्लावित रहा।

हमने जिस धक्के और निराशा तथा भावशून्यता का अनुभव किया उसकी कल्पना की जा सकती है, उसका वर्णन करना संभव नहीं है। हालाँकि गुरु के जीवन-काल में भी हम उन्हें वर्ष में केवल चार बार ही देख पाते थे, फिर भी उनकी उपस्थिति के स्पंदन का अनुभव हम जिस हवा में साँस लेते थे उसमें करते थे। अपनी नींद में, अपने जीवन के हर क्षण, हम उनकी उपस्थिति का अनुभव करते थे। विशेष रूप से दुर्घटना के बाद वे मानों हमारे नज़दीक आ गये थे। हमारे लिए तो वे स्थूल रूप से भी हमारे पास आ ही गये थे। इसलिए यह आकस्मिक अनुपस्थिति हमें मुँह बाये अगाध गर्त-सी लग रही थी जो हमारे अस्तित्व को निगलने के लिए तैयार थी। मैं कभी यह सोचता हूँ कि अगर माताजी उस समय न होती और

मार्च 2005

आश्रम के विशाल जीवन को, सारी सृष्टि को अपने असीम प्रेम और अनुकंपा के आलिंगन में न भर लेतीं, तो क्या होता? जब कि वे ईश्वर-रूप थीं फिर भी क्या हम कभी जान पायेंगे कि उस समय उनकी दशा क्या हुई होगी? जिस तरह श्रीअरविन्द ने “परिश्रम किया, संघर्ष किया और दुःख झेला” उसी तरह माताजी ने भी “दुःख झेला और सहन किया।” हम श्रीअरविन्द की दुर्घटना के प्रारंभिक दिनों में माताजी के दुःख और सहनशीलता के साक्षी थे किंतु अब प्रभु का आदेश था कि माताजी उनके कार्य को जारी रखें। जो असीम रिक्तता अब बन गयी थी उसे वे ही भर पायेंगी। ‘सावित्री’ की इन पंक्तियों के भिन्न संदर्भ से हम ऐसा ही संकेत पाते हैं :

“अधूरी सृष्टि के गह्वर को
भ्रामक देवत्व ने दर्द की
अपनी मशाल से आलोकित कर दिया
और अपने बृहद् स्व से गह्वर को भरने
उसे बुलाया।”

अतः यह श्रीअरविन्द की इच्छा-मृत्यु ही थी। यह स्पष्ट हो जाता है।

मेरे एक प्रश्न के उत्तर में श्रीअरविन्द ने १९३५ में लिखा था “... या शायद मेरे कहने का मतलब यह था कि बीमारी को जीतने की शक्ति तो मेरे अंदर है किन्तु दुर्घटना, ज़हर और इच्छा-मृत्यु भी मौत का साधन हो सकती है। हाँ, यह ठीक है कि माताजी ने और मैंने हज़ारों बार मृत्यु और बीमारी को शक्ति की एकाग्रता से या केवल संकल्प-बल से भगाया है।”

—नीरदवरण

सबसे पहले व्यक्ति बनो

(श्रीमां के वचन)

व्यक्तित्व

व्यक्तित्व का होना एक विजय है। और जैसा कि श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं, यह पहली विजय केवल एक पहली अवस्था है। जब तुम एक बार अपने अंदर व्यक्तिगत, स्वतंत्र और सचेतन सत्ता जैसी चीज़ का अनुभव कर लो तो तुम्हें यही करना होगा कि उस आकार को तोड़कर आगे बढ़ो। उदाहरणार्थ, यदि तुम मानसिक तौर पर प्रगति करना चाहते हो तो तुम्हें अपने सभी मानसिक रूपों को, अपनी सभी मानसिक रचनाओं को तोड़ देना होगा ताकि नयी रचनाएं बना सको। तो, पहले तो अपने को व्यक्ति रूप में लाने के लिए घोर परिश्रम की आवश्यकता होती है और फिर प्रगति करने के लिए सब किये-कराये को नष्ट कर देना पड़ता है। परंतु जैसे कि तुम किसी क्रिया को करते हुए उसपर ध्यान नहीं देते, यह केवल आदत के द्वारा होती रहती है—स्वभावतः हमेशा नहीं; लेकिन कह सकते हैं कि यहाँ काम करने, पढ़ने, उन्नति करने, कुछ करने का प्रयास, अपने-आपको कुछ थोड़ा-सा गढ़ना यह एक आदत से होता जाता है—तुम इसे बिलकुल सहज-स्वाभाविक रूप से करते हो और जैसा कि मैंने कहा, करते हुए अपने ऊपर ध्यान भी नहीं देते।

जब इन बाह्य आकारों की आपस में रगड़ होती है केवल तभी तुम यह अनुभव करना शुरू करते हो कि तुम दूसरों से भिन्न हो। अन्यथा अपने इस या उस नाम के कारण ही तुम यह या वह व्यक्ति होते हो। जब रगड़ होती है, जब कोई चीज़ आराम से नहीं चलती, केवल तभी तुम भिन्नता से सचेत होते हो और देखते हो कि तुम भिन्न

मार्च 2005

हो, नहीं तो तुम्हें इसका पता भी नहीं होता और तुम भिन्न होते भी नहीं। वास्तव में तुम एक-दूसरे से बहुत कम, बहुत ही कम भिन्न हो।

सच्ची वैयक्तिक सत्ता

पृथ्वी पर बहुत-सी आत्माएं हैं, मानव सत्ताएं हैं...। स्पष्ट ही, जिनकी एक विशेष संस्कृति है, जिनमें एक विशेष प्रकार का विकास हुआ है, जो विशेष प्रकार का व्यक्तित्व रखती हैं, सामान्यतया ये इकट्ठी हो जाती हैं : सहज प्रेरणावश ही ये इकट्ठी होती हैं, अपने दल बना लेती हैं। अतएव व्यक्ति काल और देश में कुछ सुसंस्कृत व्यक्तियों को इकट्ठा देख सकता है जो संख्या में बहुत अधिक न भी हों, फिर भी काफ़ी हैं, किंतु इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि यह बात हमें मनुष्यों की संस्कृति और विकास के ठीक अनुपात का दिग्दर्शन कराती है। यह केवल झाग की भाँति है जिसे ऊपर लाया गया है। किंतु इन लोगों में भी, इन चुनी हुई सत्ताओं में भी, हजारों में से एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो सचमुच एक विशुद्ध वैयक्तिक सत्ता हो, जो अपने प्रति सचेतन हो, अपनी आन्तरात्मिक सत्ता के साथ जुड़ा हुआ हो, जो अपने आंतरिक धर्म से संचालित होता हो तथा फलस्वरूप, यदि समग्र रूप से न सही, लगभग बाह्य प्रभावों से मुक्त हो; क्योंकि, सचेतन होने के कारण ऐसा व्यक्ति इन प्रभावों को आता हुआ देख लेता है : जो प्रभाव उसे अपने आंतरिक और सामान्य विकास के संगत प्रतीत होते हैं उन्हें स्वीकारता है; और जो विरोधी होते हैं उन्हें अस्वीकार कर देता है। और तब, एक अस्तव्यस्त—या हर हालत में भयानक रूप से मिला-जुला—गड़बड़झाला होने के स्थान पर ये सत्ताएं व्यवस्थित होती हैं, इनका अपना व्यक्तित्व होता है, ये अपने प्रति सचेतन होती हैं, जीवन-पथ पर चलती हुई जानती

हैं कि ये कहाँ जाना चाहती हैं और कैसे जाना चाहती हैं।

यदि तुम चाहो, तो इन्हें हम मनुष्य कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में, मनुष्य-रूप में ये ही वे अच्छी-से-अच्छी सत्ताएं हैं जिन्हें प्रकृति उत्पन्न कर सकती है—किंतु हैं तो अभी ये मनुष्य ही। किंतु ये मनुष्य के उच्चतम शिखर पर हैं। वे अब कुछ और बनने के लिए तैयार हैं। किन्तु जबतक मनुष्य वह नहीं बन जाता, तबतक वह बड़ी हद तक पशु ही रहेगा और मनुष्य का बहुत ही अधिक प्रारंभिक रूप। केवल उसीको मनुष्य कहा जा सकता है। हाँ, तो बात ऐसी ही है, तुम्हें केवल अपने अंदर झाँकना है और जानना है... कि तुम मनुष्य हो या नहीं।...

...मैं यह इसी आशा से कह रही हूँ कि तुम वह बनोगे।

पहले यंत्र को गढ़ना ज़रूरी है

भगवान् में अपना अहं मिला देना ! लेकिन पहली बात, पूरी तरह व्यष्टिकृत होने से पहले भगवान् के अंदर अपना अहं नहीं मिलाया जा सकता। क्या तुम पूरी तरह व्यष्टिकृत होने का अर्थ जानते हो? सभी बाहरी प्रभावों का विरोध करने में समर्थ होने का अर्थ?

अभी कुछ दिन पहले मुझे किसी की चिट्ठी मिली थी, उसने मुझे बताया कि वह साधारण साहित्य की, उदाहरण के लिए, उपन्यास या नाटक की किताबें पढ़ते झिझकता है क्योंकि उसकी प्रकृति में इन किताबों के चरित्रों के संस्कार ग्रहण करने की, इन चरित्रों की भावनाओं, विचारों और स्वभाव को जीने लगने की अलंघनीय प्रवृत्ति है। हम जितना सोचते हैं उससे ज्यादा ही लोग ऐसे होते हैं। वे कोई किताब पढ़ते समय अपने अन्दर हर प्रकार की भावनाएं, विचार, इच्छाएं, मनोवृत्तियाँ, योजनाएं, यहाँ तक कि आदर्श भी अनुभव

मार्च 2005

करते हैं। वे पढ़ने में पूरी तरह निमग्न हो जाते हैं। उन्हें इस बात का ख्याल तक नहीं होता। क्योंकि व्यक्ति में, उसके चरित्र के निन्यानवे भाग मुलायम मक्खन के बने होते हैं—स्वभावतः खाने लायक नहीं... लेकिन जिसपर अंगूठा रखते ही छाप पड़ जाती है।...

और तब तुम समुद्र की लहरों पर डाट की तरह उछाले जाते हो...। एक दिन तुम्हें यह चाहिये, दूसरे दिन दूसरी चीज़। एक क्षण तुम इस तरफ़ धकेले जाते हो और दूसरे क्षण उस तरफ़। कभी तुम आसमान की ओर नाक उठाते हो (माताजी मुद्रा करती हैं), तो कभी गड्ढे में धँस जाते हो। और यही है आदमी का जीवन!

पहले सचेतन, सुनिर्मित और व्यष्टिकृत सत्ता बनो, ऐसा व्यक्ति बनो जो अपने-आप में, अपने द्वारा, अपने वातावरण से पूरी तरह स्वतंत्र होकर जीता हो, जो अपने-आप बदले बिना कोई भी चीज़ सुन सकता हो, कोई भी चीज़ पढ़ सकता हो, कोई भी चीज़ देख सकता हो। वह बाहर से उसी चीज़ को लेता है जिसे वह लेना चाहता है; जो कुछ उसकी योजना के अनुकूल न हो उसे वह सहज रूप से अस्वीकार कर देता है और कोई चीज़ उसपर तबतक छाप नहीं छोड़ सकती जबतक कि वह खुद उसे ग्रहण करना स्वीकार न करे। तब तुम व्यक्तित्व बनने लगते हो! जब तुम व्यक्तित्व हो तभी अपने-आपको समर्पित कर सकते हो।

क्योंकि जबतक तुम्हारे पास कोई चीज़ नहीं होती तबतक तुम उसे दे नहीं सकते। पहले तुम्हें होना चाहिये, और फिर उसके बाद तुम अपने-आपको निवेदित कर सकते हो।

जबतक तुम अपने-आप में अस्तित्व नहीं रखते तबतक तुम कुछ दे नहीं सकते। अतः, जैसा कि तुम कहते हो, पृथक् करनेवाले अहं के विलीन होने के लिए तुम्हें अपने आपको पूरी तरह, पूर्णतया, बिना किसी शर्त के दे सकना चाहिये। और अपने-

आपको दे सकने के लिए पहले तुम्हारा अस्तित्व होना चाहिये। और अस्तित्व होने के लिए तुम्हें व्यष्टिकृत होना चाहिये।...

(थोड़ी चुप्पी के बाद) और फिर, बाद में, तुम यह सब भगवान् को अर्पित कर देते हो। वर्षों का काम चाहिये। तुम्हें केवल... (मौन)... अपने बारे में, अपने सभी ब्योरों में ही सचेतन नहीं होना चाहिये, बल्कि तुम जिसे "मैं" कहते हो, उसे चैत्य केंद्र के, अपनी सत्ता के दिव्य केंद्र के चारों ओर संगठित करना चाहिये ताकि वह एक अनोखी, सुसंगत और पूरी तरह सचेतन सत्ता बन सके। और चूँकि यह दिव्य केंद्र अपने-आपमें पहले से ही (माताजी अर्पण की मुद्रा करती हैं) पूरी तरह भगवान् को समर्पित है, इसलिए अगर हर चीज़ को सामञ्जस्यपूर्ण रूप से उसके चारों ओर सुव्यवस्थित किया जाये तो सब कुछ भगवान् के प्रति समर्पित हो जायेगा। और तब, जब भगवान् ठीक समझें, जब घड़ी आ जाये, जब व्यष्टिकरण का काम पूरा हो जाये तब भगवान् तुम्हें अपने अहं को उनके अन्दर मिला देने की, और आगे से केवल भगवान् के लिए जीने की स्वीकृति देते हैं।

लेकिन इसका निर्णय भगवान् करते हैं। उससे पहले यह ज़रूरी है कि तुम यह काम पूरा कर लो, सचेतन सत्ता बन जाओ, जो विशुद्ध और पूर्ण रूप से भगवान् के इर्द-गिर्द केंद्रित हो और उन्हीं के द्वारा शासित हो। और इस सबके बाद भी अहं बना रहता है; क्योंकि अहं ही तुम्हारे व्यक्तित्व के बनाने में काम आता है। लेकिन एक बार जब वह काम पूर्ण हो जाये, पूरी तरह चरितार्थ हो जाये, तब, उस क्षण, तुम भगवान् से कह सकते हो, "यह लो, मैं तैयार हूँ। क्या आप मुझे चाहते हैं?" और साधारणतः भगवान् कहते हैं, "हाँ।" सब कुछ समाप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है। और तुम भगवान् के काम के लिए सच्चे यंत्र बन जाते हो। लेकिन पहले यंत्र को गढ़ना ज़रूरी है।

*

मार्च 2005

माताजी, आपने कहा था कि बहुत ही कम लोग, शायद दस लाख में एक, सचमुच सचेतन हैं।

हां, अगर तुम सारी मानवजाति की बात करो तो निश्चय ही ऐसा है! और मनुष्यजाति की बहुत बड़ी संख्या कभी व्यक्ति नहीं बनेगी, मिलीजुली अव्यवस्थित भीड़ ही बनी रहेगी, इस तरह (संकेत)। व्यक्ति बनने को ही श्रीअरविन्द सचमुच मानसिक मनुष्य बनना कहते हैं। अगर तुमने 'ह्यूमन साइकल' (मानव-चक्र) पढ़ी है तो तुम देखोगे कि सचमुच एक ऐसा मानसिक मनुष्य बनना भी इतना आसान नहीं है जो अपने-आप सोचता हो, जो सभी बाहरी प्रभावों से मुक्त हो, जिसमें अपना व्यक्तित्व हो, जिसकी अपनी सत्ता हो, जिसमें वास्तविकता हो; वह होना भी इतना आसान नहीं है।

लेकिन, एक तरह की भागवत 'कृपा' के द्वारा, यह हो सकता है कि व्यक्ति बनने से पहले, अगर किसी के अंदर अभीप्सा हो, अगर वह किसी ऐसी चीज़ के प्रति जागने की ज़रूरत अनुभव करता है जो कुछ और चाहती है, जो कुछ ज़्यादा अच्छी चीज़ चाहती है, जो अनुभव करती है कि एक व्यक्ति होना कितनी छोटी चीज़ है, कोई ऐसी चीज़ जो वास्तव में सामान्य सीमाओं के पार खोजती है, तो व्यक्ति बनने से पहले अचानक उसे चैत्य-संपर्क का अनुभव हो सकता है जिससे उसके लिए सभी द्वार खुल जाते हैं। वे फिर से बंद तो हो जाते हैं, लेकिन एक बार वे खुल जायें तो तुम कभी भूल नहीं सकते। स्पष्ट स्मृति बनी रहती है; और उससे सहायता मिलती है। यहां तुम्हारे साथ यह होना चाहिये।...

मधुर मां, हम अपने अहंकार से इतने आसक्त क्यों हैं?

जैसा कि मैंने अभी कहा, शायद इसलिए कि अभी तुम्हें उसकी

बहुत ज़रूरत है, है न? एक सचेतन, व्यक्तित्ववाली सत्ता बनने के लिए, तुम्हें अहंकार की ज़रूरत होती है; इसीलिए वह मौजूद है। जब तुम अपने व्यक्तित्व को काफ़ी अच्छी तरह पा लो, तुम सचेतन स्वतंत्र सत्ता बन जाओ जिसकी अपनी वास्तविकता हो तब अहंकार की कोई ज़रूरत न रहेगी, और तब अहंकार को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश, अधिकतर लोग जैसे ही वास्तविक व्यक्ति बनते हैं, उनके अंदर महत्त्व और अपनी क्षमता का ऐसा भान पैदा हो जाता है कि फिर वे अहंकार से छुटकारा पाने के बारे में सोचते भी नहीं। लेकिन हाँ, यह और ही बात है।

यहाँ मैं तुम्हें सोने नहीं देती। मैं समय-समय पर तुम्हें सच्ची चीज़ के बारे में याद दिलाती रहती हूँ। लेकिन तुम सब अभी बहुत छोटे हो। और ऐसा व्यक्ति बनने के लिए कुछ वर्षों की ज़रूरत होती है, गहरी आंतरिक रचना के वर्षों की ज़रूरत होती है, जो अपने लिए सोच सके, जो अपनी इच्छा के बारे में सचेतन हो, जो अपनी प्रकृति के बारे में सचेतन हो, अपने जीवन का प्रयोजन जानता हो और मानव-समूह से स्वतंत्र हो। कुछ समय की ज़रूरत होती है। कुछ बच्चे बहुत छोटी अवस्था में शुरू करते हैं। अगर कोई बहुत छोटी अवस्था में शुरू करे, तो बीस वर्ष तक होते-होते वह भली-भाँति निर्मित हो जाता है। लेकिन इसके लिए तुम्हें बहुत छोटी अवस्था में शुरू करना चाहिये, और सचेतन रूप से, बहुत सचेतन रूप से। तुम्हें अपने अंदर की गतिविधियों, उनका औरों के साथ संबंध, यथार्थ रूप में अपनी स्वाधीनता की अवस्था, वास्तविक व्यक्तित्व, यह जानने का कि तुम्हारे आवेग कहाँ से आते हैं, दूसरी गतिविधियाँ कहाँ से आती हैं, कि वे बाहर के संक्रमण हैं या कोई ऐसी चीज़ है जो स्वयं तुम्हारे अंदर से उठती है—इन सब बातों का अवलोकन करना चाहिये। एक जरा-सी सचेतन सत्ता को, जरा-सी सचेतन सत्ता को निश्चित

रूप
अध्य
जीते
रहा
से नि
ऐसा
लगभ
आय

है, नि
की व
जीव
तुम्ह
इसस
लेकि
जैसे
सत्ता
इसी
लेवि
कि
जीव
प्रया
निष्

मार्च 2005

रूप देने के लिए अपने अंदर की समस्त गतिविधियों का, यथार्थ अध्ययन ज़रूरी है। लेकिन जब तुम, कह सकते हैं, द्रव की तरह जीते हो, यानी, तुम्हें यह भी पता नहीं होता कि तुम्हारे अंदर क्या हो रहा है, तुम्हें कुछ थोड़ा-सा अस्पष्ट पता होता है, अगर तुम सौ में से निन्यानवे बार अपने-आपसे पूछो : "मैंने ऐसा क्यों सोचा? मैंने ऐसा क्यों अनुभव किया?" या फिर : "मैंने ऐसा क्यों किया?" तो लगभग हमेशा एक ही उत्तर होता है : "मुझे नहीं मालूम, ऐसा ही आया था, बस।" यानी, आदमी ज़रा भी सचेतन नहीं होता।

-131577

बहुत-से व्यक्तित्व हैं, बहुत-सी नियतियां हैं

मैंने तुमसे कई बार कहा है, और चाहे जितनी बार कहूँ कम है, कि आदमी किसी एक टुकड़े से नहीं बना है। हमारे अंदर सत्ता की बहुत-सी स्थितियाँ हैं और सत्ता की हर स्थिति का अपना निजी जीवन है। इन सबको एक शरीर में रख दिया गया है, जबतक तुम्हारा शरीर रहता है ये उस एक शरीर के द्वारा काम करती हैं; इससे तुम्हें लगता है कि यह एक ही व्यक्ति है, एक ही सत्ता है। लेकिन बहुत-सी सत्ताएं हैं, विशेषकर भिन्न-भिन्न स्तरों पर केंद्र हैं। जैसे तुम्हारी एक भौतिक सत्ता है, उसी तरह तुम्हारी एक प्राणिक सत्ता है, तुम्हारी एक मानसिक सत्ता है, तुम्हारी एक चैत्य सत्ता है, इसी प्रकार और बहुत-सी हैं और सब प्रकार की मध्यस्थ सत्ताएं हैं। लेकिन यह ज़रा पेचीदा है और शायद तुम न समझ सको। मान लो कि तुम इच्छा और आवेग-प्रवेग का जीवन जी रहे हो, तो तुम्हारे जीवन में प्राणिक सत्ता प्रधान है। लेकिन अगर तुम आध्यात्मिक प्रयास के साथ, बड़ी सद्भावना के साथ, चीज़ों को अच्छी तरह, निष्काम भाव से करने की इच्छा से जीते हो, तुम्हारे अंदर प्रगति

का संकल्प है तो तुम्हारे अंदर चैत्य सत्ता प्रधान है।

*

(निम्नांकित वार्ता में श्रीमाँ अपने एक लेख 'पूर्वदर्शन' के कुछ हिस्सों की व्याख्या कर रही हैं)

"... सबसे पहले योग हमें यह सिखाता है कि हम एक अकेली सत्ता नहीं हैं, एक सीधी-सादी सत्ता नहीं है जिसकी केवल एक सीधी और तर्क-संगत नियति है। बल्कि हमें स्वीकार करना होगा कि अधिकतर लोगों की नियति जटिल, यहां तक कि अंड-बंड होती है। क्या यह जटिलता ही हमें, अप्रत्याशित और अनिश्चित होने का भाव नहीं देती जिसके परिणामस्वरूप हम कहते हैं कि इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता?"

ऐसे लोग हैं जिनकी नियति बहुत जटिल होती है। जिसे देखकर लगता है कि उनके साथ जो कुछ होता है अप्रत्याशित और अनिश्चित होता है और जबतक तुम किसी असाधारण दृष्टि से न "देखो", उसे पहले से नहीं देखा जा सकता।

"समस्या को हल करने के लिए, शुरू में ही तुम्हें यह जानना चाहिये कि सभी जीवित प्राणी और विशेषकर मनुष्य बहुत सारी सत्ताओं से मिलकर बने होते हैं। ये सत्ताएं एक-दूसरे के पास आती हैं, एक-दूसरे में प्रवेश करती हैं, कभी आपस में एक-दूसरे को इस तरह व्यवस्थित कर लेती हैं कि एक-दूसरे की पूरक बनें और कभी एक दूसरे के विपरीत होकर एक-दूसरे का निषेध करती हैं।"

मार्च 2005

“सत्ता” एक व्यक्तित्व या उपस्थिति है। हममें से हर एक के अन्दर ऐसे बहुत-से “व्यक्तित्व” होते हैं। अगर ये व्यक्तित्व मेल खायें, एक-दूसरे के पूरक हों तो इनसे मनुष्य, एक समृद्ध और जटिल “व्यक्ति” बनता है। लेकिन सामान्यतः यह नहीं होता। ये व्यक्तित्व एक-दूसरे के साथ मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिए, उनमें से एक कुछ प्रगति करना, अधिकाधिक पूर्ण बनना, चीज़ों का अधिक गहरा ज्ञान पाना, अधिक-से-अधिक चरितार्थ करना और सत्ता की पूर्णता की ओर बढ़ना चाहता है और हो सकता है कि दूसरा, जहाँतक हो सके, केवल मौज-मजा करना चाहता है। एक दिन वह यह करेगा, दूसरे दिन कुछ और, इत्यादि। अगर व्यक्तित्व मेल न खायें तो इस आदमी का जीवन असंगत होगा। और वस्तुतः ऐसे तथ्य बहुत सामान्य हैं।

“इनमें से हर एक सत्ता या सत्ता की स्थिति अपने ही जगत् की चीज़ है और अपने साथ अपना भाग्य और अपनी नियति लिये रहती है। इन सभी नियतियों का मेल व्यक्ति की नियति बनाता है और यह कभी-कभी बहुत असंगत होती है।”

आदमी में बहुत-से व्यक्तित्व हो सकते हैं—उदाहरण के लिए, दस-बीस और हर एक की अपनी नियति होती है। भौतिक जगत् में व्यक्तित्व का अर्थ है मानव शरीर। तो मानव शरीर में बहुत-से व्यक्तित्व होते हैं जिनमें से हर एक की अपनी नियति होती है। तब फिर क्या होता है? ये व्यक्तित्व एक-दूसरे के साथ ठीक तरह नहीं चल पाते, उनमें रगड़, संघर्ष और आन्तरिक अव्यवस्था होती है। सबसे बलवान् का हाथ ऊँचा रहता है। वह और सब पर छा ही नहीं जाता बल्कि उन्हें दबा देता है और विद्रोह करने से रोकता है। तो अन्त में अभागे व्यक्तित्व, जिन्हें दबा दिया जाता है, वे जाकर

सो जाते हैं। वे अपना समय देखते रहते हैं और जब उनका समय आता है तो झट उछलकर ऊपर आ जाते हैं और सब कुछ उलट-पलट कर देते हैं। अगर ऐसा बहुत बार हो तो उस व्यक्ति का जीवन बहुत अव्यवस्थित हो जाता है। वह आज एक चीज़ हाथ में लेगा और कल कोई और। इसी तरह चलता रहेगा।

मेरा ख्याल है कि यह कहना सच नहीं है कि जिसमें आंतरिक जटिलता नहीं है वह 'सामञ्जस्यपूर्ण' है। जिन लोगों के अंदर इस तरह का भ्रान्तिमूलक सामञ्जस्य होता है वे भौतिक जीवन में बहुत गहरे डूबे होते हैं, ज़रा-सी भी अप्रिय चीज़ उन्हें पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर देती है क्योंकि उनके अन्दर कुछ होता ही नहीं। नहीं, सचमुच सामञ्जस्यवाले व्यक्तित्व का अर्थ है आंतरिक व्यक्तित्वों की सचेतन व्यवस्था। यह व्यवस्था सहज रूप से जन्म के पहले भी हो सकती है पर यह विरल है। व्यवस्था बाद में साधनाद्वारा, उचित शिक्षाद्वारा प्राप्त होती है, लेकिन इसमें सफल होने के लिए तुम्हें सचेतन रूप से चैत्य पुरुष को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर अन्य व्यक्तित्वों को व्यवस्थित करना और उनमें सामञ्जस्य लाना चाहिये। सच्चा सामञ्जस्य और आन्तरिक व्यवस्था ऐसे ही सतत प्रयास का परिणाम होती है।

“लेकिन इन सत्ताओं की व्यवस्था और संबंध को व्यक्तिगत साधना और संकल्प के प्रयास द्वारा बदला जा सकता है चूंकि उनकी विभिन्न नियतियाँ एक-दूसरे पर चेतना की एकाग्रता के अनुसार अलग-अलग क्रिया करती हैं और उनके संयोजन प्रायः हमेशा ही बदले जाते हैं, इसलिए उन्हें पहले से नहीं देखा जा सकता।”

गणित में हम कभी-कभी बहुत-सी संख्याएं लेकर उनके सभी संभव

मार्च 2005

संयोजन देखने की कोशिश करते हैं। हमें एकदम पता लग जाता है कि यह असंभव है क्योंकि ऐसी बहुत-सी संख्याएं हैं जिन्हें व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसी तरह तुम्हारे अन्दर अगर बहुत सारी नियतियाँ एक साथ आयें और विभिन्न संयोजनों में हों, यह इसपर निर्भर होता है कि उस समय सत्ता का कौन-सा भाग प्रधान होता है, उस समय अगर, तुम यह देखने की कोशिश करो कि क्या होने वाला है तो निश्चय ही यह बहुत अधिक कठिन होता है। चेतना की स्थितियों के बारे में भी यही बात है। एक नियति एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। वे सब नियतियाँ एक-दूसरे पर क्रिया करती हैं और जो चीज़ें हो सकती हैं उनकी संख्या भयावह है। तो तुम उसे पहले से कैसे देख लोगे? विश्व के "नियम" हमेशा स्वतंत्र रूप से काम करते हैं और यही विश्व के संयोजन का "रहस्य" है।

"तो जीवन की कला इसमें होनी चाहिये कि आदमी अपनी उच्चतम चेतना में रहे और जीवन और कर्म में अपनी उच्चतम नियति को अन्य नियतियों पर अधिकार करने दे ताकि कोई भूल होने की संभावना के बिना वह कह सके : हमेशा अपनी चेतना के शिखर पर रहो और तुम्हारे साथ हमेशा वही होगा जो अच्छे-से-अच्छा हो। लेकिन यह ऐसी पराकाष्ठा है जहाँ तक पहुँचना आसान नहीं है। अगर इस आदर्श अवस्था को पाना संभव न हो तो व्यक्ति कम-से-कम जब संकट में या बहुत नाजुक स्थिति में हो तो अभीप्सा, प्रार्थना और भगवान् के संकल्प के प्रति विश्वासपूर्ण समर्पण द्वारा अपनी उच्चतम नियति को बुला सकता है, तब उसके आह्वान की सचाई के अनुपात में यह उच्चतर नियति सत्ता की साधारण नियति में और जहाँतक उसका व्यक्तिगत संबंध है घटना-क्रम में अनुकूल

रूप से हस्तक्षेप करती है। इस प्रकार की घटनाएं बाहरी चेतना को चमत्कार या भागवत हस्तक्षेप के रूप में दिखायी देती हैं।”

मैं तुम्हें एक उदाहरण सुनाती हूँ कि कैसे उच्चतर चेतना हस्तक्षेप करती है।

एक आदमी दफ़्तर जाने के लिए घर से बाहर निकलता है। वह कुछ दूर जाता है। अचानक उसे ख्याल आता है कि वह कुछ चीज़ भूल आया है। वह उस चीज़ को लाने के लिए पीछे को मुड़ता है और ठीक उसी समय उस जगह, जहाँ वह मुड़े बिना जा पहुँचता, वहाँ एक सीसे का पाइप आ गिरता है। इस आदमी की चेतना में किसी चीज़ ने उसे वापिस जाने के लिए कहकर उसकी जान बचा ली। जब हम कहते हैं कि चेतना का हस्तक्षेप नियति को बदल सकता है तो इसका यही मतलब होता है। इस मनुष्य की दो नियतियाँ थीं—शायद औरों के अतिरिक्त—एक चाहती थी कि वह मर जाये और दूसरी चाहती थी कि वह जीवित रहे।

प्रश्न : क्या इसे “संयोग” नहीं कह सकते ?

नहीं, क्योंकि संयोग प्रायः बिलकुल असंगत चीज़ है, कोई ऐसी चीज़ जो बिना कारण होती है। अगर तुम यह मानते हो कि जीवन असंगत चीज़ है तो तुम्हें अभी बहुत कुछ सीखना है। इसके विपरीत, वह बिलकुल सुसंगत चीज़ है। हर छोटी-से-छोटी चीज़ भी सुनिश्चित है और अगर किसी चीज़ से तुम्हें ऐसा लगता है कि वह “संयोग” है तो इसका कारण यह है कि तुम नियतियों के बारे में कुछ नहीं जानते। वे तुम्हारी पहुँच के एकदम परे हैं क्योंकि ऐसे असंख्य विधान हैं जो आपस में अन्दर-ही-अन्दर बुने हुए हैं और तुम उनके बारे में कुछ नहीं जानते। तो अगर कोई चीज़ इन नियमों के अनुसार

होती है तो तुम उसे "संयोग" या "चमत्कार" कहते हो।

पवित्र ने बतलाया है कि गणित में यदि बीच में आनेवाले तत्त्वों की संख्या बहुत अधिक है और अगर वे स्वतंत्र रूप से काम करते हैं तो परिणाम "संयोग" प्रतीत होता है।

मैंने अभी समझाया है कि यह केवल एक "प्रतीति" है।

जो लोग प्रगति करने और चेतना में विकसित होने के लिए कोशिश करते हैं वे अनुभव करते हैं कि जिस चीज़ को एक बार वे मुसीबत या आफ़त मानते थे वह पन्द्रह वर्ष बाद उन्हें आशीर्वाद या भागवत कृपा का प्रभाव या कोई उच्चतम शुभ प्रतीत होता है। उच्चतर दृष्टिकोण से, यह एकदम स्पष्ट है कि अगर तुम अपने साधारण जीवन में उच्चतम चेतना को उतार लाओ तो, वह तुम्हारे जीवन में महानतम शुभ लायेगी।

जिन लोगों ने थोड़ी प्रगति की है उन्हें हमेशा यह अनुभूति हुई है। वे स्पष्ट रूप से यह देखते हैं कि वह तथाकथित "मुसीबत" वस्तुतः उनके ऊपर उठने का पहला चरण था, एक ऐसा आरोहण था जो उस आफ़त के बिना संभव न होता। अगर किसी के अंदर आंतरिक दृष्टि हो और वह अपनी इच्छा से उच्चतर चेतना में चढ़ सके तो वह देखेगा कि जब वह अपनी उच्चतम चेतना के संपर्क में होता है तो उसके लिए अच्छी-से-अच्छी चीज़ घटती है।

लेकिन यह समझ सकने के लिए दो शर्तें हैं। तुम्हें प्रगति करने के लिए प्रयास करना चाहिये, पूरी तरह सच्चे होओ, क्योंकि अगर तुम सच्चे न होओगे तो तुम्हें अपने जीवन में अन्तर्दृष्टि कभी प्राप्त न होगी। तुम्हें अपने-आपको देख सकना और यह कह सकना चाहिये, "मैं कितना छोटा हूँ।"

हमेशा चुनाव होता है

माताजी, भूलें होती हैं... हम जानते हैं कि ये भूलें हैं, फिर भी, ऐसा लगता है कि हम उन्हें करने के लिए बाधित होते हैं। तब?

किससे बाधित? ठीक यही तो होता है! निम्न प्रकृति, अवचेतना की सहज वृत्तियाँ तुमपर शासन करती हैं और तुमसे ऐसी चीजें करवाती हैं जो तुम्हें नहीं करनी चाहियें। तो यह तुम्हारे संकल्प और हार स्वीकार करनेवाले समर्पण के बीच चुनाव होता है। हमेशा एक ऐसा क्षण होता है जब तुम निर्णय कर सकते हो। जैसा कि मैंने कहा, बात यहाँ तक पहुँच जाती है कि एक ऐसा क्षण भी आता है जब तुम यह निश्चय कर सकते हो कि तुम बीमार होओ या न होओ।...

लेकिन मामूली चीजों के लिए, उदाहरण के लिए, किसी आवेश के आगे झुकने या उसे अस्वीकार करने में बहुत कम अवधि नहीं होती, क्षण-भर की अवधि ही नहीं होती; तुम्हें काफ़ी समय मिल जाता है, तुम्हें निश्चय ही कई मिनट मिल जाते हैं। और तब दुर्बलता-पूर्वक झुक जाने और नियंत्रण करनेवाले संकल्प के बीच चुनाव होता है। अगर संकल्प स्पष्ट हो, अगर वह सत्य पर आधारित हो, अगर वह सचमुच सत्य की आज्ञा का पालन करता हो और स्पष्ट हो, तो हमेशा उसके अंदर गलत गतिविधि को अस्वीकार करने की शक्ति होती है। जब तुम कहते हो : "मैं न कर सका", तो यह एक बहाना होता है। यह सत्य नहीं है। ठीक बात तो यह है कि तुमने उसे ठीक तरह चाहा ही नहीं है। हमेशा "हाँ" और "ना" कहने के बीच चुनाव होता है। लेकिन मनुष्य कमज़ोरी का चुनाव करता है, और फिर, अपने ही सामने यह बहाना बनाता है, कहता है : "ओह

इसमें मेरा दोष नहीं है; वह मुझसे ज्यादा प्रबल था।” अगर वह तुमसे ज्यादा मज़बूत था तो यह तुम्हारा ही दोष है। तुम ये आवेग नहीं हो, तुम सचेतन अंतरात्मा हो, समझदार संकल्प हो और तुम्हारा कर्तव्य है कि इस बात का ध्यान रखो कि तुम्हारे ऊपर ये तत्त्व शासन करें, नीचे से आने वाले आवेग नहीं।

व्यक्ति किससे बनता है?

कौन मुझे बतायेगा कि व्यक्ति किससे बनता है? बहुसंख्यक लोग जब “मैं” कहते हैं तो वह उनका एक अंश होता है, उनकी भावना, उनके शरीर, उनके विचार का एक प्रकार का एक भाग होता है जो बोलता है; यह एक ऐसी चीज़ होती है जो सर्वदा बदलती रहती है। अतएव उनका “मैं” असंख्य होता है, या उनका “मैं” सदा विभिन्न रूप लेता रहता है। उसमें कौन-सी चीज़ निरंतर बनी रहती है?... स्पष्ट ही, चैत्य पुरुष। क्योंकि, सतत बने रहने के लिए किसी वस्तु को सर्वप्रथम अमर होना चाहिये। अन्यथा वह स्थायी नहीं हो सकती। फिर, उसे उन अनुभवों से स्वतंत्र भी होना चाहिये जिनमें से वह गुजरती है : स्वयं अनुभूतियाँ ही वह वस्तु नहीं हो सकती।

*

चैत्य पुरुष तुम्हारे अंदर स्थित सच्चे और भागवत व्यक्ति का वास्तविक व्यक्तित्व है। कारण, तुम्हारे व्यक्तित्व का अर्थ है अभिव्यक्ति का एक विशेष प्रकार, और तुम्हारा चैत्य पुरुष उस भागवत चेतना का—जिसने तुम्हारे अंदर रूप ग्रहण किया है—एक पहलू है। परन्तु व्यष्टि-चेतना और विश्व-चेतना के बीच जो भेद-भाव तुम्हारी प्रकृति के अन्य भागों में है वह चैत्यपुरुष की चेतना में नहीं है। वहां तुम्हें

इस बात का ज्ञान रहता है कि तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारी अभिव्यक्ति का विशिष्ट प्रकार है, पर साथ-साथ तुम जानते हो कि वह अखंड विश्व-चेतना की ही बहिर्गत अभिव्यक्ति है। यह ऐसा है मानों तुमने अपने एक अंग को अपने-आपमें से निकाल कर बाहर अपने सामने रख लिया हो और अब दोनों आपस में एक-दूसरे को देख रहे हों और दोनों के बीच क्रियाओं की लीला हो रही हो। अपने बहिर्गत रूप के साथ संबंध बनाने और स्थापित करने और उसे भोग सकने के लिए यह द्वैत-भाव ज़रूरी था। किन्तु चैत्य-चेतना में यह भेद-भाव, जो द्वैत-भाव को तेज करता है केवल भ्रम-रूप, एक आभासमात्र अनुभव होता है, इससे अधिक कुछ नहीं।

*

... अगर तुम्हारे अंदर पृथक् व्यक्तित्वों के अस्तित्व के कारण का जरा भी भान हो तो तुम देखोगे कि यह अभीप्सा को संभव बनाने के लिए, अभीप्सा के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए है, आत्म-निवेदन और आत्म-दान की गति को, विश्वास और श्रद्धा को संभव बनाने के लिए है। यही वह कारण है जिसके लिए व्यक्तित्व बनाये गये थे; और फिर तुम्हें पूरी सच्चाई और पूरी तीव्रता के साथ वही बनना है... बस यही वह सब है जिसकी आवश्यकता है।

यही एक चीज़ है जिसकी ज़रूरत है, यही एकमात्र चीज़ है, एकमात्र चीज़ जो टिकती है; बाकी सब... माया-जाल, मृग-मरीचिका है।

सचेतन सत्ता बनो

क्या तुमने कभी अपनी सत्ता को एकरूप करने की बात सोची है? क्या कभी तुम्हें यह देखकर घबराहट हुई है कि अभी तो तुम

मार्च 2005

एक व्यक्ति हो और दूसरे समय दूसरे बन जाते हो, एक समय तो तुम एक चीज़ करना चाहते हो दूसरे समय तुम उसे नहीं कर पाते; तुम अपनेको एक ऐसे व्यक्तित्व के सामने उपस्थित पाते हो जिसे तुम अपना 'स्व' कह सकते हो और फिर भी, उसके साथ-ही-साथ उस व्यक्तित्व के बहुत-से ऐसे भाग हैं जो तुमसे बच निकलते हैं?...

जो लोग किसी गुरु के निदेशन के अनुसार योग नहीं करते, वे साधारण नैतिक धारणाओं का अनुगमन करते हैं और कभी-कभी वे बहुत उद्विग्न हो उठते हैं, क्योंकि वे अपनी संपूर्ण सदिच्छा के बावजूद प्रत्याशित परिणाम नहीं प्राप्त कर पाते। यह इस कारण होता है कि सामान्यतया वे अपनी सत्ता को रूपांतरित करने के बदले उसका समर्थन करना चाहते हैं और नैतिक धारणाएं बहुत बुरी होती हैं। सत्ता के एकीकरण के कार्य में, तुम्हारे अंदर पर्याप्त कल्पना-शक्ति अवश्य होनी चाहिये ताकि तुम अपनी उन गतिविधियों को, जो तुममें हैं, उन गतिविधियों को, जिन्हें तुम रखना चाहते हो, उस वस्तु के सामने रख सको जिसे तुम भागवत 'उपस्थिति' से अत्यंत मिलती-जुलती कल्पना कह सकते हो; स्वभावतः, प्रारंभ में वह केवल एक कल्पना होती है जो सत्य से एकदम दूर होती है, पर वह तुम्हें नैतिक संकीर्णता से और साथ ही तुम्हारी चेतना के सीमा-बंधनों से भी थोड़ा मुक्त होने में सहायता पहुँचायेगी। उदाहरणार्थ, तुम जो कुछ हो और जो कुछ करते हो उसे तुम उस चेतना के सम्मुख रखने की भावना रखते हो जो एक साथ ही अनंत और शाश्वत है। ये दोनों शब्द आरंभ में शायद तुम्हारे लिए बहुत अधिक अर्थ नहीं रखते, पर वे तुम्हें अपनी सीमाएं तोड़ने और अपने-आपको किसी ऐसी वस्तु के सामने रखने को बाध्य करते हैं जो तुम्हें चारों ओर से इतना अधिक अतिक्रान्त कर जाती है कि उसका निर्णय वही नहीं हो सकता जो एक मानव मन का निर्णय होता है।

बस, व्यक्ति को पूर्ण रूप से इसी भाँति शुरू करना चाहिये। यदि तुम नैतिक सिद्धांतों के अनुसार अपना विश्लेषण करने का यत्न करो तो तुम निश्चय ही भागवत योजना के विपरीत चले जाओगे। यह बात नहीं कि भगवान् अ-नैतिक हैं, इस बात पर ध्यान दो, परंतु यह उस प्रकार की नैतिकता नहीं है जिसे मानवजाति ज़रा भी समझती है, यह ठीक वही नहीं है।

...बचने का केवल एक ही उपाय है, भागवत संकल्प के साथ जबतक सामञ्जस्य न हो जाये तबतक कभी कार्य नहीं करना चाहिये। तब यहां एक प्रश्न उठता है : कैसे यह जाना जाये कि भागवत संकल्प ही हमसे कार्य करा रहा है? ...भगवान् की वाणी को पहचानना कठिन नहीं है : उसे पहचानने में कोई भूल नहीं कर सकता। उसे पहचानने के लिए तुम्हें योगमार्ग पर बहुत दूर तक जाने की आवश्यकता नहीं; तुम्हें बस उस स्थिर, हल्की, शांत वाणी को सुनना चाहिये जो तुम्हारे हृदय की नीरवता में बोलती है।

...इसे सुनने के लिए तुम्हें पूर्णतः सच्चा होना चाहिये, क्योंकि तुम यदि सच्चे नहीं हो तो तुम अपने-आपको धोखा देने से आरंभ करोगे और तुम बिलकुल कुछ भी नहीं सुनोगे, सुनोगे केवल अपने अहं की वाणी और फिर तुम आत्मविश्वास के साथ (यह सोचते हुए कि यही सच्ची धीमी वाणी है) अत्यंत भयानक मूर्खताएं करोगे। परंतु तुम यदि सच्चे हो तो तुम्हारा रास्ता पक्का है। वह एक वाणी भी नहीं है, कोई इंद्रियबोध भी नहीं है, वह अत्यंत सूक्ष्म कोई चीज़ है—एक क्षीण सूचना है। जब सारी बातें ठीक-ठीक चलती हैं, अर्थात् जब तुम भागवत संकल्प के विपरीत कुछ नहीं करते, तब संभवतः तुम्हें कोई सुनिश्चित विचार नहीं आयेगा, सब कुछ तुम्हें स्वाभाविक प्रतीत होगा। निस्संदेह, तुम यह जानने के लिए उत्सुक होगे कि तुम 'भागवत संकल्प' के अनुसार कार्य कर रहे हो या नहीं, यही है

मार्च 2005

पहली बात, स्वभावतः ही, उसके बिना तुम एकदम कुछ नहीं जान सकते। परंतु एक बार जब तुम उत्सुक हो गये हो और ध्यान देने लगे हो, सब कुछ तुम्हें सामान्य, स्वाभाविक प्रतीत हो रहा है, तब अचानक ही तुम अपने मस्तक, अपने हृदय या यहाँतक कि अपने पेट में कहीं पर थोड़ी बेचैनी अनुभव करते हो—सामान्यतया लोग उस ओर ध्यान नहीं देते; तुम उसे दिन में कई बार अनुभव कर सकते हो पर तुम उसकी ओर कोई ध्यान दिये बिना उसे अस्वीकार कर देते हो; परंतु अब वह ठीक वही चीज़ नहीं रह जाती; फिर, उस समय, तुम्हें अवश्य ठहर जाना चाहिये, तुम कुछ भी करते होओ इसका कोई महत्त्व नहीं, और देखना चाहिये, और यदि तुम सच्चे हो तो तुम एक छोटा-सा काला दाग (एक नन्हीं दुष्ट भावना, एक नन्हीं मिथ्या क्रिया, एक तुच्छ मनमाना निर्णय) देखोगे और वही होता है उस बेचैनी का मूल कारण। फिर तुम देखोगे कि वह छोटा-सा काला दाग अहंकार से आता है जो अभिरुचियों से भरा होता है; साधारण तौर पर वह जो कुछ पसंद करता है वही करता है; जिन चीज़ों को वह पसंद करता है वे अच्छी कही जाती हैं और जिन्हें वह पसंद नहीं करता वे बुरी कही जाती हैं—यह चीज़ तुम्हारे निर्णय को आच्छादित कर देती है। इन अवस्थाओं में निर्णय करना कठिन है। यदि तुम वास्तव में जानना चाहो तो तुम्हें एक पग पीछे हट आना होगा और देखना होगा, और तब तुम्हें मालूम होगा कि वास्तव में अहं की यही तुच्छ क्रिया तुम्हारी बेचैनी का कारण है। तुम देखोगे कि यह एक नन्हीं-सी चीज़ है जो कुंडलित होकर बैठी है; तुम्हें ऐसा बोध होगा कि तुम किसी सख्त चीज़ के सामने उपस्थित हो जो बाधा दे रही है या जो काली है। तब धैर्य के साथ, अपनी चेतना की ऊंचाई से तुम्हें इस चीज़ को इसकी भूल समझानी चाहिये, और अंत में वह विलीन हो जायेगी। मैं यह नहीं कहती कि तुम

तुरत-फुरत एकदम पहले दिन ही सफल हो जाओगे, पर तुम यदि सच्चाई के साथ प्रयत्न करो तो तुम सदा ही अंत में सफल हो जाओगे। और यदि तुम निरंतर यह प्रयास करते रहो तो तुम देखोगे कि तुम सहसा नीचता, कुत्सितता और अंधता के एक पुंज से रिहाई पा गये हो जो तुम्हें प्रकाश में पुष्पित होने से रोक रहा था। ये ही वे चीजें हैं जो तुम्हें सिकोड़ती हैं, तुम्हें अपने-आपको विस्तारित करने से, प्रकाश के अन्दर प्रस्फुटित होने से रोकती हैं, जहाँ तुम्हें बहुत सुखपूर्वक रहने का भान होता है। यदि तुम यह प्रयास करो, तुम अन्त में देखोगे कि तुम उस बिन्दु से बहुत दूर हो जहाँ से तुमने आरंभ किया था; जो चीजें तुम अनुभव नहीं करते थे, समझ नहीं पाते थे, अब सुस्पष्ट हो गयी हैं। यदि तुम संकल्प करो तो तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।

यही है अपने-आपको एकीभूत करने का, सचेतन सत्ता बनने का प्रथम पग, जिसमें एक केंद्रीय संकल्प है और जो केवल इसी संकल्प के अनुसार कार्य करता है और यह संकल्प भागवत 'संकल्प' की सतत अभिव्यक्ति होता है। यह प्रयास करने के योग्य है।

*

... सबसे पहला पग है अपने विषय में सचेतन होना, अपनी सत्ता के विभिन्न अंगों और उनकी अलग-अलग क्रियाओं के विषय में सचेतन होना। तुम्हें इन सब अंगों को एक दूसरे से अलग करके देखना और पहचानना सीखना चाहिये ताकि तुम स्पष्ट रूप से यह पता लगा सको कि तुम्हारे अंदर जो क्रियाएं होती हैं, तुम्हें कर्म में जोतनेवाले जो अनेक प्रकार के आवेग-प्रवेग, प्रतिक्रियाएं और परस्पर विरोधी इच्छाएं तुम्हारे अंदर उठती हैं, उन सबका मूल कहाँ है। यह एक श्रमसाध्य अध्ययन होगा और इसके लिए बहुत अधिक लगन

और स
मन के
अनुभव
बना डा
क्रियाओं
में पेश
संकल्प
हमारे
अगर ह
जानने
जान ले
हम इस
हमारी
करती हैं
एक क्रि
अपने अ
सत्ता के
ईर्द-गिर्द
एकीकर
लंबे सम
लिए, ह
चाहिये
सफल
की आव

शिखा

मार्च 2005

और सच्चाई की आवश्यकता है। क्योंकि मानव स्वभाव की, विशेषकर मन के स्वभाव की यह एक सहज प्रवृत्ति है कि हम जो कुछ सोचते, अनुभव करते, कहते और करते हैं उसकी हम एक अनुकूल व्याख्या बना डालते हैं। जब हम बहुत अधिक सावधानी के साथ इन सब क्रियाओं को देखेंगे, मानों इन्हें अपने उच्चतम आदर्श के न्यायालय में पेश करेंगे और उसके निर्णय के सामने झुक जाने को एक सच्चा संकल्प बनाये रखेंगे, केवल तभी हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे अंदर एक ऐसा विवेक उत्पन्न होगा जो कभी भूल न करे। अगर हम सचमुच उन्नति करना और अपनी सत्ता के सत्य को जानने की क्षमता प्राप्त करना चाहते हैं, अर्थात्, उस एक बात को जान लेना चाहते हैं जिसके लिए वास्तव में हम उत्पन्न हुए हैं, जिसे हम इस पृथ्वी पर अपना उद्देश्य कह सकते हैं, तो फिर, जो चीजें हमारी सत्ता के सत्य का खंडन करती हैं, जो चीजें उसका विरोध करती हैं, उन सबको हमें बहुत नियमित रूप से और निरंतर होनेवाली एक क्रिया के द्वारा अपने अंदर से निकालते रहना होगा अथवा उन्हें अपने अंदर नष्ट करते रहना होगा। बस, इसी तरह धीरे-धीरे हमारी सत्ता के सभी भाग, सभी अंग संघटित होकर हमारे चैत्य केंद्र के इर्द-गिर्द एक पूर्ण सुसमंजस वस्तु का रूप ग्रहण कर सकेंगे। इस एकीकरण के कार्य को एक हदतक पूर्णता प्राप्त कराने के लिए एक लंबे समय की आवश्यकता होती है। इसीलिए, इसे सिद्ध करने के लिए, हमें धैर्य और सहनशीलता-रूपी अस्त्रों से सुसज्जित होना चाहिये और यह निश्चय कर लेना चाहिये कि अपने प्रयास को सफल बनाने के लिए जितने दिनों तक अपना जीवन बनाये रखने की आवश्यकता होगी उतने दिनों तक बनाये रखेंगे।

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनूं श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनूं (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमां के मनुष्यजाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारंभ होता है तथा केवल ६ से ११ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्ष नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगाकर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

श्री चन्द्र प्रकाश खेतान

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर

मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला

पो० - झुंझुनूं - ३३३००१ (राजस्थान)

टेलीफोन - (०१५९२) २३५६१५

e-mail: srimaa@vsnl.com

URL: WWW.sadlec.org

मार्च 2005

Statement about ownership and other particulars about Newspaper (Agnishikha) to be published in the first issue every year after the last day of February.

Form IV (see Rule 8)

1. Place of publication Sri Aurobindo Ashram
Pondicherry - 605 002
2. Periodicity of its publication Monthly
3. Printer's Name Amiyo Ranjan Ganguli
Nationality Indian
Address Sri Aurobindo Ashram Press
Pondicherry - 605 002
4. Publisher's Name Pradeep Narang
Nationality Indian
Address Sri Aurobindo Society
Pondicherry - 605 002
5. Editor's Name Anuben
Nationality Indian
Address Sri Aurobindo Ashram
Pondicherry - 605 002
6. Names and Addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital Sri Aurobindo Society
Pondicherry - 605 002

I, Pradeep Narang hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

March 2005

(sd) Pradeep Narang
Signature of Publisher



mirambika

TEACHER EDUCATION INSTITUTE

Research Centre for Integral Education and Human Values

(A unit of Sri Aurobindo Education Society)

Sri Aurobindo Ashram - Delhi Branch

New Delhi - 110016

Announcing the Academic Session 2005-2008
3 years Training Course Content(Starting 15th July 2005)

- * Education & Principles of Education.
- * Integral Five - fold Education & Free Progress Learning
- * Study of Psychology & Principles.
- * Planning, Implementation and Evaluation.
- * Resources Management & Development of skills.
- * Language & Communication.
- * Theatre, Music, Art in Education, Physical Education.

Eligibility:

(Basic knowledge

of English is

essential.)

a) Nursery Teacher Education:

Class XII....45%

b) Elementary Teacher Education:

Graduation...45%

Application Procedure: Application forms are available on payment of Rs.50/- by cash or DD.

Fees:

No fees are charged since the course is based upon a spiritual philosophy.

Free board & lodging is also provided

Date to remember:

Last date for submission of the forms is 1st April 2005. You can apply even if you are waiting for your final results.

Selection:

Selection will be done at a camp in Nainital in the month of June.

“हमारा लक्ष्य है अपनी सत्ता की पूर्णता को चरितार्थ करना
और मानव पशु को भागवत मनुष्य में बदल देना।”

□ श्रीअरविन्द

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

विशेषताएं

- (१) पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- (२) नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- (३) महर्षि श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- (४) प्राचीन आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- (५) बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।

- ☐ शिक्षण सत्र प्रतिवर्ष ०१ अप्रैल से प्रारम्भ।
- ☐ पंजीकरण प्रतिवर्ष २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ☐ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १०० डाक से प्रोस्पेक्टस मंगाने पर रु. १५०

आदित्य कुमार वाजपेयी
प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

☎ 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

amarnath_mtr@rediffmail.com/aditya_vajpeyi@rediffmail.com

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

अग्निशिखा

Central Library

Gurukul Kangri University

Haridwar (U.P.)

67/12/05



अखिल भारतीय पत्रिका

अप्रैल २००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अग्निशिखा अप्रैल २००५

वर्ष ३५, अंक ९, पूर्णांक ४१६

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां
'सम्पादकीय' : दिव्य मित्र	अनुबेन
दैनन्दिनी	
श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष :	
निष्कर्ष	नीरदवरण
सच्चा प्रेम (श्रीमां के वचन)	

प्रेम	१३
श्रीमां की कहानी	१३
सभी खोजों के पीछे है प्रेम	१६
प्रेम क्या है	१९
प्रेम की अभिव्यक्तियां	२०
प्रेम नष्ट नहीं करता, रूपान्तरित करता है	२४
मनुष्य जिसे प्रेम कहते हैं	२६
जानवरों में मनुष्यों के लिए प्रेम	२९
प्राणिक भावनाएं, प्रेम इत्यादि	३३
सोसायटी समाचार	३५

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ

भगवान् के लिए प्रेम

वनस्पति-जगत् अपनी सबसे सुंदर संभावनाओं को इकट्ठा करता है
ताकि उन्हें भगवान् के अर्पण कर दे।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

संपादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

हर बार जब तुम्हें बेचैनी का अनुभव हो तो तुम्हें बाहर आवाज़ दिये बिना, साथ ही मेरे बारे में सोचते हुए, अपने अन्दर बोलते हुए यह दोहराना चाहिये :

“शान्ति, शान्ति, हे मेरे हृदय !” तुम इसे लगातार कहो और परिणाम से तुम्हें खुशी होगी।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

—श्रीमां

‘सम्पादकीय’ :

दिव्य मित्र

अप्रैल २४ को माताजी का पॉण्डिचेरी में स्थायी आगमन हुआ। इससे पहले माताजी श्रीअरविन्द से मिल चुकी थीं। दोनों के ध्येय एक ही थे इसलिए माताजी ने निश्चय किया कि वे श्रीअरविन्द के साथ रहकर योग करके दोनों के उद्देश्य को चरितार्थ करेंगी। इसी बीच प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और माताजी को भारत छोड़ना पड़ा क्योंकि वे विदेशी थीं।

माताजी १९१६ से १९२० तक जापान में रहीं, लेकिन वहां भी उनकी लगन एक ही थी और वह थी, कैसे भगवान् से अधिकाधिक एकात्म हुआ जाये।

हमने माताजी के कई दिव्य रूप देखे हैं। अब देखें उनके कई मानवीय व्यक्तित्व। उनका वर्णन हम डॉ. ओकावा के मुख से सुनें। वे टोकियो के विश्व-विद्यालय में प्रोफ़ेसर थे। वे माताजी से कैसे मिले इसकी रोचक कहानी है।

जापान में एक सज्जन श्री हर प्रसाद भारतीय दर्शन पर भाषण देने आये थे। भाषण सुनने करीब पचास स्त्री-पुरुष जाते थे। उनमें डॉ. ओकावा भी थे। उन्हीं के मुख से सुनें उस मिलन की कहानी—

“मैं श्री हर प्रसाद के भाषण सुनने इस आशा से गया था कि मुझे अपनी आत्मा को पाने का उपाय मिले... भाषण सुनने पचास स्त्री-पुरुष आते थे। उनमें एक महिला को मैंने देखा तो मैं अपनी गहराई तक झंकृत हो गया। उनके अन्दर ऐसा कुछ था जो मुझे उनकी ओर खींचता जा रहा था—वह दिव्य कृपा थी या ध्रुव तारे का निर्विकार प्रकाश था! मुझे उनकी ओर से एक सुगन्ध की लहर

अप्रैल 2005

आती जान पड़ रही थी जो मुझे स्वर्ग की सुगन्ध लग रही थी। उनके नेत्रों से जो आलोक झर रहा था वह मानों पृथ्वी के ऊपर नयी उषा के आगमन की सूचना दे रहा था।

“दूसरे दिन मैं श्री हर प्रसाद से मिला तो उन्होंने कहा कि वे महिला मुझसे मिलना चाहती हैं! मैं उनसे भाई और मित्र की भांति मिला और सद्भाग्य से मुझे उनके साथ काम करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। मुझे पता चला कि वे महिला और उनका दल नये एशिया का, नये जगत् का स्वप्न देख रहे हैं। मैंने तब सुना कि वे सब श्रीअरविन्द के अनुयायी हैं। कैसा सुखद आश्चर्य! मैंने श्रीअरविन्द का नाम सुना था किन्तु मुझे उनके साथ पत्र-व्यवहार करने का भी सौभाग्य नहीं मिला था। मैं इन महिला के जादुई घेरे के प्रति आकृष्ट हो गया। हम सभी एक वर्ष एक साथ रहे, ध्यान भी एक साथ करते किन्तु मैं ज्ञेन विधि से ध्यान करता था और मेरे अन्य साथी अपने व्यक्तिगत ढंग से ध्यान करते थे। भले हमारी विधियां भिन्न थीं किन्तु हम एक ही स्थान पर पहुंचते थे।

“तुम जानना चाहते हो न कि मैं तुम्हारी माताजी की कौन-सी शक्ति से प्रभावित हुआ था? मैंने पाया कि उनका संकल्प-बल पर्वत को भी हिला सकता था, उनकी बुद्धि तलवार की धार-सी तीक्ष्ण थी। उनके विचार स्फटिक-से स्पष्ट थे, उनका निश्चय वट-वृक्ष की जड़ों की भांति दृढ़ था। दूसरी ओर कलाकार के रूप में वे अपार्षिव चित्र आंकती थीं, संगीतकार के रूप में जब वे ऑर्गन या गिटार बजाती थीं, तो मेरी अन्तरात्मा मंत्रमुग्ध हो सुनती रहती।

“मुझे पता नहीं मीरा, यानी तुम्हारी माताजी ने कौन-सा अद्वितीय कार्य किया है लेकिन मैं तो जानता हूँ कि वे मेरी बहन और आत्मा की मित्र हैं। तुम लोग उनके दिव्य-रूप को जानते हो, मैं उस दिव्य रूप को मित्र और बहन के रूप में जानता हूँ।”

तो यह है डॉ. ओकावा का माताजी के साथ साक्षात्कार का वर्णन मानों आधुनिक सुदामा और कृष्ण ! इस वर्णन से हम माताजी के मानव व्यक्तित्व के कितने पहलू जान पाये ! कितना अपूर्व मानव-रूप भी !

शायद किसी आश्रमवासी ने माताजी से कभी कार्य के आदर्श के बारे में पूछा होगा। देखें उनके अनुसार हम उस आदर्श पर कितने टिकते हैं ? विभिन्न स्थलों पर वे कहती हैं :

“अपने कार्य में पूर्णता के आदर्श से कम में तुम सन्तुष्ट न रहो तभी तुम भगवान् के यंत्र बन पाओगे... कार्य के प्रति तुम्हारी मनोवृत्ति सही है। प्रेम से किया गया कार्य प्रेम के कारण शक्तिशाली बन जाता है।”

“कार्य में जो बाधाएं आती हैं, वे परिस्थिति या छोटी-मोटी घटनाओं के कारण नहीं आती बल्कि वे तुम्हारी आन्तरिक मनोवृत्ति के किसी गलत झुकाव के कारण आती हैं। विशेषकर तुम्हारी प्राणमय मनोवृत्ति के कारण : जैसे अहंकार, महत्त्वाकांक्षा, कार्य के विषय में कड़ा मानसिक भाव, घमण्ड इत्यादि। असामंजस्य को बदलने के लिए हमेशा उसके कारण को दूसरों के अन्दर देखने की बजाय अपने अन्दर खोजना ज्यादा अच्छा है।”

“तुम्हें अपना काम साधना के एक अंग के रूप में लेना चाहिये और उसे भगवान् को अर्घ्य के रूप में अर्पित करना चाहिये। इस भावना से काम करो तो तुम क्या काम करते हो इसका कोई महत्त्व नहीं रहता, तब तुम कोई भी काम करते रहो फिर भी तुम्हारे साथ आन्तरिक भागवत उपस्थिति हमेशा बनी रहेगी।”

इस महीने, यानी अप्रैल में माताजी पॉण्डेचेरी में निवास करने और अपना कार्य पूरा करने के लिए हमेशा के लिए श्रीअरविन्द के पास आ गयी थीं।

अप्रैल 2005

आजीवन साधना करके माताजी ने अतिमानस को पृथ्वी पर स्थायी रूप से उतारा और इस तरह श्रीअरविन्द के आदेशानुसार कार्य सम्पन्न किया।

पता नहीं उन्होंने हमें कितने सुखद अनुभव, कितने छोटे-छोटे संकेत दिये हैं ताकि हम उनकी राह पर चल पायें।

—अनुबेन

दैनन्दिनी

अप्रैल

1. बहुत सीधे और सच्चे रहो। अपने अन्दर किसी ऐसी चीज़ को आश्रय न दो जिसे तुम बिना डरे मुझे न दिखा सको। ऐसा कुछ भी न करो जिसके लिए तुम्हें मेरे सामने लज्जा आये।
2. मेरे साथ सम्बन्ध बच्चे की तरह सरल और सहज रहे—यह तुम्हें बहुत-सी कठिनाइयों से बचायेगा।
3. सचमुच और प्रभावी रूप से हमेशा मेरे निकट रहने के लिए तुम्हें अधिकाधिक सच्चा, मेरे प्रति खुला हुआ, निष्कपट होना चाहिये। सभी दुराव और कपट को निकाल फेंको, ऐसा निश्चय करो कि तुम कोई ऐसी चीज़ न करोगे जो मुझे तुरन्त न बता सको।
4. वास्तव में भगवान् हर व्यक्ति को वही देते हैं जिसकी वह उनसे आशा करता है।
5. अगर तुम यह मानते हो कि भगवान् तुमसे बहुत दूर और क्रूर हैं तो वे दूर और क्रूर ही होंगे, क्योंकि तुम्हारी चरम भलाई के लिए ज़रूरी होगा कि तुम भगवान् के कोप का अनुभव करो...

६. जो भगवान् को हर क्षण, हर गति में आन्तरिक पथ-प्रदर्शक मानते हैं उनके लिए वे भाई की तरह निकट, सदा निष्ठावान् मित्र की तरह और हमेशा सहायता करने के लिए तैयार होंगे।
७. और अगर तुम्हें यह विश्वास हो कि वे सभी चीज़ों को मिटा सकते हैं तो वे तुम्हारी सभी भूलों, सभी भ्रान्तियों को बिना थके मिटा देंगे। और हर क्षण तुम उनकी असीम कृपा का अनुभव करोगे।
८. मनोवृत्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है, बाहरी मनोवृत्ति भी। लोग यह नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, श्रद्धा कितना बड़ा चमत्कार और चमत्कारों की रचना करनेवाली है।
९. अगर तुम हर क्षण यह आशा रखो कि तुम्हें ऊपर उठाया और भगवान् की ओर खींचा जायेगा तो वे तुम्हें ऊपर उठाने आयेंगे और तुम्हारे निकट, निकटतर, सदा निकटतम रहेंगे।
१०. मैं किसी देश की, किसी संस्कृति की, किसी जाति की नहीं, बल्कि भगवान् की हूँ।
११. मैं किसी स्वामी की आज्ञा नहीं मानती, किसी शासक, किसी विधान, किसी सामाजिक प्रथा को नहीं, केवल भगवान् को मानती हूँ।
१२. उन्हींको मैंने सब कुछ समर्पित कर दिया है, अपनी इच्छा, अपना जीवन, अपनी आत्मा, सब कुछ सौंप दिया है।
१३. ... यदि उनकी इच्छा हो तो उनके लिए मैं बूंद-बूंद करके अपना सारा रक्त देने के लिए तैयार हूँ, वह भी पूरे आनन्द के साथ...
१४. ... उनकी सेवा में कोई चीज़ बलिदान नहीं हो सकती, क्योंकि सब कुछ पूर्ण आनन्द है।
१५. मेरे प्रभो, मैं उस काम से बचने की कोशिश न करूंगी जो

अप्रैल 2005

- तूने मुझे दिया है। तू मेरी चेतना को जहां भी रखे, वह आनन्द भरे शिखरों की ओर उठने के प्रयास के बिना वहीं रहेगी।
- १६ यदि तेरी इच्छा हो कि वह अत्यन्त जड़ प्रकृति के गन्दे कीचड़ में ही रहे तो वह वहीं शान्त और विश्रामशील रहेगी, वह चाहे जहां हो। तेरे लिए अभीप्सा किये बिना न रहेगी।
- १७ ... तेरे प्रभाव की ओर खुलती और अपने अस्तित्व की एकमात्र वास्तविकता के रूप में वह तुझे अपने अन्दर पुकारती रहेगी।
१८. हे प्रभो, किस उत्साह के साथ चेतना जड़-भौतिक स्पन्दनों की कारा से निकलकर निष्कलंक शिखरों तक तेरी ओर उठना चाहती है !
१९. विस्मित शरीर मौन, समर्पणपूर्ण आराधना की धूलि में अपना मस्तक नवाता है।
अपनी निर्विकार शान्ति की भव्यता में तेरे सिवा और किसी का अस्तित्व नहीं है।
२०. यह सब ठीक है; तू जो चाहता है, वह होने और करने का आनन्द उच्चतर आनन्दों से कहीं बढ़कर है।
२१. लेकिन चेतना पुकार उठती है : "मैं तुझे चाहती हूं, मैं तुझे चाहती हूं..."
२२. "... तेरे बिना मैं कुछ भी नहीं हूं। तेरे बिना मेरा अस्तित्व तक नहीं है।"
२३. और पुकार का स्पन्दन इतना तीव्र है कि उससे यह भारी जड़द्रव्य तक हिल जाता है। "मैं तुझे चाहता हूं, मैं तुझे चाहता हूं!"
२४. "चूंकि तू मुझे सब कुछ यहां पीछे छोड़कर अपने साथ रहने के लिए अपनी ओर छलांग लगाने की स्वीकृति नहीं देता

- इसलिए मैं तुझे यहीं से पुकारूंगी..."
२५. "... और मैं तुझसे इतनी अधिक अनुनय-विनय करूंगी कि तू नीचे उतर आयेगा ताकि अपने-आपको एक ऐसे जगत् में भर दे जो अन्ततः तेरी उपस्थिति की नितान्त आवश्यकता के प्रति जाग गया है!"
२६. "और इस आवाहन की सिहरन इतनी तीव्र थी कि अंधेरी, अनगढ़ राशि में से पहली सिहरन प्रियतम के आगमन की घोषणा करती हुई आयी।"
२७. हे मेरे भगवान्, तूने मुझसे कहा है : "जड़-द्रव्य में डुबकी लगा और अपने-आपको उसके साथ एक कर ले, मैं वहीं अभिव्यक्त होऊंगा।"
२८. और तेरी इच्छा पूरी कर दी गयी — लेकिन जड़-द्रव्य ने उपहार की उपेक्षा कर दी और वह अंधेरे तथा मिथ्या क्रिया-कलाप में एक सन्तोष पाने की कोशिश में लगा है, जिसे वहां नहीं पाया जा सकता।
- लेकिन फिर भी तूने मुझे "विजय" का वचन दिया है...
२९. पृथ्वी के आरम्भ से जब कहीं और जहां कहीं, चेतना की एक किरण को अभिव्यक्त करने की सम्भावना थी, मैं वहां उपस्थित थी।
३०. हे प्रभो, इस चमत्कार के दिव्य रचयिता, मैं जब कभी इस दिव्य चमत्कार के बारे में सोचती हूं तो मेरा हृदय आनन्द और कृतज्ञता से उमड़ पड़ता है और मेरी आशा की कोई सीमा नहीं होती।
- मेरी पूजा सभी शब्दों के परे है और मेरी श्रद्धा नीरव है।

— श्रीमां

श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष

निष्कर्ष

ऐसा लगता है कि जाने की तारीख पर भी उन्होंने विचार किया होगा क्योंकि जैसे ही विद्यालय का उत्सव समाप्त हुआ कि उनकी हालत हठात् गम्भीर हो गयी। स्पष्ट था कि वे उस तारीख की प्रतीक्षा कर रहे थे और बाद में उन्होंने अपना नियंत्रण ढीला छोड़ दिया होगा। अन्त एकदम तेजी से आया। माताजी के रहस्योद्घाटित विवरण से हमें पता चला कि एक वर्ष पहले ही श्रीअरविन्द ने शरीर छोड़ने का निर्णय ले लिया था। माताजी ने डा. सन्याल से कहा था कि लोग नहीं जानते कि उन्होंने संसार के लिए कितना महान्, आश्चर्यजनक बलिदान किया है। एक वर्ष पहले जब मैं उनके साथ किसी विषय पर चर्चा कर रही थी तब मैंने उनसे कहा था कि मेरी शरीर छोड़ने की इच्छा हो रही है। उन्होंने बड़े दृढ़ स्वर में कहा, "नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। अगर इस बार रूपान्तर के लिए अनिवार्य हुआ, सम्भवतः मैं चला जाऊंगा, तुम्हें हमारे अतिमानस के अवतरण और रूपान्तर के योग को चरितार्थ करना होगा।" श्रीअरविन्द ने हमसे कहा था कि वे स्वयं को रोगमुक्त करना नहीं चाहते लेकिन उसका कारण हमें नहीं बतायेंगे क्योंकि हम उसे समझ न पायेंगे। उन्होंने 'सावित्री' में "ईश्वर के हुतात्मा-शरीर द्वारा अर्पित भयानक, रहस्यमय बलिदान" की बात की थी। उनके इन शब्दों में हमें उनके महाप्रयाण के अर्थ की ओर संकेत मिलता है।

माताजी को भी इसी अर्थ का सन्देश मिला था। ८ दिसम्बर को जब माताजी ने श्रीअरविन्द से आन्तरिक वार्तालाप करते हुए अनुरोध किया था कि वे पुनः जीवित हो जायें तो उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैंने

इस शरीर को जानबूझकर छोड़ा है। मैं उसे फिर से नहीं लूंगा। मैं अतिमानसिक रूप से बने पहले अतिमानस-शरीर में प्रकट होऊंगा।” हमें इस रहस्य की गहराई में नहीं जाना है क्योंकि यह रहस्य किसी अन्य आयाम और स्तर का है। उसकी जगह यह जानना कि उनके भौतिक शरीर के न रहते हुए भी उनकी ‘उपस्थिति’ हमेशा हमारे साथ है, हमें अधिक आत्मसन्तोष देता है। हमें यह स्पष्टीकरण माताजी के ७ दिसम्बर १९५० के सन्देश से मिला जब श्रीअरविन्द का शरीर अन्तिम दर्शन के लिए रखा गया था। सन्देश था, “प्रभो, आज सवेरे तूने मुझे आश्वासन दिया है कि जब तक तेरा कार्य सम्पन्न न हो जाये तब तक तू हमारे साथ रहेगा। तू केवल एक चेतना के रूप में नहीं रहेगा जो मार्गदर्शन देती और मार्ग प्रकाशित करती है, बल्कि कार्य में एक सक्रिय दिव्य ‘उपस्थिति’ के रूप में रहेगा। सुस्पष्ट भाषा में तूने वचन दिया है कि तेरा समस्त सर्वांगीण रूप यहीं रहेगा और पृथ्वी के वातावरण को तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक पृथ्वी रूपान्तरित न हो जाये। वर दे कि हम इस अद्भुत ‘उपस्थिति’ के योग्य बनें। वर दे कि अब से हमारा सब कुछ इसी एकमात्र संकल्प पर एकाग्र होकर अधिकाधिक पूर्णता से समर्पित होकर तेरे भव्य कार्य को चरितार्थ करे।”

श्रीअरविन्द की अनुपस्थिति से जो दुःखी हो रहे थे उन्हें माताजी से तीव्र प्रताड़ना सुननी पड़ी, “श्रीअरविन्द के लिए दुःखी होना उनका अपमान करना है, जो यहां हमारे साथ हैं, हमारे साथ सचेतन और जीवन्त रूप में हैं।” और “अपने शरीर के बारे में श्रीअरविन्द ने जो निर्णय लिया है उसके लिए पृथ्वी और मनुष्यों में ग्रहणशीलता की कमी जिम्मेवार है, लेकिन एक बात निश्चित है, वह यह कि भौतिक स्तर पर जो कुछ हुआ है उससे श्रीअरविन्द की शिक्षा के सत्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह

सब सच
के सत्य
उन्होंने
का अनुम
अर्पित प्र
“तुम
हम असी
हमारे लि
किया, तु
हमारे लि
प्रार्थना क
अब
अप्रत्यक्ष
परिणाम
भौतिक
उनकी
आध्यात्मा
हुआ अ
उनके य
लिए उ
का उद
आविर्भा
माताजी
हुआ वि
थे वह
करना

सब सच है और सच ही रहेगा। समय और घटनाचक्र उनकी शिक्षा के सत्य को प्रमाणित करेंगे।”

उन्होंने हमारे लिए, संसार के लिए कितना कुछ किया है इस का अनुमान हम समाधि पर उत्कीर्ण माताजी के कृतज्ञता-रूप में अर्पित फ़रासीसी और अंग्रेज़ी के इन वाक्यों से लगा सकते हैं :

“तुम्हारे प्रति, जो हमारे प्रभु के भौतिक आवरण रहे हो, तुम्हारे प्रति हम असीम कृतज्ञता प्रकट करते हैं। तुमने हमारे लिए इतना कुछ किया, हमारे लिए कर्म किया, संघर्ष किये, कष्ट झेले, आशा की, इतना सहन किया, तुमने हम सब के लिए संकल्प किये, प्रयत्न किये, तैयारी की, हमारे लिए सब कुछ प्राप्त किया, तुम्हारे आगे हम नतमस्तक हैं और यह प्रार्थना करते हैं कि हम एक क्षण भी तुम्हारे ऋण को न भूलें।”

अब हम यह देखें कि श्रीअरविन्द के देहत्याग का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव क्या पड़ा। सबसे पहले इस महान् बलिदान का परिणाम यह हुआ कि १९३८ से अतिमानसिक प्रकाश, जो बाह्यतम भौतिक में उतर रहा था किन्तु स्थिर न हो पा रहा था, अन्ततः उनकी इच्छा-मृत्यु के कारण पृथ्वी-चेतना में सुस्थिर हो गया। आध्यात्मिक प्रकाश का उनके शरीर में जो शक्तिशाली अवतरण हुआ और उसके द्वारा सारे भौतिक तत्त्व में वह विस्तृत हुआ, वही उनके योग का सर्वोच्च सिद्धि-मुकुट है। सारी सृष्टि के रूपान्तर के लिए उन्होंने शरीर का बलिदान दिया वह अद्वितीय आत्म-विलोपन का उदाहरण है। इस महाविलोपन के कारण दूसरा महान् दिव्य आविर्भाव १९५६ में हुआ। उस आविर्भाव के बाद हमने सुना कि माताजी ने कहा, “अब मेरा कार्य समाप्त हो गया।” इसका यह अर्थ हुआ कि तत्त्वतः माताजी और श्रीअरविन्द जो चरितार्थ करना चाहते थे वह चरितार्थ हो चुका, किन्तु ब्योरों को सचेतन रूप से तैयार करना था और क्रमविकास को तेज़ी से आगे बढ़ाने के लिए योग में

एकाग्र होना आवश्यक था। श्रीअरविन्द के बलिदान के बाद इतनी जल्दी जो दिव्य आविर्भाव हुआ वह वास्तव में उस बलिदान के कारण ही सम्भव हुआ। हम तर्क कर सकते हैं कि वह आविर्भाव उनके शरीर-त्याग के बिना भी सम्भव हो सकता था। बात सच है किन्तु श्रीअरविन्द के कई पत्रों में जो शिकायत थी उसके अनुसार आविर्भाव में विलम्ब हो रहा था। कई बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियाँ उसे रोके हुए थीं। 'सावित्री' के एक अध्याय में हमने देखा है कि श्रीअरविन्द यह शिकायत करते थे कि इन कारणों की वजह से उनका मुख्य काम रुक गया है। इन रुकावटों ने उन्हें एकाग्र होने के लिए काफ़ी समय नहीं दिया ताकि वे अपने मुख्य कार्य ('सावित्री') पर एकाग्र हो सकते। इन सब बाधाओं को मूल से उखाड़ने के लिए उग्र उपाय की आवश्यकता थी। यह उपाय उन सही परिस्थितियों को तैयार करता जिनके द्वारा सूक्ष्म कोश भौतिक शरीर से मुक्त होकर, यानी पीछे हटकर पूर्ण विस्तार से और अधिक सक्रिय रूप में ऊपर से, कार्य कर पाये। इस भाँति श्रीअरविन्द ने १९५६ के दिव्य आविर्भाव के लिए मार्ग खोल दिया। माताजी ने 'बुलेटिन' पत्रिका में कहा था कि हमें पता नहीं कि श्रीअरविन्द ने गुह्य जगत्‌ओं में कितना महान् कार्य किया है जिसके कारण स्वयं माताजी के शरीर में निर्णायक परिवर्तन हो रहे हैं। इसलिए उनका देहत्याग अनुकूल रूप से पीछे हटना था, उसे आत्म-बलिदान या प्राणोत्सर्ग कहना भी भावुक अतिशयोक्ति होगी। जिस चमत्कारिक घटना को हमने देखा वह इतनी विस्मयकारक थी कि वह विज्ञान के सिद्धान्तों से परे थी। कभी किसी ने सुना था कि एक मृत, निर्जीव शरीर का रातोंरात वर्ण बदल जाये, कि वह स्वर्णिम-रक्तिम आभा की दीप्ति से पांच दिनों तक अच्छी स्थिति में रहे!

— नीरदवरण

सच्चा प्रेम

(श्रीमां के वचन)

प्रेम

जब नानवाई (बेकरीवाला) अपने गुंधे आटे को उठाना चाहता है तो वह उसमें कुछ खमीर डालता है और अन्दर-ही-अन्दर से परिवर्तन शुरू होता है।

भगवान् जब 'जड़-पदार्थ' को जगाना चाहते थे, उसे जगा कर देवत्व की ओर उठाना चाहते थे तो उन्होंने 'अपने-आपको' प्रेम के रूप में जड़-द्रव्य में डाला और अन्दर-ही-अन्दर से रूपान्तर हो रहा है।

श्रीमां की कहानी

... हम सृष्टि के बारे में कही गयी बहुत-सी कहानियों में से चुन सकते हैं ऐसी कहानियां, जो न्यूनाधिक रूप से सच्ची हैं, न्यूनाधिक रूप से पूर्ण हैं, न्यूनाधिक रूप से अभिव्यञ्जनशील हैं...^१

मैं तुम्हें उनमें से एक कहानी बहुत संक्षेप में सुनाती हूं। इसे वेद-वाक्य न मान लेना, बल्कि इसे... एक कहानी के रूप में ही लेना।

परम प्रभु ने जब अपने-आपको मूर्त रूप देने का निश्चय किया, ताकि वे अपने-आपको देख सकें, तो जिस चीज़ को उन्होंने सबसे

^१ हम इन कहानियों को कम-से-कम एक ऐसे साधन के रूप में ले सकते हैं जो हमारी बाल-सदृश चेतना के सामने उस चीज़ को सजीव रूप में उपस्थित कर देती हैं जो अन्यथा हमसे दूर ही रहती।

पहले अपने में से बाहर प्रकट किया वह था जगत् का ज्ञान और उसे बनाने की शक्ति। इस ज्ञान-चेतना और शक्ति ने अपना काम शुरू किया और परम संकल्प में एक योजना थी और उस योजना का पहला सिद्धान्त यह था कि मूलभूत 'आनन्द' और 'स्वतंत्रता' की साथ-ही-साथ अभिव्यक्ति हो, जो इस सृष्टि की सबसे रोचक विशेषता मालूम होती है।

तो, इस 'आनन्द' और 'स्वतंत्रता' को रूपों में अभिव्यक्त करने के लिए मध्यवर्ती सत्ताओं की आवश्यकता हुई। और शुरू में चार सत्ताएं विश्व-विकास का प्रारम्भ करने के लिए बाहर प्रकट की गयीं, यह विश्व-विकास उस सबको क्रमशः बाहर प्रकट करने के लिए था जो परम प्रभु में सम्भाव्यता के रूप में मौजूद था। वे सत्ताएं, अपने मूल अस्तित्व में थीं : 'चेतना' और 'प्रकाश,' 'जीवन,' 'आनन्द' और 'प्रेम' तथा 'सत्य'।

तुम आसानी से कल्पना कर सकते हो कि उनमें एक ऐसी भावना थी कि उनके पास एक महान् शक्ति है, महान् बल है, कुछ ऐसी चीज़ है जो दुर्जेय है, क्योंकि मूलतः वे इन चीज़ों का सत्त्व-रूप ही तो थीं। और साथ ही उन्हें चुनाव करने की पूरी स्वतंत्रता थी क्योंकि यह सृष्टि स्वयं स्वतंत्रता का साकार रूप बननेवाली थी...। जैसे ही उन्होंने काम करना शुरू किया—इसे कैसे किया जाये इस बारे में उनकी अपनी-अपनी कल्पना थी—पूर्णतः स्वतंत्र होने के कारण उन्होंने इसे स्वच्छन्द रूप में करना पसन्द किया। सेवक और यंत्र की वृत्ति को अपनाने की जगह, जिसके बारे में श्रीअरविन्द ने इसमें कहा है जो मैंने अभी पढ़ा^१ उन्होंने स्वभावतः स्वामी होने की वृत्ति अपनायी, और

^१ तलवार युद्ध-क्रीड़ा में आनन्द पाती है, तीर अपनी सनसनाहट और उड़ान में उल्लास अनुभव करता है, पृथ्वी अन्तरिक्ष में चकरा देनेवाली तेजी से घूमने में ही हर्ष-विह्वल है, और सूर्य अपने जाज्वल्यमान तेजःपुंज

यह भूल
उसका म
कारण य
वस्तु के
'अन्धका
और 'स
से, विभा
उसी
धीरे क्रमि
लम्बी हो
अन्धकार
सत्ताओं
किया था
उत्पन्न हो
तब
मैं, अप
में उतार
गया था
अधिक
ताकि उ
उस क्रि
को उस
तो
एवं सन
तू भी उ

अप्रैल 2005

यह भूल ही (मैं कह सकती हूं) विश्व की अव्यवस्था का प्रथम कारण, उसका मूल कारण थी। जैसे ही अलगाव हुआ—क्योंकि मूलभूत कारण यही है, विभाजन—जैसे ही सर्वोच्च सत्ता और उससे प्रकट हुई वस्तु के बीच विभाजन हुआ, वैसे ही 'चेतना' 'अचेतना' में, 'प्रकाश' 'अन्धकार' में, 'प्रेम' 'घृणा' में, 'आनन्द' 'कष्ट' में, 'जीवन' 'मृत्यु' में और 'सत्य' 'मिथ्यात्व' में परिवर्तित हो गया। और वे स्वच्छन्द रूप से, विभाजन और अव्यवस्था में अपनी सृष्टि बनाते चले गये।

उसीका परिणाम यह जगत् है जैसा कि हम उसे देखते हैं। यह धीरे-धीरे क्रमिक रूपों में सम्पन्न हुआ; यह सब तुम्हें बताऊं तो सचमुच बात लम्बी हो जायेगी, परन्तु अन्ततः, इसकी चरम परिणति है जड़तत्त्व—अन्धकारमय, अचेतन, दयनीय...। सर्जक शक्ति, जिसने इन चार सत्ताओं को मूलतः संसार की सृष्टि के लिए अपने में से बाहर प्रकट किया था वहां उपस्थित थी, उसने परम प्रभु की ओर मुड़कर जो अशुभ उत्पन्न हो चुका था उसके उपचार और प्रतिकार के लिए प्रार्थना की।

तब उसे (सर्जक शक्ति को) अपनी 'चेतना' को नीचे अचेतना में, अपने 'प्रेम' को इस दुःख में और अपने 'सत्य' को इस मिथ्यात्व में उतारने का आदेश मिला। और पहली बार जिन्हें प्रकट किया गया था उनकी अपेक्षा अधिक बड़ी चेतना, अधिक सम्पूर्ण प्रेम और अधिक सम्पूर्ण सत्य जड़-तत्त्व की वीभत्सता में मानों कूद पड़े ताकि उसमें चेतना, प्रेम और सत्य को जगा सकें और उद्धार की उस क्रिया का आरम्भ कर सकें जिसका प्रयोजन इस भौतिक विश्व को उसके परम स्रोत की ओर वापस ले जाना है।...

तो यह है मेरी कहानी।

एवं सनातन गति के सम्राट्-सम आनन्द में मस्त है। हे आत्म-सचेतन यंत्र, तू भी अपने निर्दिष्ट कर्मों का आनन्द ले।”

(कर्मों का आनन्द, 'अतिमानव' पुस्तक से उद्धृत)

सभी खोजों के पीछे है प्रेम

जगत् में भगवान् के प्रेम की अभिव्यक्ति उनकी महान् आहुति थी, उनका परम आत्मदान था। 'पूर्ण चेतना' ने जड़ प्रकृति की अचेतना में निमग्न और विलीन होना स्वीकार किया ताकि अन्धकार की गहराइयों में भी चेतना जाग्रत् की जा सके और उनमें शनैः-शनैः दिव्य शक्ति उदित हो सके तथा सारे अभिव्यक्त विश्व को दिव्य चेतना और भागवत प्रेम की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति बनाया जा सके। अपनी परम दिव्य अवस्था को, उसकी निरपेक्ष चेतना को, उसके अनन्त ज्ञान को खोना स्वीकार करके, अचेतना के साथ एक होकर अज्ञान और अन्धकार से भरे जगत् में वास करना ही परम प्रेम था। फिर भी शायद कोई भी इसे प्रेम नहीं कहेगा; क्योंकि यह अपने-आपको ऊपरी भावनाओं से नहीं मढ़ता, इसने जो कुछ किया है उसके बदले में कोई मांग नहीं रखता, अपने बलिदान का प्रदर्शन नहीं करता। जगत् में प्रेम-शक्ति उन चेतनाओं की खोज में है जो इस भागवत गति को उसके विशुद्ध रूप में ग्रहण करने और उसे अभिव्यक्त करने के योग्य हों। समस्त जीवों की प्रेम के लिए यह दौड़, समस्त जीवों के तथा जगत् के हृदय में प्रेम के लिए अदम्य आवेग, उस भागवत प्रेम की प्रेरणा के कारण ही है जो मनुष्य की समस्त कामना और चाह के पीछे वर्तमान है। प्रेम-शक्ति करोड़ों उपकरणों का स्पर्श करती है, सदा परीक्षण करती है, सदा असफल होती है; किन्तु इसका यह बार-बार का स्पर्श उपकरणों को तैयार कर रहा है और एक दिन आयेगा जब सहसा उनमें आत्म-दान और प्रेम की शक्ति जाग उठेगी।

प्रेम की गति मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है और सम्भवतः मानवजाति की अपेक्षा अन्य सृष्टियों में कम विकृत है। पुष्पों और

वृक्षों क
है, तब
प्रकृति
की जड़
ऊपर
वृक्षों के
तक में
और स
वे वाप
कि यी
तुम्हारी
हार्दिक
एक ब
संस्पर्श
रूप व
मनुष्य
मानव
हो गय
भरा ह
नीचत
लोग
प्रे
निका
वह इ
लाये।
को भ

अप्रैल 2005

वृक्षों को देखो। जब सूर्य अस्त होता और सब कुछ नीरव हो जाता है, तब क्षण भर के लिए शान्त होकर बैठो और अपने-आपको प्रकृति के साथ एक कर दो : तुम अनुभव करोगे कि पृथ्वी से, वृक्षों की जड़ के नीचे से प्रगाढ़ प्रेम और कामना से पूर्ण एक अभीप्सा ऊपर उठ रही है और यह अभीप्सा ऊपर की ओर बढ़ती हुई तथा वृक्षों के तन्तुओं में से संचार करती हुई उनकी उच्चतम शाखाओं तक में उठ रही है—उस वस्तु के लिए कामना जो प्रकाश लाती और सुख फैलाती है, उस प्रकाश के लिए जो चला गया है, जिसे वे वापस चाहते हैं। उनमें यह चाह इतनी पवित्र और तीव्र होती है कि यदि तुम वृक्षों में होनेवाली गति को अनुभव कर सको तो तुम्हारी अपनी सत्ता भी उस शान्ति, उस प्रकाश और प्रेम के लिए हार्दिक प्रार्थना करने लगेगी जो अभीतक यहां अभिव्यक्त नहीं हैं। एक बार भी यदि तुम इस विशाल, विशुद्ध और सत्य दिव्य प्रेम के संस्पर्श में आ जाओ, यदि तुम थोड़ी देर के लिए भी इसके लघुतम रूप का ही अनुभव कर पाओ, तो तुम यह अनुभव कर लोगे कि मनुष्य की वासना ने इसके स्वरूप को कितना नीच बना डाला है। मानव प्रकृति में यह क्षुद्र, पाशविक, स्वार्थमय, हिंसात्मक और कुरूप हो गया है, या फिर यह दुर्बल और भावुक, अत्यन्त तुच्छ भावों से भरा हुआ, क्षण-भंगुर, बाहरी और शोषक बन गया है। और इस नीचता और पशुता को अथवा इस स्वार्थ से भरी हुई दुर्बलता को लोग प्रेम कहते हैं !...

प्रेम एक परमा शक्ति है जिसे शाश्वत चेतना ने अपने-आपमें से निकालकर धुंधले और अन्धकारग्रस्त जगत् में नीचे भेजा है, ताकि वह इस जगत् को और इसके जीवों को भगवान् के पास लौटा लाये। अज्ञान और अन्धकार में डूबा हुआ जड़प्राकृतिक जगत् भगवान् को भूल चुका था। प्रेम उस अन्धकार में आया; जो सोये पड़े थे

उन्हें जगाया; जो कान बन्द थे उन्हें खोलकर उनमें यह सन्देश फूँका : “एक वस्तु है जो इस योग्य है कि उसके लिए जागा जाये और उसके लिए जिया जाये, और वह है प्रेम !” और प्रेम के प्रति इस जागृति के साथ-साथ भगवान् के पास लौट चलने की सम्भावना भी इस जगत् में प्रविष्ट हुई। प्रेम के द्वारा सृष्टि भगवान् की ओर उठती है और प्रत्युत्तर में भागवत प्रेम और भागवत कृपा सृष्टि से मिलने के लिए नीचे की ओर झुकते हैं। जबतक यह आदान-प्रदान न हो, परमात्मा और पृथ्वी का यह पारस्परिक मिलन न हो, भगवान् की ओर से सृष्टि के प्रति और सृष्टि की ओर से भगवान् के प्रति प्रेम की यह गति न हो, तब तक प्रेम अपने शुद्ध सौन्दर्य में नहीं रह सकता, अपनी नैसर्गिक शक्ति का और अपनी पूर्णता के प्रगाढ़ आनन्द का संचार नहीं कर सकता। यह संसार मृत जड़-प्रकृति का जगत् था। फिर इसमें प्रेम का अवतरण हुआ जिसने इसे जीवन के प्रति जगा दिया। तभी से यह जगत् जीवन के इस दिव्य आदि-स्रोत की खोज में लगा है, किन्तु अपनी इस खोज में इसने हर प्रकार के गलत मोड़ लिए हैं, बारम्बार उलटे रास्तों पर पड़ता और अन्धेरे में इधर-से-उधर भटकता रहा है। यह सम्पूर्ण सृष्टि किसी अज्ञात को खोजनेवाले एक अन्धे की तरह अपने मार्ग पर चली है, इसमें खोज तो है, पर वह यह नहीं जानती कि वह क्या खोज रही है। इसने जो अधिक-से-अधिक प्राप्त किया है, जो मानव प्राणियों को प्रेम का उच्चतम स्वरूप दिखायी देता है, जो उनकी समझ में शुद्धतम और निःस्वार्थतम प्रकार का प्रेम है, वह है माता का अपने बच्चे के प्रति प्रेम। प्रेम की यह मानव गति अबतक जो पा सकी है उससे इतर किसी वस्तु को गुप्त रूप से ढूँढ़ रही है; किन्तु उसे नहीं मालूम कि वह वस्तु कहां मिलेगी, वह यह भी नहीं जानती कि वह है क्या। ज्यों ही मनुष्य की चेतना दिव्य प्रेम के प्रति जाग्रत् होती है, उस प्रेम

के प्रति
स्वतंत्र
उसका
का अ
भगवान्
ही अ
लुप्त
होती है
प्रेम के
सचेत
अपनी
और
परम
इनका

के अ
के ब
में दो
ध्रुवों
दूसरे
प्रति
स्रोत

अप्रैल 2005

के प्रति जो शुद्ध है, जो मानव रूपों में हुई सभी अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र है, त्यों ही वह उसे जान जाती है जिसके लिए वास्तव में उसका हृदय इतने समय से तरस रहा था। यही है आत्मा की अभीप्सा का आरम्भ, जिसके फलस्वरूप चेतना में जागृति आती है और भगवान् के साथ एकता के लिए उत्कंठा उत्पन्न होती है। इसके साथ ही अज्ञान से उत्पन्न रूप और उसके लादे हुए विकार मुरझाकर लुप्त हो जाते हैं और इन सबके स्थान पर सृष्टि की एकमेव गति होती है जो भागवत प्रेम की पुकार का उत्तर भगवान् के प्रति अपने प्रेम के द्वारा देती है। ज्यों ही सृष्टि भागवत प्रेम के लिए उन्मुख, सचेतन और जाग्रत् होती है त्यों ही भागवत प्रेम सृष्टि में फिर से अपनी असीम वर्षा करने लगता है। गतिचक्र अन्तर्मुख हो जाता है और इसके दोनों छोर आपस में मिल जाते हैं, चरम तत्त्व, अर्थात्, परम 'आत्मा' और विकासोन्मुख 'जड़-प्रकृति' एक हो जाते हैं तथा इनका दिव्य मिलन पूर्ण और स्थायी हो जाता है।

प्रेम क्या है

प्रेम, अपने सार-तत्त्व में, एकात्मता का आनन्द है; वह ऐक्य के आनन्द में अपनी चरम अभिव्यक्ति पाता है। इन दो अवस्थाओं के बीच वैश्व अभिव्यक्ति के सभी पक्ष आ जाते हैं।

इस अभिव्यक्ति के आरम्भ में, प्रेम अपने उद्गम की पवित्रता में दो गतियों से बना होता है, पूर्ण मिलन की प्रवृत्ति के दो पूरक ध्रुवों से बना होता है। एक ओर आकर्षण की परमा शक्ति और दूसरी ओर है पूर्ण आत्म-समर्पण की आवश्यकता जिसका कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता। व्यक्तिगत सत्ता में चेतना के अपने मूल स्रोत से बिछुड़कर निश्चेतना बनते समय जो खाई खुद गयी थी उसे

पाटने के लिए कोई और शक्ति प्रेम से बढ़कर नहीं हो सकती।

जो चीज़ देश-काल में प्रक्षिप्त की गयी थी उसे इस भांति बनी हुई सृष्टि को नष्ट किये बिना स्वयं अपने में वापिस लाना था। इसके लिए प्रेम, जो मिलन की एकमात्र अदम्य शक्ति है, उमड़ पड़ा।

वह अन्धकार और निश्चेतना पर मंडराता रहा, उसने अपने-आपको अगाध रात्रि के वक्ष में बिखेर दिया, चूर-चूर कर दिया है। और तभी से जागरण और आरोहण का आरम्भ हुआ, धीरे-धीरे जड़-तत्त्व का निर्माण और उसका अन्तहीन विकास शुरू हुआ। क्या वह प्रेम ही नहीं है जो एक भ्रान्तिपूर्ण और अन्धेरे रूप में भौतिक और प्राणिक प्रकृति की सभी प्रेरणाओं के साथ जुड़ा है तथा प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक समूहीकरण की ओर प्रेरित करता है? वनस्पति-जगत् में यह बिलकुल स्पष्ट दिखायी देता है। पेड़ पौधों में यह अधिक प्रकाश और अधिक हवा, अधिक स्थान पाने के लिए बढ़ने की आवश्यकता है, तो फूलों में यही सौन्दर्य और सुरभि के साथ प्रस्फुटन है। और पशु-जगत् में क्या यही भूख-प्यास, अधिकार, विस्तार और प्रजनन, संक्षेप में कहें तो सभी कामनाओं के पीछे जाने-अजाने रूप में नहीं रहता? और उच्चतर श्रेणियों में मादा की अपने बच्चों के लिए निःस्वार्थ निष्ठा में यही चीज़ नहीं है? यह चीज़ हमें स्वभावतः मानवजाति तक ले आती है जहां मानसिक गतिविधि के विजयपूर्ण आगमन से यह सम्बन्ध अपनी चरम सीमा को पा लेता है, क्योंकि वहां पर यह सचेतन और सुविवेचित है।

आप कहती हैं, "प्रेम सर्वत्र विद्यमान है। इसकी क्रिया पौधों में, सम्भवतः एकदम पत्थरों तक में भी होती है।"

—वार्तालाप (१९२९)

यदि पत्थर में भी प्रेम है तो उसे हम कैसे देख सकते हैं?

सम्भवतः पत्थर का निर्माण करनेवाले विभिन्न तत्त्व प्रेम की चिनगारी के द्वारा ही एक सूत्र में ग्रथित होते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि जब भगवत प्रेम जड़तत्त्व के अन्दर उतरा, यह जड़तत्त्व बिल्कुल अचेतन था, इसका एकदम कोई आकार नहीं था; ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब प्रेम जड़तत्त्व में चेतना ले आने का प्रयत्न करता है तो उसका परिणाम होता है सामान्य आकारों का बनना। यदि तुममें से कोई व्यक्ति (मुझे सन्देह है, पर फिर भी) निश्चेतना में, जिसे विशुद्ध 'निश्चेतना' कहते हैं, उतर जाये तो वह अनुभव करेगा कि वह क्या है। तब उस व्यक्ति को उसके मुकाबले पत्थर अद्भुत रूप में सचेतन प्रतीत होगा। तुम पत्थर के विषय में घृणा के साथ बातें करते हो क्योंकि तुम्हारे अन्दर उसकी अपेक्षा ठीक एक बूंद अधिक चेतना होती है, परन्तु पत्थर और नितान्त 'निश्चेतना' के बीच जो चेतना का अन्तर है वह पत्थर और तुम्हारे बीच की चेतना के अन्तर से शायद बहुत अधिक है। और सच पूछो तो एकमात्र 'भगवान्' की आत्माहुति के कारण ही, जड़तत्त्व के अन्दर, दिव्य 'प्रेम' के इस अवतरण के कारण ही निश्चेतना का भीतर से बाहर आना सम्भव हुआ है। अतएव, जब मैंने यह कहा था कि "सम्भवतः पत्थरों तक में", मैं "सम्भवतः" शब्द को निकाल सकती थी—मैं बलपूर्वक कह सकती हूँ कि यहां तक कि पत्थरों में भी वह विद्यमान है। यदि इस दिव्य 'प्रेम' की उपस्थिति न हो तो कोई वस्तु नहीं होगी, न तो पत्थर न धातु और न अणुओं का कोई भी संघटन।

प्रेम की अभिव्यक्तियां

कहा गया है कि बाघ की दूसरों को खाने की आवश्यकता इस संसार में प्रेम की पहली अभिव्यक्तियों में से एक है। मेरा ख्याल है कि बाघ से भी बहुत पहले, सागर की गहराइयों में कुछ ऐसे पहले प्राणी रहे होंगे जिनका एक ही धन्धा रहा होगा : पेट। वे पेट के रूप में ही अस्तित्व रखते थे। अतः वे निगलते ही जाते थे—यही उनका एकमात्र कार्य था। स्पष्ट ही यह जड़-पदार्थ में 'प्रेम' की शक्ति के प्रवेश का पहला परिणाम था, क्योंकि इससे पहले कुछ नहीं था : तब पूर्ण निश्चेतना थी, गति का नामोनिशान न था, कुछ भी गतिशील नहीं था। प्रेम के साथ गति आरम्भ हुई : यह गति थी चेतना की जागृति और रूपान्तर की क्रिया। हां, तो यह कहा जा सकता है कि जीवों के प्रथम रूप जड़-प्रकृति में प्रेम की पहली अभिव्यक्ति थी। अतएव हम निगलने की आवश्यकता से—जो एकमात्र चेतना है—हां, निगलने की, संयुक्त होने की आवश्यकता से—ठीक वहां तक... जा सकते हैं। क्षमा करना, हम कहते हैं कि प्रेम संसार की शक्ति है—वस्तुओं के साथ संयुक्त होने का यह एक बर्बर तरीका है, किन्तु है बड़ा सीधा : वस्तु को निगला और अपने अन्दर आत्मसात् कर लिया; हां तो, बाघ को सचमुच इसमें बड़ा आनन्द आता है। तो इसमें आनन्द तो होता ही है, यह अपने-आपमें प्रेम का एक काफ़ी ऊंचा स्वरूप है। तुम इससे ऊंचे जा सकते हो, इसकी परिणति होती है मनुष्यों के उस प्रेम में जो प्रेम की एक उच्चतम अभिव्यक्ति है : प्रेम-पात्र के प्रति पूर्ण समर्पण, दूसरे शब्दों में, मातृभूमि के लिए प्राण न्योछावर कर देना या किसी की रक्षा करने के लिए अपनी जान दे देना, इसी तरह की चीज़ें। यह प्रेम अपने-आप में... काफ़ी ऊंचे दर्जे का है। लेकिन इसमें अब भी कुछ गंदलापन है। यह प्रेम का उच्चतम

स्वरूप तो नहीं है पर फिर भी कुछ है तो सही। और तुम इसकी सब अवस्थाएं देखते हो, न? हां, तो व्यक्ति को इससे भी काफ़ी आगे बढ़ना है, तभी वह उस वस्तु की सच्ची अभिव्यक्ति तक पहुंचेगा जिसकी मैं चर्चा कर रही हूं, जो चढ़ाई की उच्चतम चोटी पर स्थित है, (माताजी अपनी पुस्तक “चतुर्विध तपस्या” से पढ़ती हैं) :

“प्रेम, अपने सार-तत्त्व में, एक ऐसा आनन्द है जो तादात्म्य से प्राप्त होता है, वह मिलन के आनन्द में ही अपनी सर्वोच्च अभिव्यक्ति पाता है।”

आरम्भ में, प्रेम के प्रकट होने से पहले, एक ऐसी वस्तु होती है जिसे हम “तादात्म्य का आनन्द” कह सकते हैं, पर कहने का यह तरीका है बेढंगा। इसके बारे में सोचना बहुत अधिक कठिन अवश्य है, क्योंकि मानव विचार वस्तुओं के बारे में, उनसे उल्टी बातों के बिना, सोच ही नहीं सकता, जब कि सर्वोच्च अवस्था तब आती है जब प्रेम अपने मूल स्रोत तक वापिस पहुंचने के लिए पूरे विश्व का चक्कर लगा लेता है, तब उसके पास उन सब अनुभवों का फल होता है जिन्हें उसने प्राप्त किया है और वह अपने प्रारम्भिक बिन्दु की ओर वापिस लौट आता है। वह प्रारम्भ-बिन्दु की ओर कुछ अधिक ही लेकर लौटता है जो उसके पास चलने से पहले नहीं था: अर्थात्, विश्व की अनुभूति लेकर। और मूल रूप में, वही सृष्टि का मुख्य हेतु भी है। इसका कारण यह है कि यदि चेतना ने अपने-आपको सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त न किया होता तो उसका स्वरूप वह न होता जो अब है। हां तो, एक बात को ध्यान में रखो कि सृष्टि की वापसी काल में नहीं होती, उसके बारे में सोचना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि हम काल और देश के विषय में ही सोच

सकते हैं और हमारे लिए वस्तुएं क्रमिक होती हैं, एक के बाद एक होती हैं, किन्तु यदि एक ऐसी समग्र क्रिया के विषय में सोचना सम्भव होता जो प्रत्येक वस्तु को अपने में लपेट लेती तथा जो एक साथ ही आरम्भ और अन्त होती और सब वस्तुओं को अपने अन्दर धारण कर लेती, तब यह वापसी काल में नहीं, चेतना में वापसी होती—यह सब तुम्हें कैसे समझाऊं?—तब प्रेम की अपने मूल स्रोत की ओर वापसी केवल तादात्म्य का आनन्द होने के स्थान पर मिलन का उल्लास हो जाती है—और स्पष्ट ही, यदि व्यक्ति केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही देखे, तो चेतना विश्व में प्राप्त अनुभूति के कारण समृद्ध हो रही है; दूसरे शब्दों में, उसके अन्दर के तत्त्व उन्नत हो रहे हैं और चेतना पूर्णता को प्राप्त हो रही है। यदि विश्व का यह अभिव्यक्त रूप प्रकट न होता तो यह सब भी यहां न दिखाई देता। और यह स्पष्ट ही सृष्टि की अधिक-से-अधिक युक्तिपूर्ण व्याख्या है, उसका अत्यधिक युक्तिपूर्ण हेतु है।

प्रेम नष्ट नहीं करता, रूपान्तरित करता है

...निश्चित रूप में प्रेम सबसे अधिक बलशाली और समग्र शक्ति है—समग्र इस अर्थ में कि यह सब अवस्थाओं में प्रयुक्त की जाती है। यह पवित्रीकरण की उस शक्ति से भी अधिक बलशाली है जो समस्त गलत इच्छा को समाप्त कर देती है और किसी-न-किसी प्रकार विरोधी शक्तियों को अपने वश में कर लेती है, पर रूपान्तर की सीधी शक्ति उसमें नहीं होती। पवित्रीकरण की शक्ति पहले नष्ट करती है ताकि बाद में रूपान्तर हो सके। वह एक आकार को नष्ट करती है ताकि उससे अधिक अच्छा आकार बना सके, जब कि प्रेम को रूपान्तर के लिए किसी चीज़ को नष्ट करने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

अप्रैल 2005

उसके अन्दर रूपान्तर की सीधी शक्ति होती है। प्रेम एक अग्निशिखा के समान है जो कठोर वस्तु को लचकदार बना देती है। और फिर इस लचकदार वस्तु को भी एक प्रकार के पवित्र वाष्प में बदल देती है—यह वस्तु को नष्ट नहीं करती, उसे रूपान्तरित कर देती है।

अपने साररूप में और स्रोत में प्रेम एक ज्वाला है, एक सफ़ेद ज्वाला, जो सब बाधाओं को जीत लेती है। तुम स्वयं इस सम्बन्ध में प्रयोग कर सकते हो। तुम्हारी सत्ता में कोई भी कठिनाई क्यों न हो, एकत्रित हुई भूलों, अयोग्यताओं तथा अज्ञान और दुर्भावनाओं का कितना भी बोझ क्यों न हो, इस पवित्र, साररूप सर्वोच्च प्रेम का एक क्षण मानों इन सबको एक सर्वसमर्थ ज्योति में विलीन कर देता है। इसका एक क्षण, और सम्पूर्ण अतीत समाप्त हो जाता है; यदि तुम इसके सार को क्षण भर के लिए भी छू लो तो सारा बोझ हट जाता है।

*

और जब सर्वोच्च प्रेम की अभिव्यक्ति का, उसके स्फटिकसम और केन्द्रीभूत अवरोहण का दिन आयेगा, तो वह सचमुच रूपान्तर का क्षण होगा। क्योंकि, तब कोई चीज़ उसका अवरोध नहीं कर सकेगी।

पर चूँकि प्रेम सर्वसमर्थ है, अतः पृथ्वी पर कुछ ग्रहणशीलता अवश्य तैयार की जानी चाहिये ताकि परिणाम ध्वंसकारी न हों। श्रीअरविन्द ने अपने एक पत्र में इस बात की व्याख्या की है। उनसे किसी ने पूछा : “यह वस्तु एकदम ही क्यों नहीं आ जाती?” उन्होंने कुछ इस प्रकार का जवाब दिया : यदि भागवत प्रेम अपने सार-तत्त्व में पृथ्वी पर अभिव्यक्त हो जाये तो यह बम के गोले के समान होगा। कारण पृथ्वी इतनी नमनीय और ग्रहणशील नहीं है कि इस

प्रेम की मात्रा के अनुसार अपने-आपको विस्तृत कर सके। पृथ्वी को अपने-आपको केवल खोलना ही नहीं, बल्कि विस्तृत भी करना है, अपने-आपको अधिक नमनीय भी बनाना है—जड़-पदार्थ अभी तक बड़ा कठोर है। भौतिक चेतना का तत्त्व भी ऐसा ही है। अत्यधिक जड़-पदार्थ ही नहीं वरन् भौतिक चेतना का तत्त्व भी बहुत अधिक कठोर है।

मनुष्य जिसे प्रेम कहते हैं

प्रेम केवल एक है, भागवत प्रेम, शाश्वत, वैश्व, सब मनुष्यों और सभी वस्तुओं के लिए एक समान।

मनुष्य (मानव सत्ता) सब प्रकार के भावों को, सभी कामनाओं, आकर्षणों, प्राणिक लेन-देन, सेक्स-सम्बन्ध, आसक्ति, मित्रता और अन्य बहुत-सी चीज़ों को “प्रेम” कहता है।

लेकिन ये सब प्रेम की छाया तक नहीं हैं, उसके विकृत रूप तक नहीं हैं।

ये सब मानसिक, प्राणिक, भावुकतामय या सेक्स के क्रिया-कलाप हैं, उनसे बढ़कर कुछ नहीं।

*

... और तब सच्चे प्रेम का आरम्भ होता है : तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो, इसलिए बिलकुल नहीं कि तुम्हें अपने प्यार का उत्तर मिलता है या दूसरा व्यक्ति भी तुमसे प्यार करता है। ये सब शर्तें—प्रेम नहीं हैं। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम इससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकते। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो। तुम इसकी बिलकुल परवाह नहीं करते कि

क्या होगा, तुम अपने प्रेम की भावना से ही पूरी तरह सन्तुष्ट रहते हो। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो।

बाकी सब सौदेबाज़ी है, प्रेम नहीं है।

और फिर, एक बात निश्चित है। तुम जिस क्षण सच्चे प्रेम में प्रवेश करते हो तब तुम यह प्रश्न ही नहीं करते। यह प्रश्न बिल्कुल बचकाना, बेतुका और तुच्छ मालूम होता है। जिस क्षण तुम सच्चे प्रेम में प्रवेश करते हो तुम्हें आनन्द और उपलब्धि का बाहुल्य पूरी तरह से प्राप्त हो जाता है और तुम्हें किसी उत्तर की ज़रूरत नहीं रहती। तुम प्रेम होते हो, और बस। और तुम्हें प्रेम के सन्तोष की प्रचुरता प्राप्त होती है। वहां किसी पारस्परिकता की ज़रूरत नहीं रहती।

मैं तुमसे कहती हूं, जबतक मन में या भावों में या संवेदनों में हिसाब-किताब रहता है, जबतक कोई हिसाब-किताब रहता है, कम या ज्यादा स्वीकृत हिसाब-किताब रहता है, तबतक यह प्रेम नहीं, सौदेबाज़ी है।...

बाकी सब कुछ ठीक वही है जो लोगों ने प्रेम का बना दिया है। इसके अतिरिक्त यह बहुत सुन्दर नहीं है और यह ऐसी बहुत-सी चीज़ों की ओर ले जाता है जो और भी कम सुन्दर हैं, जैसे द्वेष या ईर्ष्या और उग्र प्रकृति के लोगों में तो बात घृणा तक जा पहुंचती है। छोटा-सा आरम्भ यूँ होता है : आवश्यकता—जब तुम प्यार करते हो, तो जिससे या जिस व्यक्ति से प्यार करते हो उसे यह पता होना चाहिये कि उससे प्यार किया जा रहा है। लेकिन भगवान् के सम्बन्ध में, तुम भगवान् से प्यार तो करते हो पर तुम्हें आग्रह होता है कि भगवान् को यह मालूम हो कि तुम उनसे प्यार करते हो ! पतन का यही आरम्भ है। सच्ची चीज़ इसके बारे में सोचती तक नहीं है, वह मन को ज़रा छूती तक नहीं...।

जिसे लोग "प्रेम" कहते हैं उससे यह सच्चा प्रेम बहुत, बहुत, बहुत दूर है—एक लम्बा रास्ता है।

*

मनुष्य हमेशा जो कुछ देते हैं उसके बदले में कुछ क्यों लेना चाहते हैं?

क्योंकि वे अपने-आपमें बन्द रहते हैं।

वे अपनी सीमाओं को अनुभव करते हैं और सोचते हैं कि विकसित होने, बढ़ने, बचे रहने के लिए भी उन्हें बाहर से चीज़ें लेनी होंगी, क्योंकि वे अपनी व्यक्तिगत सीमाओं की चेतना में रहते हैं। इसलिए, उनकी दृष्टि में, जब वे कुछ देते हैं तो उनके अन्दर एक छेद हो जाता है, और यह छेद कुछ पाकर ही भरा जा सकता है! ...स्वभावतः यह एक भूल है। सच तो यह है कि अपने छोटे-से व्यक्तित्व की अपनी संकुचित सीमाओं में बन्द रहने की जगह वे अपनी चेतना को इतना विस्तृत कर सकें कि औरों के साथ उनकी संकुचित सीमाओं में एक न होकर, इन सीमाओं से बाहर निकलकर, उनके पार जाकर सब जगह फैल जायें, एकमेव चेतना के साथ मिलकर एक हो जायें और सब चीज़ें बन जायें। तब, उस क्षण, संकुचित सीमाएं गायब हो जायेंगी, उससे पहले नहीं। और जबतक तुम्हें संकुचित सीमाओं का अनुभव होता है तबतक तुम लेना चाहते हो, क्योंकि तुम्हें खोने का डर रहता है। व्यक्ति खर्च करता है तो फिर से भरना चाहता है। मेरे बच्चो, यह इसी कारण है। क्योंकि अगर तुम सभी चीज़ों में फैले रहो, अगर आने और जानेवाले सभी स्पन्दन सब चीज़ों में मिल जाने की, अपने-आपको विस्तृत करने की, अपनी सीमाओं में बने रहकर बढ़ने की नहीं, उन सीमाओं से बाहर निकलकर बढ़ने की और अन्त में हर चीज़ के साथ एक हो

जाने की आवश्यकता व्यक्त करें तो तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ भी न होगा, क्योंकि सब कुछ तुम्हारे पास होगा। लेकिन व्यक्ति यह नहीं जानता। और चूंकि वह नहीं जानता इसलिए कर भी नहीं सकता। आदमी लेना चाहता है, संचित, संचित, संचित करना चाहता है लेकिन यह असम्भव है, तुम संचित नहीं कर सकते। तुम्हें तादात्म्य साधना चाहिये। और तब जो कुछ थोड़ा-बहुत तुम देते हो उसके बदले में कुछ चाहते हो। तुम एक सद्भावना देते हो तो उसकी मान्यता चाहते हो, तुम थोड़ा-सा स्नेह देते हो और दूसरों से उसकी आशा करते हो... क्योंकि तुम्हारे अन्दर यह क्षमता नहीं है कि हर एक के अन्दर सद्भावना बन सको, तुम्हारे अन्दर यह क्षमता नहीं है कि सबके अन्दर स्नेह बन सको, सब चीजों के अन्दर सौम्य प्रेम बन सको। तुम्हें बस ऐसा ही प्रतीत होता है, सब कुछ कटा-कटा और सीमित और तुम्हें सब कुछ खोने का डर रहता है, तुम्हारे पास जो कुछ है उसे खोने का डर रहता है क्योंकि तब तुम कंगाल हो जाओगे। इसके विपरीत, यदि तुम तादात्म्य साध सको तो तुम्हें खींचने की ज़रूरत न रहेगी। तुम जितना अधिक फैलोगे उतना ही अधिक तुम्हारे पास होगा। तुम जितना अधिक तादात्म्य साधोगे उतने ही अधिक बन जाओगे। और तब लेने की जगह तुम दोगे। तुम जितना अधिक दोगे उतने ही अधिक बढ़ोगे।

जानवरों में मनुष्यों के लिए प्रेम

जानवरों में मनुष्यों के लिए कैसा प्रेम होता है?

यह लगभग वैसा ही होता है जैसा अबुद्धिवादी लोगों में भगवान् के लिए। यह सराहना, विश्वास और सुरक्षा की भावना से मिलकर

अग्निशिखा
अप्रैल :
उन्हें वि
और व
रहने क
कु
जानवर
प्रदान ह
बहुत त
नज़दीक
अन्दर
का बल
इससे उ
में, जैसे
की एक
तर्क-वि
बहुत स
म
अभिव्य
स्
बुद्धि व
लेकिन
ही गंव
किताब
लेता
जीवन
बहुत
को ध

बनता है। सराहना : वह तुम्हें सचमुच बहुत सुन्दर लगता है, और इसलिए कोई तर्क नहीं किया जाता, हृदय से सराहना, कह सकते हैं, सहज। उदाहरण के लिए, यह चीज़ कुत्तों में बहुत अधिक होती है। और फिर विश्वास—स्वभावतः इस चीज़ में कई बार और चीज़ें मिली होती हैं, कुछ आवश्यकता की और निर्भरता की भावना। क्योंकि जब मुझे भूख लगेगी तो यही व्यक्ति मुझे खाना देगा। जब मौसम खराब होगा तो यही मुझे आश्रय देगा, मेरी देखभाल करेगा। यह सबसे सुन्दर पक्ष नहीं है : और तब यह दुर्भाग्यवश एक प्रकार के भय से मिल जाता है (मैं समझती हूँ—मैं इसे पूरी तरह मनुष्य का दोष मानती हूँ), निर्भरता की भावना और अपने से बहुत अधिक मजबूत, बहुत अधिक सचेतन, बहुत अधिक... का डर, जो तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता है और तुम्हारे पास शक्ति नहीं है कि तुम उससे अपनी रक्षा कर सको। यह बात दयनीय है, पर है यह पूरी तरह मनुष्य का दोष।

परन्तु यदि मनुष्य सचमुच पशुओं के प्रेम का अधिकारी हो तो वह प्रेम विस्मय और सुरक्षा के भावों से बना होगा। यह बहुत अच्छी चीज़ है : यह सुरक्षा का भाव : कोई ऐसी चीज़ जो तुम्हारी रक्षा कर सकती है, तुम्हें जिस चीज़ की ज़रूरत हो वह तुम्हें दे सकती है और जिसके पास तुम हमेशा आश्रय पा सकते हो।

पशुओं में एकदम प्रारम्भिक मन होता है। मनुष्यों की तरह उन्हें निरन्तर विचार तंग नहीं किया करते। उदाहरण के लिए, तुम उनके साथ भलाई करो तो उनमें सहज कृतज्ञता का अनुभव होता है, जब कि मनुष्य सौ में से अठ्ठानवे बार यह सोचने लगता है कि इस तरह भलाई करने में व्यक्ति का क्या स्वार्थ हो सकता है। यह मानसिक क्रिया की दुर्दशाओं में से एक है। पशु इससे मुक्त हैं, तुम उनके साथ भलाई करो तो वे सहज रूप में कृतज्ञ होते हैं। और

अप्रैल 2005

उन्हें विश्वास होता है। तो उसका प्रेम इन चीज़ों से बना होता है और वह बहुत प्रबल आसक्ति का रूप ले लेता है, तुम्हारे निकट रहने की अप्रतिरोध्य आवश्यकता के रूप में।

कुछ और चीज़ भी है। अगर मालिक सचमुच अच्छा हो और जानवर वफ़ादार हो तो उनमें चैत्य और प्राणिक शक्तियों का आदान-प्रदान होता है जो जानवर के लिए एक अद्भुत चीज़ है और उसे बहुत तीव्र हर्ष प्राप्त होता है। जब वे इस तरह से तुम्हारे बहुत नज़दीक रहना चाहते हैं, जब तुम उन्हें अपने पास रखते हो तो अन्दर से वही स्पन्दन होता है। तुम उन्हें जो शक्ति देते हो—स्नेह का बल, कोमल संरक्षण आदि—उन्हें वे अनुभव करते हैं और इससे उनके अन्दर गहरा स्नेह पैदा होता है। कुछ उच्चतर पशुओं में, जैसे कुत्ते, हाथी और घोड़ों तक में, यह बहुत आसानी से भक्ति की एक विलक्षण आवश्यकता को पैदा करता है (और यह मन के तर्क-वितर्कों द्वारा और दलीलों के द्वारा विकृत नहीं होता)। वह बहुत सहज और अपने तत्त्व में बहुत शुद्ध होता है—बहुत ही सुन्दर।

मन की क्रियाओं ने अपने प्रारम्भिक रूप में, अपनी पहली अभिव्यक्ति में बहुत-सी चीज़ें बिगाड़ दी हैं जो पहले बहुत अच्छी थीं।

स्वभावतः, यदि मनुष्य ज्यादा ऊंचे स्तर पर उठे और अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे तो चीज़ें ज्यादा मूल्यवान् बन सकती हैं। लेकिन इन दोनों के बीच एक मार्ग है जिसमें मनुष्य बुद्धि का बहुत ही गंवारू और निम्न कोटि का उपयोग करता है। वह उसे हिसाब-किताब का, दूसरों पर अधिकार जमाने का, छलने का यंत्र बना लेता है और तब यह बहुत भद्दी चीज़ बन जाती है। मैंने अपने जीवन में ऐसे जानवरों को देखा है जिन्हें मैंने बहुत से मनुष्यों से बहुत ऊंचा माना था, क्योंकि उनमें वह गन्दा हिसाब-किताब, औरों को धोखा देकर लाभ उठाने का भाव बिलकुल न था।

प्राणिक भावनाएं, प्रेम इत्यादि

मधुर मां, ऐसा क्यों होता है कि हम पहली दृष्टि में ही कुछ के प्रति आकर्षित हो जाते हैं और दूसरों के प्रति हटाव अनुभव करते हैं?

सामान्यतः यह प्राणिक सादृश्य एवं समानताओं पर आधारित होता है, किसी और चीज़ पर नहीं। कुछ प्राणिक स्पन्दन परस्पर-अनुकूल होते हैं और कुछ नहीं होते। सामान्यतः यही बात होती है, और कुछ नहीं। यह प्राणिक रसायन-विद्या है।

इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए व्यक्ति को बहुत गहरी और बहुत ही स्पष्टदर्शी चेतना में स्थित होना चाहिए। चैत्य चेतना पर आधारित एक ऐसा आन्तरिक बोध होता है जो हमें जता देता है कि किन लोगों की अभीप्सा और उद्देश्य हमारे जैसे हैं और कौन मार्ग पर हमारे संगी हो सकते हैं और वह बोध तुम्हें यह स्पष्ट दृष्टि भी प्रदान करता है कि किन लोगों का मार्ग बहुत भिन्न है, या किनमें ऐसी शक्तियां हैं जो तुम्हारे लिए विरोधी और तुम्हारी प्रगति में हानि पहुंचानेवाली हो सकती हैं। पर इस बोध को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अनन्य भाव से अपनी आध्यात्मिक उन्नति एवं सर्वांगीण सिद्धि में ही निमग्न रहना चाहिये। किन्तु ऐसा प्रायः होता नहीं। और सामान्यतः, जब व्यक्ति को यह अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है तो इसका परिणाम आकर्षण या विकर्षण नहीं होता, बल्कि यह एक, यूं कह सकते हैं कि अत्यन्त "वस्तुगत" ज्ञान होता है, और एक प्रकार की आन्तरिक निश्चयता होती है जो तुम्हें आकर्षणों या विकर्षणों द्वारा नहीं, वरन् शान्ति और विवेक से काम करने के लिए प्रेरित करती है।

*

प्राणिक संवेग एकदम से भिन्न प्रकृति के होते हैं—वे बहुत स्पष्ट, बहुत यथार्थ होते हैं, तुम उन्हें स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त कर सकते हो, वे उग्र होते हैं, साधारणतः वे तुम्हें एक तीव्रता, अचंचलता और कभी-कभी एक महान् सन्तोष से भर देते हैं। और फिर इसके विपरीत चीज़ भी समान शक्ति के साथ आती है। इसलिए, बहुत से लोग सोचते हैं—हम यह पहले ही कई बार कह चुके हैं—वे सोचते हैं कि वे प्रेम का अनुभव तभी करते हैं जब वह इस तरह का हो, जब वह प्राण में हो, जब वह प्राण की सभी क्रियाओं, इस समस्त तीव्रता, इस उग्रता, इस यथार्थता, इस चमक-दमक के साथ, इस तड़क-भड़क के साथ आये। और जब इसका अभाव होता है तो वे कहते हैं : “ओह, यह प्रेम नहीं है।”

और वस्तुतः, इसी तरह प्रेम विकृत होता है : फिर वह प्रेम नहीं रह जाता, उसमें आवेश का आरम्भ हो जाता है। और मनुष्यों में यह भूल प्रायः सर्वव्यापक होती है।

कुछ लोग बहुत शुद्ध, बहुत उच्च, बहुत निःस्वार्थ चैत्य प्रेम से भरे होते हैं, लेकिन वे उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते और समझते हैं कि वे ठण्डे, शुष्क और प्रेमहीन हैं क्योंकि उनमें प्राणिक स्पन्दन का यह मिश्रण नहीं होता। क्योंकि उनके लिए प्रेम का आरम्भ और अन्त इसी स्पन्दन में होता है।

और चूँकि यह स्पन्दन बहुत ही अस्थिर होता है जिसमें अवसाद और सन्तोष दोनों में ही सभी तरह की गतियां, प्रतिक्रियाएं और उग्रताएं होती हैं, इसलिए ऐसे लोगों के लिए प्रेम क्षणभंगुर होता है, उनके जीवन में प्रेम के कुछ क्षण होते हैं। वह कुछ घण्टे रह सकता है और फिर नीरस और सपाट बन जाता है और वे सोचते हैं कि प्रेम ने उन्हें छोड़ दिया है।

जैसा कि मैंने कहा, कुछ लोग इससे एकदम परे होते हैं, वे उसे

इस तरीके से नियंत्रित कर सकते हैं कि वह और किसी चीज़ के साथ न मिले, उनके अन्दर ऐसा चैत्य प्रेम होता है जो आत्म-विस्मृति, आत्म-दान, अनुकम्पा, उदारता, जीवन की उदात्तता से भरपूर होता है। यह तादात्म्य की महान् शक्ति है। तो, इनमें से अधिकतर यही सोचते हैं कि वे ठण्डे या तटस्थ हैं—वे बहुत अच्छे लोग होते हैं, लेकिन वे प्रेम नहीं करते—और कभी-कभी वे अपने-आप भी नहीं जानते। मैं ऐसे लोगों को जानती हूँ जो यह सोचते थे कि उनके अन्दर प्रेम नहीं है क्योंकि उनमें यह प्राणिक स्पन्दन नहीं था। साधारणतः लोग जब संवेगों के बारे में कहते हैं तो वे प्राणिक संवेगों की बात करते हैं। लेकिन एक दूसरी तरह का संवेग भी है जो इससे अनन्तगुना उच्चकोटि का है और अपने-आपको उसी तरीके से अभिव्यक्त नहीं करता। उसमें उतनी ही तीव्रता तो होती है लेकिन ऐसी तीव्रता जो नियंत्रण में होती है, अन्तर्निहित, घनीभूत, एकाग्र होती है, और यह विलक्षण रूप से गतिशील शक्ति होती है।

*

सेक्स को तुम पूरी तरह तभी मिटा सकते हो जब निम्न गोलाध से निकलकर उच्चतर में पहुँच जाओ। सेक्स प्रकृति की निचली गतिविधियों की चीज़ है और जबतक तुम उस प्रकृति में बने रहोगे, ये गतिविधियाँ तुम्हारे अंदर यांत्रिक रूप से चलती रहेंगी।

*

प्रेम लैंगिक संभोग नहीं है।

प्रेम प्राणिक आकर्षण और आदान-प्रदान नहीं है।

प्रेम स्नेह के लिए हृदय की भूख नहीं है।

प्रेम 'एकमेव' से आया शक्तिशाली स्पन्दन है और केवल बहुत

अप्रैल 2005

शुद्ध और मजबूत व्यक्ति ही उसे पाने और अभिव्यक्त करने के योग्य होते हैं।

सोसायटी समाचार

२१ फरवरी २००५—श्रीमां का जन्मदिन आश्रम में तथा सोसायटी के कई केन्द्रों में मनाया गया। इस दिन माताजी का, उनके फोटो सहित, यह सन्देश बांटा गया :

“तुम्हारे और मेरे बीच एक विशेष वैयक्तिक सम्बन्ध है, उन सबके साथ जो श्रीअरविन्द और मेरी शिक्षा की ओर मुड़े हुए हैं—और यह अच्छी तरह जानी हुई बात है कि यहां दूरी का महत्व नहीं है, तुम चाहे फ्रांस में हो,—तुम चाहे दुनिया के किसी दूसरे छोर में हो या फिर पाण्डिचेरी में, यह सम्बन्ध हमेशा सच्चा और जीवन्त रहता है।”

शाखाओं और केन्द्रों के समाचार

मथुरा (उ. प्र.) केन्द्र ने 'A Blueprint of Education for the Emerging Child' विषय पर २५ तथा २६ दिसम्बर २००४ को एक सम्मेलन का आयोजन किया। लखनऊ (उ. प्र.) में २ जनवरी २००५ को 'श्रीअरविन्द श्रीमां पुस्तकालय' का उद्घाटन श्रीमती विमला गुप्त ने किया। दालतौनगंज (झारखण्ड) केन्द्र ने अपनी १३वीं जयन्ती १४ जनवरी को मनायी। पोरबंदर (गुजरात) केन्द्र ने नवम्बर २००४ को तीन दिवसीय युवा शिविर का संचालन किया। वडोदरा (गुजरात) में, गुजरात के केन्द्रों का ३३ वां वार्षिक

सम्मेलन १ से ३ जनवरी तक हुआ। बेंगलोर (कर्णाटक) के जे. पी. नगर में कर्णाटक के केन्द्रों का वार्षिक सम्मेलन ३ जनवरी को हुआ। नैरोबी (युगाण्डा) केन्द्र ने, २१ नवम्बर २००४ को श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा प्रकाशित २२०० लघु पुस्तिकाएं नैरोबी के 'Upper Hill Boys' School' और 'State House Girls' School' में रोटरी क्लब और Y.M.C.A. के सौजन्य से भेंट कीं।

श्रीअरविन्द सोसायटी ने श्रीअरविन्द के प्रकाश में श्रीमद्भगवद्गीता का अद्भुत सी.डी. (C.D.) निकाला है। इस मल्टीमीडिया सी.डी. (C.D.) में गीता के सभी ७०० श्लोक विधिवत् तरीके से गाये गये हैं, सबका हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनुवाद है। साथ ही, श्रीअरविन्द के 'एसेज़ ऑन द गीता' का सम्पूर्ण पाठ भी है। सैकड़ों पेंटिंग्स तथा चित्रों के साथ इसे सचमुच प्रशंसनीय रूप से सुन्दर बनाया गया है।

यह सी. डी. (C.D.) न केवल आध्यात्मिक जिज्ञासुओं, दार्शनिकों, शोध-कर्ताओं के लिए परम उपयोगी है बल्कि उन सभी के लिए दर्शनीय है जो गीता के सारतत्त्व को जानना चाहते हैं, उसके सच्चे आध्यात्मिक अर्थ को समझना चाहते हैं।

टाइम्स मल्टीमीडिया देश-विदेश में इसका विक्रय कर रहा है। उनकी सभी शाखाओं में यह उपलब्ध है। इसका दाम ९९९ रु. है। (पैकिंग इत्यादि व्यय अतिरिक्त) इसे स्प्लैण्डर, ऑरो सर्विस (Splendour, Auro Service, 16 Goubert Avenue, Pondicherry--605001) से भी प्राप्त किया जा सकता है।

दूरभाष संख्याएं हैं : ०४१३-२२२४८२७ / २३३६३९८

ई मेल—splendour@sriaurobindosociety.org

और अधिक जानकारी के लिए कृपया Splendour से सीधा पत्र-व्यवहार करें।

सूचना

पुरोधा और अग्निशिखा के लिए शुल्क भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखिये —

१. मनीऑर्डर-फॉर्म टाइप करके न भेजें। यह फॉर्म पर छपी लकीरों के बीच ऐसा घपला जाता है कि पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है। हाथ से लिखना ठीक है।

२. तमिलनाडु में हिन्दी पढ़नेवाले, विशेषतः डाक-विभाग में हिन्दी जाननेवाले बहुत कम हैं। अतः मनीऑर्डर-फॉर्म या पत्र का पता अंग्रेजी में ही लिखें।

३. मनीऑर्डर-फॉर्म के सम्पर्क-स्थान पर यह जरूर लिखें :

(क) यह धन किसलिए, किस पत्रिका के लिए और कितने समय के लिए भेजा जा रहा है।

(ख) अपना नाम व पूरा पता पिनकोड सहित साफ-साफ पढ़े जा सकनेवाले बड़े अक्षरों में (अंग्रेजी में) लिखें।

(ग) अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

४. पता बदल जाये तो उसकी सूचना तुरन्त दें। अन्यथा पत्रिकाएं लोट-लौट आती हैं।

५. मनीऑर्डर या डी. डी. या चैक पुरोधा एवं अग्निशिखा के नाम ही भेजें, आश्रम के नाम नहीं।

६. पत्रिका के लिफाफे पर आपके पते के ऊपर आपकी ग्राहक-संख्या और शुल्क समाप्त होने की तारीख लिखी रहती है।

७. पत्रिका प्राप्त न होने की सूचना एक मास प्रतीक्षा के बाद अपने डाकखाने से जांच-पड़ताल कर हमें तुरन्त सूचित करें। देर से सूचना प्राप्त होने पर कई बार वह अंक भेजना संभव नहीं होता।

८. धैर्य से लिखें, अक्षर स्पष्ट हों यह जरूरी है।

पुरोधा हर महीने की १० तथा ११ तारीख को भेजी जाती है।

अग्निशिखा हर महीने की २५ तथा २६ तारीख को भेजी जाती है।

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनूं श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनूं (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमां के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिए सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगाकर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

श्री चन्द्र प्रकाश खेतान

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर

मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला

पो०- झुंझुनूं - ३३३००१ (राजस्थान)

टेलीफोन - (०१५९२) २३५६१५

e-mail: srimaa@vsnl.com

URL: WWW.sadlec.org

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

UNESCO INSTITUTE, INTERNATIONAL INSTITUTE OF
EDUCATION PLANNING (PARIS, FRANCE), STATE INSTITUTE
OF EDUCATIONAL MANAGEMENT AND TRAINING U.P.

के सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश का सर्वोत्तम आदर्श शिक्षण संस्थान

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com



Sharp Tongue

Central
Gurukul Kangri University
(U.A.)
Haridwar

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

मई २००५

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां	१
‘सम्पादकीय’ : शुभ या अशुभ	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		५
श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष :		
निष्कर्ष	नीरदवरण	१०
वाणी का संयम (श्रीमां के वचन)		
लोग बेकार बातें क्यों करते हैं ?		१६
उच्चारित शब्दों के विभिन्न रूप		१९
शब्दों के बिना सञ्चार		२९
नीरव रहना सीखें		३१
सर्जनात्मक शब्द		३३
सोसायटी समाचार		३५

कृपया पृ. ३७ पर सूचना अवश्य पढ़ें

श्रीमां द्वारा दिये गये पुष्पों के आध्यात्मिक अर्थ
मुख पृष्ठ—तेज ज़बान (दुर्भाग्यवश प्रायः यह चलती है)
आवरण चार—सर्जनात्मक शब्द (केवल भगवान् का ही होता है)
हिन्दी—गुलदाऊदी
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वान्ने प्रति जागृहि

सन्देश

From the standpoint of Yoga it is not so much what you do but how you do it that matters most.

The Mother

योग के दृष्टिकोण से तुम जो करते हो वह नहीं बल्कि तुम कैसे करते हो वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

—श्रीमां

*

आध्यात्मिक जीवन के दृष्टिकोण से तुम जो करते हो उसका सबसे अधिक महत्त्व नहीं है। महत्त्व है तुम जिस तरह करते हो उसका और उस चेतना का जो तुम उसमें लगाते हो। भगवान् को हमेशा याद रखो और तुम जो कुछ करोगे वह 'भागवत उपस्थिति' की अभिव्यक्ति होगा।

जब तुम्हारे सभी कर्म भगवान् को समर्पित हों तब ऐसी कोई क्रियाएं न रहेंगी जो उच्च हों अथवा निम्न हों। सबका समान रूप से महत्त्व होगा—उन्हें समर्पण द्वारा दिया गया मूल्य।

—श्रीमां

‘सम्पादकीय’ :

शुभ या अशुभ

कच्छ में भयङ्कर भूकम्प हुआ, लोग हजारों की सङ्ख्या में मृत्यु-मुख में चले गये। चारों ओर घबराहट, दुःख फैल गया, लेकिन साथ-साथ ऐसी प्राकृतिक समस्याओं से जूझने का साहस भी देश-विदेश के लोगों में जाग उठा किन्तु... देश-देशान्तर से आयी सहायता का ठीक उपयोग हो पाये उसके पहले ही दूध के उफान की तरह लोगों का उत्साह उड़ गया। लोग फिर से सो गये!!

दूसरे वर्ष ओड़िसा में छोटा प्रलय आया। गांव, घर और मनुष्यों को अपने साथ ले भागा। फिर से लोग दौड़ पड़े सहायता करने, कुछ काम हुआ भी किन्तु फिर से वही ढाक के तीन पात...। लोग सो गये उसी सुखद नींद में।

शायद प्रकृति या पृथ्वी मानव के आलस्य और लापरवाही से कुपित हो गयी थी और आ गया सुनामी जिसने सारे एशिया को झकझोर दिया। बेचारे छोटे-से अण्डमान और निकोबार उन क्रुद्ध लहरों और भूकम्प से बच न पाये। इस बार सारे संसार में जागृति आ गयी। अभी तक लोग सहायता करने उत्तर से दक्षिण तक दौड़े हुए आ रहे हैं। यूरोप और अमरीका भी इस भयङ्कर परिस्थिति से लोगों को बचाने चले आ रहे हैं। मुझे श्रीअरविन्द की एक कविता याद आ रही है : “इस आकस्मिक भूमण्डल पर हमें यूं ही अपनी क्षमता से परे एक महत् कार्य करने के लिए छोड़ नहीं दिया गया है। नियति की उलझनभरी अव्यवस्था के ऊपर और मृत्यु की, पतन की कटुता के ऊपर हम अपने जीवन पर उस दिव्य हस्त का स्पर्श अनुभव करते हैं।”

मई 2005

सचमुच इस बार जो जागरण हुआ है, वह उस कृपा के कारण है। मनुष्यों में जो स्नेह, अनुकम्पा और उदारता की त्रिवेणी उतर रही है वह भी उसी कृपा की द्योतक है कि मनुष्य थोड़ी प्रगति कर रहा है।

इस नव जागरण का एक अच्छा उदाहरण देखें। कुछ समय पहले अफ्रीका में जो शुभ कार्य शुरू हुआ है उसका वर्णन सुनें— अभी अमरीका से एक सज्जन आये थे, उनका नाम है हमीद। अपने उच्च पद को छोड़कर हमीद अफ्रीका में तीस वर्ष से चल रहे युद्ध के कारण तन्ज़ानिया में आये स्त्री-पुरुषों और बालक-शरणार्थियों की सहायता करने वहां गये थे। वहां उनकी दुरवस्था देखकर हमीद का दिल पसीज उठा। शरणार्थी बच्चों के शरीर पर कपड़े नहीं थे, भोजन के भी लाले पड़ते थे क्योंकि ये लोग शिकारी थे, लेकिन सरकार ने शिकार करने पर पाबन्दी लगा दी थी। रहने के लिए कंटीले तार से घिरा चौकोर स्थान—घर—था और छत के लिए मोटे गत्ते लगा दिये गये थे। हमीद को बच्चों से बड़ी आशा है, वे कहते हैं कि बच्चे ही हमारा भविष्य हैं इसलिए उन्होंने सब बच्चों को इकट्ठा किया और उनसे पूछा कि वे क्या चाहते हैं। सब बच्चों ने आपस में सलाह करके कहा कि वे खाने में मांस चाहते हैं। हमीद कुछ देर तक सोचते रहे फिर बोले, “तुममें से हर एक को दो सेण्ट लाने होंगे।” बच्चे तैयार हो गये क्योंकि जब वहां सैलानी आते थे तो बच्चे उनकी कार साफ कर दिया करते थे और सैलानी उन्हें प्रायः दो सेण्ट दे दिया करते थे। दूसरे ही दिन बच्चे कुल मिलाकर छत्तीस सेण्ट ले आये। हमीद ने अपनी ओर से कुछ सेण्ट जोड़ दिये और उन्होंने लगभग दो दर्जन अण्डे लाकर उन्हें दे दिये। कुछ समय बाद हमीद ने जाकर देखा तो बच्चों ने बताया कि उन्होंने आधे अण्डे खाये और आधों से चूज़े निकलने का इन्तजार किया।

उनसे अण्डों को बढ़ाते-बढ़ाते अब उनके पास दो सौ मुर्गियां हैं। अब वे कुछ अण्डे बेचते भी हैं तो उनके पास पैसा इकट्ठा होने लगा है। तब हमीद ने पूछा, "अब क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा, "हम तरकारी के बीज बोने के लिए थोड़ी जमीन चाहते हैं।" हमीद ने थोड़ी जमीन खरीदकर उन्हें तरकारियों के बीज दिये। कई महीनों के बाद जाकर देखा तो हमीद का दिल बाग-बाग हो गया लहलहाता हरियाली को देखकर। उन्होंने देखा कि बच्चे तरकारी बेचते भी हैं और अपने लिये पकाते भी हैं।

तो यह किस्से-कहानी-सी घटना कितनी मार्मिक है। हमीद ने पैसे नहीं दिये बल्कि चीजें दीं ताकि बच्चे अपनी मेहनत से कमा पाएं और आत्मनिर्भर हो पायें।

भारत में भी अब कुछ ऐसे ही दल बन गये हैं जो गांवों में जा-जाकर सहायता करते हैं, किन्तु अगर वे लोग भी हमीद की तरह उन्हें आवश्यक चीजें देकर उन्हें उनका उपयोग करना सिखा दें, आत्मनिर्भर होने में उनकी मदद करें तो यह सच्ची सहायता होगी।

इस समय हमें कमर कसकर काम करना होगा क्योंकि, श्रीअरविन्द जैसा कहते हैं, इस समय जैसा कपट, मिथ्यात्व और अन्धकार इकट्ठा हुआ है वैसा पहले नहीं हुआ था और इसीलिए ये अत्यन्त बलवान् हो गये हैं। अगर हम रहस्यवादियों और पैगम्बरों के दावे को अस्वीकार कर दें कि ऐसी परिस्थिति दिव्य अभिव्यक्ति के अवतरण का संकेत है और अवतरण न भी हो फिर भी उसका यह अर्थ नहीं होता कि कपट, मिथ्यात्व और अन्धकार की विजय होगी। शायद कुछ समय हमें ऐसा एहसास हो सकता है जैसा दूसरे विश्व-युद्ध के समय कई लोगों को हुआ था कि प्रकाश पर अन्धकार की विजय होगी।

जैसा कि श्रीअरविन्द ने लिखा है, हमें यह जानना, अनुभव

मई 2005

करना होगा कि वह दिव्य वरद हस्त हमेशा हमारे साथ हमारा मार्गदर्शन करने, हमें सान्त्वना देने और शक्ति देने के लिए रहता है।

जहां राष्ट्र की, भारत की परिस्थिति की बात है तो प्रत्येक व्यक्ति को न केवल अपने लिए बल्कि अपने राष्ट्र के लिए प्रार्थना और कार्य करना चाहिये क्योंकि आखिर भारत क्या है? भारतवासियों का सम्मिलित व्यक्तित्व और मां भारती का दिव्य रूप!

काश, भारत में असङ्ख्य हमीद उठ खड़े होते! होंगे न?

फिर यह सब देखकर हम सुनामी को अशुभ मानेंगे या शुभ?

—अनुबेन

दैनन्दिनी

मई

1. अपने विश्वास को बनाये रखो, अगर यह तुम्हारे जीवन को बनाने में सहायता करे, लेकिन यह भी जानो कि यह केवल एक विश्वास है, दूसरे विश्वास भी तुम्हारे विश्वास के जितने अच्छे और सच हैं।
2. सहन करना श्रेष्ठ भावों से भरपूर होना है; इसका स्थान पूर्ण समझ को लेना चाहिये।
3. प्रभो, तेरे निकट होने के लिए, तेरे योग्य बनने के लिए, व्यक्ति को अपमान के चषक-पर-चषक खाली करने होंगे और फिर भी अपमानित नहीं अनुभव करना होगा। व्यक्ति का अपमान उसे सचमुच मुक्त करता और केवल तेरा बनने के लिए तैयार करता है।

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar (U.A.)

४. हममें से हर एक के अन्दर बहुत-से 'व्यक्तित्व' होते हैं। अगर ये व्यक्तित्व मेल खायें, एक-दूसरे के पूरक हों, तो इनसे मनुष्य एक समृद्ध और जटिल "व्यक्ति" बनता है। लेकिन सामान्यतः यह नहीं होता। ये व्यक्तित्व एक-दूसरे के साथ मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिए उनमें से एक कुछ प्रगति करना, अधिकाधिक पूर्ण बनना, चीजों का अधिक गहरा ज्ञान पाना, अधिक-से अधिक चरितार्थ करना और सत्ता की पूर्णता की ओर बढ़ना चाहता है तो हो सकता है दूसरा, जहांतक हो सके, केवल मौज-मजा करना चाहता है। अगर व्यक्तित्व मेल न खायें तो जीवन असङ्गत होगा।
५. सफल (सामञ्जस्य व्यक्तित्व पाने में) होने के लिए तुम्हें सचेतन रूप से चैत्य पुरुष को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर अन्य व्यक्तित्वों को व्यवस्थित करना और उनमें सामञ्जस्य लाना चाहिये। सच्चा सामञ्जस्य और आन्तरिक व्यवस्था ऐसे ही सतत प्रयास का परिणाम होती है।
६. अगर तुमने कोई ऐसा काम किया है जो तुम्हें नहीं करना चाहिये था, तो तुम्हें स्वयं अपने सामने उसे स्वीकार करना चाहिये; अगर तुम्हारे अन्दर कोई असराहनीय गतिविधि उठी हो तो तुम्हें उसकी ओर सीधा देखकर अपने-आपसे कहना चाहिये, "यह अच्छा नहीं था, यह घृणास्पद था।"
७. बालक बहुत छोटी उम्र से ही सतर्कता के साथ अपने-आपको परखना शुरू कर दे, ईमानदारी के साथ अपना निरीक्षण करे, ताकि वह न तो अपने-आपको धोखा दे, न ही दूसरों को धोखा दे, तो यह उसकी आदत बन जायेगी और वह बाद के बहुत सारे सङ्घर्षों से बच जायेगा।
८. तुम्हें स्वयं पर इतना काबू होना चाहिये कि तुम बच्चे को

मई 2005

कभी न डांटो, चाहे उससे बहुत कीमती और प्रिय वस्तु भी क्यों न टूट जाये। तुम्हें पूछना चाहिये, "कैसे किया, क्या हुआ", ताकि अगली बार वह सावधान रहे। तुम देखोगे कि बच्चा तुम्हें धोखा देने के बदले तुम्हारे प्रति सच्चा और निष्कपट होगा।

९. तुम्हें बच्चे को इतना समझाना है कि सत्ता में एक आभिजात्य, एक महान् शुद्धता, सौन्दर्य के लिए महान् प्रेम होता है जो इतना शक्तिशाली होता है कि अधिक-से-अधिक धूर्त और अपराधी व्यक्ति भी सचमुच सुन्दर, वीरतापूर्ण या निःस्वार्थ कार्य को स्वीकार करने को बाधित होता है।
१०. मेरे ख्याल से किसी के लिए वफादार और ईमानदार हुए बिना पूरी तरह से सच्चा और निष्कपट बनना बहुत ही कठिन है।
११. अपनी चैत्य सत्ता को पाने का अर्थ है एक तरह का दृढ़ विश्वास, चैत्य सत्ता के अस्तित्व पर श्रद्धा।
१२. लक्ष्य का होना पर्याप्त नहीं है। हमेशा अपनी गतिविधियों के मूल में जाने की कोशिश करते हुए लक्ष्य को पाने का सङ्कल्प होना चाहिये।
१३. आत्म-प्रभुत्व का अर्थ है अपने और अपनी गतिविधि के बारे में सचेतन होना, वही करना जिसे करने का तुमने निश्चय किया है, वह नहीं जिसे दूसरे तुमसे करवाना चाहते हैं।
१४. कठिनाइयों से भागना उन्हें पार करने या उनपर विजय पाने का तरीका नहीं है। अगर तुम दुश्मन से दूर भागो तो उसे हरा नहीं पाओगे; लेकिन उसे तुम्हें हराने का पूरा अवसर मिलेगा।
१५. श्रद्धा हो तो व्यक्ति कुछ भी, कुछ भी कर सकता है। लेकिन

- वह शुद्ध श्रद्धा होनी चाहिये, उसमें व्यक्तिगत प्रतिक्रिया या इच्छा का मिश्रण नहीं होना चाहिये।
१६. सपने तुम्हारी चेतना की वर्तमान अवस्था बता सकते हैं, और साथ-ही-साथ यह भी दिखा सकते हैं कि अवचेतन में चीजें कैसे मिलती हैं, कौन से पार्थिव प्रभाव होते हैं, वे कैसी छाप छोड़ जाते हैं। यह अध्ययन करने का बहुत ही रुचिकर विषय है।
१७. सोने से पहले अगर तुम अपने-आपको बहुत ही धीरे से शिथिल छोड़ दो तो सोते हुए तुम्हें महान् आनन्द मिलेगा। अगर तुम तनावभरी स्नायुओं के साथ सोओगे तो तुम्हारी नींद बहुत अशान्त होगी और रात में तुम कई करवटें बदलोगे।
१८. सबसे पहली चीज यह दृढ़ना है कि वह क्या है जिसे चरितार्थ करने के लिए तुम हो, तुम्हें कौन-सी भूमिका निभानी है, तुम्हारा विशेष उद्देश्य क्या है, वे क्षमताएं या गुण कौन-से हैं जिन्हें तुम्हें अभिव्यक्त करना है।
१९. जबतक तुम अपनी सत्ता के सत्य को नहीं पा लेते तबतक तुम उस सच्ची चीज को जानने की आशा कैसे कर सकते हो जिसे तुम्हें चरितार्थ करना है?
२०. भगवान् हर जगह, हर चीज में हैं। तुम्हें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये, क्षण भर के लिए भी यह न भूलना चाहिये।
२१. पूर्ण निष्कपटता, पूर्ण ईमानदारी और तुम जो कुछ करो उसमें गरिमा का भाव, ताकि तुम चीज को उसी तरह करो जिस तरह करना चाहिये।
२२. लोग तुम्हारे बारे में जो द्वेषपूर्ण बेवकूफियां कहते हैं अगर तुम उनसे परेशान, उद्विग्न या हतोत्साह हो जाते हो तो तुम पथपर बहुत आगे न बढ़ पाओगे।

मई 2005

२३. सोने से पहले कोई मन्त्र या शब्द जपना या प्रार्थना करना अच्छा है।
२४. अब चलो काम पर।
धैर्य, सहिष्णुता, पूर्ण समता और निरपेक्ष श्रद्धा के साथ।
२५. तुम्हारे लिए बस एक ही रास्ता है। वह है पूर्ण, समग्र और बिना शर्त के समर्पण का।
२६. मेरा मतलब है, न केवल अपनी क्रियाओं, कर्म, महत्वाकाङ्क्षाओं को छोड़ देना बल्कि अपने सभी भावों को भी छोड़ देना; यानी तुम जो करते हो, तुम जो हो, वह सब ऐकान्तिक रूप से भगवान् के लिए हो।
२७. एक बार तुम सभी बाहरी सत्ताओं और चीजों की आसक्ति छोड़ दो, तो तुम तुरन्त अपने हृदय में उस परम उपस्थिति, उस परम शक्ति, उस परम कृपा का अनुभव करते हो जो हमेशा तुम्हारे साथ होती हैं।
२८. हर क्षण यह जानने के लिए कि क्या करना चाहिये, कैसे करना चाहिये, बाहर सहारा ढूँढ़ने की जगह अगर तुम अन्दर, भागवत ज्ञान पर एकाग्र होओ और प्रार्थना करो, स्वयं जो कुछ हो, उसे दे दो, जो कुछ करो पूर्णता पाने के लिए करो, तो तुम अनुभव करोगे कि सहारा मौजूद है, रास्ता दिखा रहा है।
२९. कोई समस्या आये तो उससे युद्ध करने की इच्छा के स्थान पर तुम उसे परम प्रज्ञा के हवाले कर दो—कि वह सभी दुर्भावनाओं, गलतफ़हमियों, बुरी प्रतिक्रियाओं के साथ जो उचित है, वह करे।
३०. अगर तुम्हारा मन उत्तेजित रहे, परस्पर विरोधी शक्तियों का क्षेत्र रहे तो तुम प्रगति नहीं कर सकते।

३१. किसी उद्देश्य की विजय के लिए हिंसा कभी बहुत अच्छा साधन नहीं होती। कोई अन्याय द्वारा न्याय, घृणा द्वारा सामंजस्य प्राप्त करने की आशा कैसे कर सकता है भला?

श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष (निष्कर्ष)

श्रीअरविन्द के योग से अपरिचित लोग उनके आत्म-बलिदान के जो अभूतपूर्व परिणाम हुए उन्हें समझ न पायेंगे। जिस उच्च स्तर को श्रीअरविन्द 'प्रकाश का मन' कहते थे वह उनके देह-त्याग के साथ-साथ यहां चरितार्थ हो गया था। अतिमानस पहले ही उतर चुका था—बहुत पहले, वह मन के अन्दर और प्राण तक में उतर चुका था। भौतिक क्षेत्र में भी वह श्रीअरविन्द तथा श्रीमां—दोनों के द्वारा परोक्ष रूप से काम कर रहा था। अब प्रश्न यह था कि भौतिक स्तर पर अतिमानस किस तरह सीधा, प्रत्यक्ष रूप में काम कर पायेगा? श्रीअरविन्द ने कहा था कि यह तभी सम्भव होगा जब भौतिक मानस अतिमानसिक ज्योति को स्वीकार और ग्रहण कर पायेगा। भौतिक मन ही अति-स्थूल भौतिक स्तर पर सीधा कार्य करने योग्य यन्त्र है। यह जो भौतिक मन है यही अतिमानसिक ज्योति को स्वीकार कर सकता है और उसीको श्रीअरविन्द 'प्रकाश का मन' कहते हैं। श्रीअरविन्द की समकक्ष सहयोगी माताजी ही थीं, वे ही दिव्य प्रकाश को ग्रहण करने योग्य थीं। चूंकि वे जानते थे कि उनके कार्य को माताजी आगे बढ़ा सकेंगी इसीलिए श्रीअरविन्द ने

मई 2005

अपनी आहुति दे दी। इस आहुति का एक और प्रभाव भी हुआ जिसे हम श्रीअरविन्द की दिव्यदृष्टि और दूरदृष्टि मान सकते हैं। वह यह था कि “माताजी के नेतृत्व में गुरु के आत्म-विलोपन के बाद आश्रम निस्तेज होने की जगह चमत्कारिक रूप से उछलता हुआ आगे बढ़ रहा है।” इस प्रस्थान के पहले, हालांकि श्रीअरविन्द एकान्तवास करते थे फिर भी उनका प्रचण्ड व्यक्तित्व सारे आश्रम पर छाया रहता था। अब तो जैसा मैंने कहा, चित्र एकदम अलग है। हम देख सकते हैं कि अब संसार माताजी के निकट आ रहा है, उन्हें दिव्य माता के रूप में स्वीकार कर रहा है, उन्हें उस शक्ति के रूप में देख रहा है जो शासन करती है, मार्गदर्शन देती है, रक्षा करती तथा बचाती है। श्रीअरविन्द यही चाहते थे और जब से उन्होंने माताजी को आश्रम का उत्तरदायित्व दिया, तब से वे यही चाहते थे कि उनके अतिमानसिक योग का आधार माताजी ही रहें। उनके अभूतपूर्व आत्म-बलिदान से यह सम्भव हुआ और वह प्रगति तेजी से प्रभावशाली हो गयी क्योंकि श्रीअरविन्द की दृष्टि में यही अनुकूल था। उन्होंने कहा था कि उनका स्वभाव परदे के पीछे कार्य करने का था—वैसे ही जैसे परम प्रभु मनुष्यों और शक्तियों को—उनके जाने बिना—प्रेरित करते हैं। उनका राजनैतिक जीवन भी केवल अल्पकाल को छोड़ कर परदे के पीछे ही रहा था और उनका पोंण्डिचेरी-निवास का काल भी इसी सत्य का साक्षी है। इसी तरह उनकी अन्तिम निवृत्ति भी उनके स्वभाव की मनोवृत्ति के अनुरूप ही थी—और वह था उनके स्वभाव का चरम बिन्दु। श्रीअरविन्द की इस पराकाष्ठा ने माताजी को एकदम सामने ला खड़ा किया। अब भी वे वहीं खड़ी हैं और दिव्य शक्ति की भूमिका निभा रही हैं। जैसा उन्होंने कहा है, वे श्रीअरविन्द का कार्य कर रही हैं। श्रीअरविन्द ने भारत की स्वाधीनता-दिवस पर दिये अपने सन्देश में जिस अन्तिम

स्वप्न का उल्लेख किया था, वे उसे पृथ्वी पर मूर्त रूप देने का कार्य कर रही हैं। इन सब कार्यों में अब भी श्रीअरविन्द पीछे रहकर उनकी सहायता कर रहे हैं। माताजी ने 'बुलेटिन' में लिखा है कि श्रीअरविन्द ने गुह्य जगत् में जो भगीरथ कार्य किया है उसके कारण भौतिक क्षेत्र में रूपान्तर का कार्य कुछ सरल हो रहा है। विशेष रूप से राजनैतिक क्षेत्र में भी हम उनके संसारव्यापी कार्य को देख सकते हैं; एक उदाहरण है, बांग्लादेश की मुक्ति के समय उनका गुह्य विद्या द्वारा किया गया योगदान। फिर से हम याद कर लें उनकी भविष्यवाणी "विभाजन को जाना ही होगा।" इस दिशा में उनकी शक्ति ने काम करना छोड़ा नहीं है। इसके विपरीत, उनकी शक्ति पूरे वेग से भविष्यवाणी को चरितार्थ करने में लगी हुई है। वैश्व स्तर पर उन्होंने जो कार्य किये थे उनसे हम परिचित हैं ही। भारत भर में और पश्चिम में भी उनकी दिव्य उपस्थिति और सक्रिय हस्तक्षेप के प्रत्यक्ष प्रमाण कई भक्तों और अनुयायियों द्वारा मिलते हैं। हम उनकी आवाज सुनते हैं, उनका स्पर्श महसूस करते हैं, उनकी सुरक्षा और उनका सक्रिय हस्तक्षेप देखते हैं। माताजी ने मुझसे एक बार नहीं, कई बार कहा है कि उन्होंने श्रीअरविन्द को हमेशा मेरे ऊपर कार्य करते हुए देखा है। अपने व्यक्तिगत जीवन में श्रीअरविन्द के आश्चर्यजनक सीधे हस्तक्षेप का अनुभव मैंने किया है। उस हस्तक्षेप ने मुझे सङ्कटपूर्ण परिस्थिति से बचा लिया नहीं तो मेरी साधना खतरे में पड़ जाती। मैंने 'श्रीअरविन्द के साथ वार्तालाप' भाग १ में उनकी एक और सूक्ष्म सहायता का उदाहरण दिया है। तीसरा उदाहरण है जब आश्रम आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहा था तो माताजी ने श्रीअरविन्द के सामने उसकी चर्चा की। उन्होंने कहा, "प्रद्योत^१ से कहो।" और यह जानी-मानी बात है कि प्रद्योत आश्रम

^१ आश्रम के भूतपूर्व न्यासी।

मई 2005

के लिए बहुत धन लाते थे। यह सब होते हुए भी हम यह स्वीकार करते हैं कि उनकी भौतिक उपस्थिति का अभाव हमें बहुत ही खलता है। खासकर उनकी अनुपस्थिति उन्हें खलती है जिन्हें उन्होंने व्यक्तिगत घनिष्ठता से अपने निकट खींच लिया था। उनके साथ रहने और उनकी सेवा करने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त था, वे भी उनकी अनुपस्थिति के प्रभाव को बहुत महसूस करते हैं। मैं उनका यह वाक्य कभी भूल न पाऊंगा जब उन्होंने कहा था, "नीरद मेरे लिए डॉक्टर थोड़े ही है; वह तो मेरी सेवा करने आया है।" मेरी सेवा कितनी तुच्छ थी, यह मैं ही जानता हूँ। कभी-कभी हम लोग उन दिनों की याद करते हैं, जो कभी न लौटेंगे। तब हम सब स्मृति के हिंडोले पर झूलते हुए सुख और दुःख दोनों का अनुभव करते हैं। मेरा उनके साथ जो अद्वितीय पत्र-व्यवहार हुआ था उसे याद करके मेरा हृदय दुःख, अभाव और एक तरह की टीसभरी रिक्तता से भर जाता है। श्रीअरविन्द के प्रस्थान के कुछ दिनों के बाद माताजी ने साधकों के एक दल से पूछा कि उनकी अनुपस्थिति से सबसे बड़ी क्षति क्या हुई है। उत्तर भिन्न-भिन्न थे किन्तु माताजी ने कहा, "नहीं, ये नहीं, सबसे बड़ी क्षति तो यह है कि उनसे परामर्श करने के लिए मैं उनके पास जा नहीं सकती। उदाहरण के लिए, अगर वे यहां होते तो मैं उनके पास जाकर वर्षा रोकने के लिए कहती।" (उस समय जोरों से वर्षा हो रही थी) एक साधक ने कहा, "किन्तु माताजी, आप अपने अन्दर उन्हें देख सकती हैं।" माताजी चुप रहीं। इस प्रश्न के बारे में एक छोटी-सी अटकल है मेरी। किसी गम्भीर प्रश्न को सुलझाने के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है। माताजी हमेशा व्यस्त रहती थीं और अब भी हैं। जब कभी एकाग्रता की आवश्यकता होती तब माताजी श्रीअरविन्द पर निर्भर रहतीं। ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात तो यह

लगती है कि कई समस्याओं का हल सशरीर आध्यात्मिक शक्ति ज्यादा अच्छी तरह निकाल पाती है। उन समस्याओं को शरीरमुक्त आध्यात्मिक शक्ति सुलझा नहीं पाती, वह अशरीरी शक्ति जीवन को अत्यधिक बाह्य समस्याओं को सुलझा नहीं पाती। अब हम देख सकते हैं कि हमारी कठिनाइयों, समस्याओं को माताजी का सीधा हस्तक्षेप कितनी जल्दी सुलझा देता है। माताजी ने श्रीअरविन्द को अनुपस्थिति के विषय में जो प्रश्न पूछा था उसके बारे में माताजी का सङ्केत किसी अधिक हृदय-विदारक स्थिति की ओर था। यह भौतिक उपस्थिति और सूक्ष्म उपस्थिति के भेद की ओर सङ्केत था। जब-जब जटिल और पेचीदा स्थिति सामने आती थी, किसी निर्णायक अवस्था का सामना करना पड़ता था, तब-तब माताजी चुपचाप आकर उसका सारा भार श्रीअरविन्द के चरणों में रख देती थीं इस पूर्ण विश्वास के साथ कि वे जरूर उसे सुलझा देंगे और समस्या हमेशा सुलझ जाती थी। श्रीअरविन्द के जैसे महिमामण्डित अवतार की अनिर्वचनीय उपस्थिति, ऐसे अवतार की उपस्थिति जो मानव शरीर का रूपान्तर और उसके दिव्यीकरण का ध्येय लेकर आये थे, ऐसे अद्वितीय अवतार की उपस्थिति हमारे पार्थिव जीवन के लिए स्वर्ग का आशीर्वाद थी। हम ऐसा अनुभव न करते तो अवतार की सार्थकता ही लुप्त हो जाती। आन्तरिक और बाह्य भौतिक दिव्यीकरण का कार्य माताजी के शरीर में तेजी से चल रहा था। इसी कारण यह आशा बनी रही कि निकट भविष्य में ही हम देख पायेंगे कि श्रीअरविन्द का बलिदान, उनका प्राणोत्सर्ग व्यर्थ न था बल्कि उसका परिणाम होगा एक महिमामण्डित शरीर का प्रकटन, यानी भौतिक तत्त्व पर अतिमानसिक विजय की परिपूर्ति।

हम यह कहकर इस विषय को समाप्त कर सकते हैं कि श्रीअरविन्द का परम उद्देश्य सफल हो गया। उनके प्रस्थान के बावजूद

मई 200

उनकी स
रूप प्रक
तत्त्व का
श्रीअ
भाव बहु

यह काव

महत्
यानी
करो
कह
अभि

मई 2005

उनकी साधना परिपूर्ण और सार्थक हुई, अर्थात् माताजी का दिव्य रूप प्रकट हो गया क्योंकि माताजी के उस रूप के बिना भौतिक तत्व का दिव्यीकरण असम्भव होता।

श्रीअरविन्द ने अपनी कविता "एक देवता का श्रम" में यह भाव बहुत सुन्दर भाषा में अभिव्यक्त किया है।

"मैंने संजोये हैं अपने सपने रुपहले आकाश में
स्वर्णिम और नीलाभ बीच
आच्छादित कर उन्हें कोमलता से, छोड़ दिया वहीं।
मेरे रत्नजड़ित स्वप्न तेरे।"

यह काव्य इन पंक्तियों से समाप्त होता है :

"मैं अपने सपने को रख दूंगा
उनकी रजत लहरों में
स्वर्ण औ' नील परिधान में
पृथ्वी पर विचरेगा साकार
और सुन्दर
जीवन्त सत्य तुम्हारा।"

—नीरदवरण

महत्त्वपूर्ण चीज है 'उपस्थिति' की चेतना को बनाये रखना, यानी, उपस्थिति ठोस होनी चाहिये और तब तुम जो कुछ करो और जो कुछ कहो—तुम चाहे जो करो और चाहे जो कहो—उसके द्वारा भागवत उपस्थिति ही अपने-आपको अभिव्यक्त करती है।

—श्रीमां

वाणी का संयम

(श्रीमां के वचन)

लोग बेकार बातें क्यों करते हैं?

हम हमेशा बेकार बातें क्यों करते रहते हैं? क्यों हम बेकार बातें करते हैं?

लोग बेकार बातें क्यों करते हैं? हां, शायद इसलिये कि मनुष्य शब्दों का प्रयोग कर सकने के कारण सहज रूप से घमण्ड करता है। पृथ्वी पर बातें करनेवाला वह पहला प्राणी है, जो स्पष्ट उच्चारित आवाज निकाल सकता है। इसलिए यह एक प्रकार का... मनुष्य एक बच्चे जैसा है जिसके हाथ में एक नया खिलौना है जिसके साथ खेलने में उसे बहुत मजा आता है। पृथ्वी पर मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो स्पष्ट ध्वनियां कर सकता है, इसलिए वह उनके साथ खेलता है, है न... मैं सोचती हूं कि बात ऐसी ही है...।

और फिर, सारी मूर्खता है...। मैंने यह भी कहा है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो तभी सोचना शुरू करते हैं जब वे बोलें...। जब वे बोलते नहीं तो सोचते भी नहीं! उनमें चुपचाप सोचने की क्षमता नहीं होती, इसलिए उन्हें बातें करने की आदत हो जाती है। हम जितने अधिक विकसित हों, उतने अधिक बुद्धिमान् होते हैं और अपने-आपको अभिव्यक्त करने की जरूरत कम पड़ती है। हमेशा निम्नतर स्तर पर ही बातें करने की जरूरत पड़ती है। और सचमुच, जो व्यक्ति बहुत सचेतन, मन और बुद्धि की दृष्टि से बहुत विकसित होता है, वह जरूरत पड़ने पर ही बात करता है। वह बेकार की बातें नहीं करता। सामाजिक सोपान में ऐसा है...। सोपान के सबसे

मई 2005

निचले स्तर के लोगों को लो : वे सबसे ज्यादा बातूनी होते हैं, वे बातें करने में ही अपना समय बिता देते हैं। वे अपने-आपको रोक नहीं सकते ! उनके साथ जो भी हो वे उसे तुरन्त शब्दों में उतार देते हैं। और आदमी जितना विकसित हो, क्रम-विकास के उच्चतर सोपान पर हो, उतनी ही बोलने की आवश्यकता कम होती है।

इसके दो कारण हैं : एक तो यह कि चूंकि यह एक नयी क्षमता है जिसका सहज रूप से दूसरी क्षमताओं के प्रति आकर्षण होता है; दूसरा यह कि वह तुम्हें अपने विचार के बारे में सचेतन होने में मदद करता है। नहीं तो तुम सोचते नहीं, अगर तुम अपने विचार को शब्दों में, ऊंचे स्वर में प्रकट न करो, तो तुम उसे सूत्रबद्ध नहीं कर सकते...। सिवाय उन लोगों के जो पेशे से ही बातूनी हैं—यानी, जिन्हें वाद-विवाद या राजनैतिक भाषणों में भाग लेने की, या कक्षा लेने की या पाठ पढ़ाने की आदत है—इन लोगों के सिवाय जो, स्पष्टतः, एक ही साथ बुद्धिजीवी और बातूनी हो सकते हैं, सामान्य रूप से, लोग जितने अधिक बातूनी होते हैं, बुद्धि में उतने ही कम विकसित होते हैं !

बातें करने से बचने के लिए क्या करना चाहिये ?

सोचो ! बस, जरा ज्यादा सोचो। अगर बोलने से पहले तुम विचार करने की आदत डाल लो, तो तुम जितना बोलते हो उससे कम-से-कम आधा बोलने से बच जाओगे। बात करने से पहले सोचो और तुम्हें जो बिलकुल अनिवार्य लगे वही बोलो—तब तुम बहुत जल्दी देखोगे कि बहुत कम चीजें अनिवार्य हैं, भौतिक दृष्टि के अतिरिक्त, काम में, जब तुम किसी के साथ काम कर रहे हो और बोलने के लिए विवश होते हो “यह करो”, “मुझे वह दो”, या “इस तरह” या

“उस तरह”। और वहां भी, कम-से-कम बोला जा सकता है।

*

ऐसे लोग होते हैं जो सोचते तो एक बात हैं और कहते दूसरी हैं। यह कैसे घटित होता है?

हां, ऐसा बहुधा घटित होता है। वे सोचते एक बात हैं और जब वे बोलना आरम्भ करते हैं तो वे ठीक उससे उल्टा बोलते हैं। यदि विचार जीभ को संयमित करे तो बहुत-सी मूर्खताओं से बचा जा सकता है। तुम संयम खो बैठते हो और आवेश में आकर हर तरह की निरर्थक बात बोल जाते हो; उस समय जीभ एक मशीन की तरह होती है और केवल बोलने के सुख के लिए बोलना आरम्भ कर देती है। वह सब निरर्थक-सा लगता है, पर यही सारे समय होता रहता है, बहुत थोड़े-से लोग ही ऐसे होते हैं जो इससे बचते हैं। दूसरे तो सब प्रकार की बातें कहते हैं और पूछते हैं, “यह सब मैंने क्यों कहा?” उन्हें इतना भी मालूम नहीं होता कि वे क्यों कहते हैं। मैं कुछ लोगों को जानती हूं जो सदा वही बात कहते हैं जिसे दूसरा सुनना चाहता है। जिस व्यक्ति के साथ वे बातचीत करते हैं वह अपने-आपसे कहता है, “यह व्यक्ति मुझसे यह या वह बात कहेगा,” अथवा वह शंकित होकर कहता है, “मैं आशा करता हूं कि यह मुझसे वह बात नहीं कहेगा,” और दूसरा एक छोटी-सी कठपुतली की तरह, वही कहना आरम्भ कर देता है, बहुत शान्ति के साथ और यह जाने बिना कहता है कि आखिर वह क्यों कह रहा है!

क्या ऐसा सङ्कल्प-शक्ति के अभाव के कारण होता है?

नहीं, यह एक प्रकार की मानसिक विकृति है। उसमें सङ्कल्प-शक्ति

मई 2005

अधिक नहीं होती। यदि सङ्कल्प-शक्ति हस्तक्षेप करती तो यह सब शायद कम निरर्थक होता।

नहीं, ये सब मानसिक क्रियाएं हैं, मन की रचना हैं, एक मानसिक शक्ति है जो सारे समय चञ्चल रहती है, जो आती है और जाती है, पिंजरे में बन्द गिलहरी की तरह जो बार-बार चारों ओर दौड़ती है और यह नहीं जानती कि क्यों दौड़ रही है।

तो फिर, क्या यह एक विश्वव्यापी खेल है?

नहीं, बहुत विश्वव्यापी नहीं है; यह केवल मानवजाति में है, यह बहुत मानवीय है। भला कितने मनुष्यों में अपना कोई निजी विचार होता है? मुझे पूरा विश्वास है कि साधारण मानसिक बनावटवाली सामान्य मनुष्यजाति में एक व्यक्ति भी नहीं है। भला कितने मनुष्यों का विचार उनके चिन्तन का परिणाम होता है? बहुत कम लोगों का, और यदि उनका विचार ऐसा होता है तो वे भयानक रूप में कठोर या अलौकिक बुद्धिमान् या स्वेच्छाचारी या प्रभुत्वशाली माने जाते हैं—वे सब प्रकार की प्रशंसाओं से ढके रहते हैं! और ऐसा केवल इस कारण होता है कि उनके चिन्तन की एक सुनिश्चित शैली होती है।

उच्चारित शब्दों के विभिन्न रूप

कुछ विरल अपवादों को छोड़कर, साधारणतः, खुली बकवास के विरुद्ध पूर्ण मौन को ही खड़ा किया जाता है। लेकिन वाणी का नियन्त्रण करना पूर्ण मौन की अपेक्षा ज्यादा महान् और फलप्रद तपस्या है।

धरती पर मनुष्य ही पहला प्राणी है जो स्पष्ट रूप में उच्चारित ध्वनि का उपयोग करता है। वह सचमुच इस पर गर्व करता है और बिना सोचे-समझे, बिना विवेक के इसका उपयोग करता है। संसार उसके शब्दों के कोलाहल से बहरा हो गया है, इसलिए कभी-कभी मनुष्य को वनस्पति-जगत् की समस्वर नीरवता का अभाव खलता है।

यह एक जाना हुआ तथ्य है कि मानसिक शक्ति जितनी कम होगी बोलने की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी। उदाहरण के लिए, आदिम जातियां हैं, ऐसे लोग हैं जिन्हें कोई शिक्षा नहीं मिली, वे बोले बिना सोच ही नहीं सकते। तुम उन्हें कम या अधिक धीमी आवाज में बुदबुदाते सुन सकते हो। अपनी विचार-धारा का अनुसरण करने के लिए उनके पास बस, यही एक तरीका है, बोले हुए शब्दों के बिना उनके विचार कोई रूप ही नहीं ले सकते।

काफी बड़ी सङ्ख्या में ऐसे लोग हैं, पढ़े-लिखों में भी, जिनकी मानसिक शक्ति बहुत दुर्बल होती है और वे कहने से पहले यह नहीं जानते कि उन्हें क्या कहना है। उनके साथ बातचीत बहुत उबानेवाली हो जाती है और उसका अन्त ही नहीं आता। लेकिन जैसे-जैसे वे बोलते हैं उनके विचार अधिकाधिक स्पष्ट और यथार्थ होते जाते हैं और इस कारण वे एक ही बात को बार-बार, बार-बार दोहराने के लिए बाधित होते हैं ताकि वे उसे ज्यादा-ज्यादा ठीक तरह कह सकें। कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे पहले से तैयार करना पड़ता है और अगर उन्हें अचानक कहीं कुछ बोलना पड़ जाये तो वे हिचकिचाने, हकलाने लगते हैं, क्योंकि वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसके लिए उपयुक्त शब्दों को क्रमबद्ध करने का उन्हें समय ही नहीं मिला।

और अन्त में, कुछ जन्मजात वक्ता होते हैं जिन्हें भाषण-कला

मई 2005

पर पूरा अधिकार होता है। वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे कहने और भली-भाँति कहने के लिए उन्हें सहज रूप से शब्द मिलते जाते हैं और वे अच्छी तरह बोलते हैं।

फिर भी, यह सब मानसिक तपस्या की दृष्टि से बकवास की गिनती में आ जाता है। बकवास से मेरा मतलब है ऐसा कोई भी शब्द बोलना जो एकदम अनिवार्य न हो। तुम पूछ सकते हो, इसका निर्णय कैसे किया जाये? इसके लिए हमें सामान्य रूप में बोले गये सभी शब्दों का वर्गीकरण करना होगा।

१—सबसे पहले, भौतिक क्षेत्र में, वे सब शब्द हैं जो भौतिक कारणों से बोले जाते हैं। वे सबसे ज्यादा सङ्ख्या में हैं और सामान्य जीवन में शायद सबसे अधिक उपयोगी भी हैं।

ऐसा लगता है कि शब्दों की एक सतत गूंज हमारे दैनिक रूढ़ कार्य की अनिवार्य सङ्गत बन गयी है। लेकिन फिर अगर तुम शोर को कम-से-कम करने का प्रयत्न करो तो तुम देखना शुरू करोगे कि बहुत-सी चीजें नीरवता में ज्यादा अच्छी और ज्यादा जल्दी की जा सकती हैं। और इससे आन्तरिक शान्ति और एकाग्रता बनाये रखने में भी सहायता मिलती है।

अगर तुम अकेले नहीं हो, बल्कि औरों के साथ रहते हो तो ऐसी आदत डालो कि अपने-आपको सारे समय ऊंची आवाज में उच्चारित शब्दों में अभिव्यक्त न करते रहो, तब तुम देखोगे कि तुम्हारे और औरों के बीच थोड़ी-थोड़ी करके एक आन्तरिक समझ पैदा हो गयी है; तब तुम कम-से-कम शब्दों में या बिना शब्दों के ही एक-दूसरे से सम्पर्क रख सकोगे। यह बाहरी मौन आन्तरिक शान्ति के लिए बहुत अनुकूल होता है और अगर तुम्हारे अन्दर सद्भावना और सतत अभीप्सा हैं तो तुम प्रगति के लिए सहायक वातावरण पैदा कर सकोगे।

२—सार्वजनिक जीवन में, उन शब्दों के साथ जिनका सम्बन्ध जीविका और भौतिक व्यापार से होता है, वे शब्द भी जुड़ जाते हैं जो संवेदनों, भावनाओं और आवेगों को व्यक्त करते हैं। इस क्षेत्र में बाहरी मौन की आदत बहुमूल्य सहायक सिद्ध होती है। क्योंकि जब तुम पर संवेदनों या भावनाओं का हमला होता है तो मौन की यही आदत तुम्हें सोचने का अवकाश देती है और अगर जरूरत हो तो तुम्हें अपने संवेदनों और भावों को शब्दों में प्रकट करने से पहले ही रोक लेती है। इस तरह कितने सारे लड़ाई-झगड़ों को रोका जा सकता है; तुम कितनी बार उन मनोवैज्ञानिक विपदाओं से बच सकते हो जो बहुत बार वाणी के असंयम का परिणाम होती हैं।

तुम इस हद तक भले न जाओ, पर तुम्हें हमेशा अपने उच्चारित शब्दों पर संयम रखना चाहिये। तुम्हें अपनी जीभ को क्रोध, उग्रता या रोष के अधीन कभी काम न करने देना चाहिये। उससे आनेवाले परिणामों में केवल झगड़ा ही बुरा नहीं है, बल्कि यह तथ्य भी है कि तुम अपनी जीभ के द्वारा वातावरण में बुरे भाव प्रक्षिप्त होने देते हो, क्योंकि ध्वनि के स्पन्दनों से ज्यादा छुतहा कोई और चीज नहीं है। इन गतियों को अपने-आपको प्रकट करने का अवसर देकर तुम उन्हें अपने अन्दर और दूसरों के अन्दर स्थायी बनाते हो।

३—सबसे अधिक अवाञ्छनीय प्रकार की बकवास में उस बातचीत को भी गिनना चाहिये जो तुम औरों के बारे में करते हो।

जबतक तुम संरक्षक, अध्यापक या विभागाध्यक्ष के रूप में कुछ लोगों के लिए उत्तरदायी नहीं हो तबतक दूसरे क्या करते हैं और क्या नहीं करते इसके साथ तुम्हारा कोई मतलब नहीं। तुम्हें औरों के बारे में बातचीत करने से, उनके बारे में राय देने से, या वे क्या करते हैं या दूसरे उनके बारे में क्या सोचते या कहते हैं, इस विषय में कुछ कहने से बचना चाहिये।

मई 2005

हो सकता है कि तुम्हारा काम ही ऐसा हो कि किसी विशेष विभाग या व्यवसाय या सामूहिक कार्य में क्या हो रहा है इसकी सूचना देना तुम्हारा कर्तव्य हो जाता है। ऐसी हालत में, तुम्हारी रिपोर्ट शुद्ध रूप से काम के साथ ही सम्बद्ध होनी चाहिये, किसी व्यक्तिगत मामले से नहीं। वह हर हालत में पूरी तरह वस्तुनिष्ठ होनी चाहिये। तुम्हें उसके अन्दर व्यक्तिगत प्रतिक्रिया, पसन्द, सहानुभूति या विरोध को प्रवेश न करने देना चाहिये। विशेष रूप से, तुम्हें जो काम सौंपा गया है उसमें किसी निजी तुच्छ वैरभाव को कभी न मिलने दो।

हर हालत में, सामान्य रूप से, दूसरों के बारे में तुम जितना ही कम बोलो—उनकी प्रशंसा में भी—उतना ही अच्छा। अपने अन्दर क्या हो रहा है उसे ही ठीक-ठीक जानना इतना मुश्किल है—फिर भला निश्चित रूप से यह कैसे जाना जाये कि दूसरों में क्या हो रहा है इसलिए किसी भी व्यक्ति के बारे में कोई अटल निर्णय न सुना दो। वह यदि दुर्भावनापूर्ण न भी हुआ तो मूर्खतापूर्ण तो अवश्य होगा...

४—ऐसे सब शब्द भी हैं जो विचार, सम्मति, मनन और अध्ययन के परिणामों को व्यक्त करने के लिए काम आते हैं। यहां हम बौद्धिक क्षेत्र में हैं और यह सोच सकते हैं कि इस क्षेत्र में मनुष्य ज्यादा समझदार और सन्तुलित होते हैं और यहां कठोर तपस्या कम अनिवार्य है। लेकिन बात ऐसी बिलकुल नहीं है, क्योंकि यहां भी, लोगों ने विचारों और ज्ञान के इस क्षेत्र में भी, विश्वासों की उग्रता, साम्प्रदायिक असहिष्णुता और पसन्द का, आवेग का प्रवेश करा दिया है। अतः, यहां भी व्यक्ति को मानसिक तपस्या का आश्रय लेना चाहिये और उन विचारों के आदान-प्रदान से सावधानी के साथ बचना चाहिये जिनकी समाप्ति ऐसे तर्क-वितर्क में होती है

जो अधिकतर कटु और प्रायः हमेशा ही निरर्थक होते हैं, और उन मतभेदों से भी बचना चाहिये जिनका अन्त गर्मागर्म बहस, यहाँतक कि झगड़े में भी होता है। यह सब मन की सङ्कीर्णता से आता है और जब आदमी मानसिक क्षेत्र में काफी ऊँचा उठ जाये तो इसका इलाज आसानी से हो सकता है।

वास्तव में, आदमी जब यह जान जाये कि सूत्रबद्ध विचार उस चीज को कहने का केवल एक ढंग है जो वर्णन से परे है, तो फिर साम्प्रदायिकता असम्भव हो जाती है। हर विचार या भाव में थोड़ा-सा सत्य या सत्य का एक पहलू होता है, पर कोई भी विचार या भाव ऐसा नहीं है जो अपने-आपमें पूर्ण सत्य हो।

चीजों की सापेक्षता का यह भाव, व्यक्ति में सन्तुलन रखने और उसकी बातचीत में गम्भीर संयम बनाये रखने में बहुत सहायक होता है। मैंने एक गुह्यवेत्ता को, जिसे कुछ ज्ञान प्राप्त था, यह कहते हुए सुना था : "कोई भी चीज तत्त्वतः अशुभ या बुरी नहीं है, केवल ऐसी चीजें हैं जो अपने स्थान पर नहीं हैं। हर एक चीज को उसके अपने स्थान पर रख दो और तुम सामञ्जस्यपूर्ण संसार पा जाओगे।"

फिर भी, कार्य की दृष्टि से, विचार का मूल्य उसकी व्यावहारिक शक्ति के अनुपात में होता है। यह सच है कि यह शक्ति जिन लोगों में काम करती है उनके अनुसार भिन्न होती है। एक भाव-विशेष जो एक व्यक्ति में महान् प्रेरक शक्ति रखता है वही दूसरे में एकदम असफल होता है। लेकिन शक्ति अपने-आपमें सङ्क्रामक है। कुछ भावों में दुनिया का रूपान्तर करने की शक्ति होती है। इन्हीं को व्यक्त करना चाहिये। ये आत्मा के आकाश में पथ-प्रदर्शक नक्षत्र हैं और ये ही धरती को अपनी परम उपलब्धि की ओर ले जाते हैं।

५ — अन्त में, वे सब शब्द हैं जो पढ़ाने के लिए काम में लाये जाते हैं। शब्दों की यह श्रेणी शिशु-विहार से लेकर विश्वविद्यालय

मई 2005

तक फैली है जिसमें मनुष्य के कलात्मक और साहित्यिक सर्जनों का भी समावेश है जो या तो मनोरञ्जक होते हैं या शिक्षाप्रद। इस क्षेत्र में सब कुछ कार्य के मूल्य पर निर्भर करता है और यह विषय इतना बड़ा है कि इसे यहांपर ले सकना सम्भव नहीं है। यह एक तथ्य है कि आजकल शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दिया जा रहा है और नयी-से-नयी वैज्ञानिक खोजों का उपयोग करके उन्हें शिक्षा की सेवा में लगाने का सराहनीय प्रयास हो रहा है। लेकिन सत्य के लिए अभीप्सा करनेवाले के लिए यहां भी तप की जरूरत है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि शिक्षा की प्रक्रिया में हल्की, मनोरञ्जक बल्कि तुच्छ कृतियों को भी स्थान मिलना चाहिये ताकि प्रयास का दबाव कम पड़े और केवल बच्चों को ही नहीं, बड़ों को भी कुछ आसानी हो। एक दृष्टिकोण से यह सच है, लेकिन दुर्भाग्यवश इस मान्यता के कारण चीजों की, एक ऐसी पूरी-की-पूरी श्रेणी को आयात करने का बहाना मिल गया है जो मानव प्रकृति में जो कुछ गंवारू, भद्दा और निम्न कोटि का है उसके खिलने से कम नहीं है। इस मान्यता में अत्यन्त जघन्य प्रवृत्तियों तथा अति हीन रुचियों को अनिवार्य आवश्यकता के रूप में अपना प्रदर्शन करने और अपने-आपको स्थापित करने का अच्छा बहाना मिल जाता है। लेकिन बात ऐसी नहीं है, आदमी कामुक हुए बिना विश्राम कर सकता है, वह लम्पट बने बिना भी अपने-आपको आराम दे सकता है। वह विश्राम कर सकता है, पर अपनी प्रकृति की स्थूल चीजों को उभरने दिये बिना। लेकिन तपस्या की दृष्टि से इन आवश्यकताओं को भी अपनी प्रकृति बदलने की जरूरत है, आराम एक आन्तरिक नीरवता में, विश्राम ध्यान में और शिथिलीकरण आनन्द में बदल जाता है। मन-बहलाव की, काम में आराम की, जीवन के लक्ष्य को कुछ समय के लिए या ज्यादा समय के लिए पूरी तरह भूल जाने की

और साथ ही जीवन के मूल हेतु को भूल जाने की आवश्यकता को बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य नहीं मान लेना चाहिये। यह एक ऐसी दुर्बलता है जिसके आगे मनुष्य अभीप्सा की तीव्रता के अभाव, सङ्कल्प-शक्ति की अस्थिरता, अज्ञान, निश्चेतना और निरुत्साह के कारण झुक जाता है। इन प्रवृत्तियों को न्यायसङ्गत न ठहराओ और शीघ्र ही तुम देखोगे कि ये जरूरी नहीं रही, कुछ समय बाद ये तुम्हारे लिये अरुचिकर, यहांतक कि, अग्राह्य हो जायेंगी। तब मनुष्य की कृतियों का एक छोटा नहीं, बल्कि काफी बड़ा भाग, जो “मन बहलाव” कहलाता है पर सचमुच है नीचे ले जानेवाला, अपना आधार और प्रोत्साहन खो बैठेगा।

६—फिर भी, यह न समझो कि बोले हुए शब्दों का मूल्य बातचीत के विषय पर निर्भर करता है। तुम आध्यात्मिक विषयों पर भी उसी तरह बकवास कर सकते हो जैसे किसी और विषय पर। लेकिन इस प्रकार की बकवास सबसे अधिक भयङ्कर बकवासों में से एक हो सकती है। उदाहरण के लिए, नया साधक जो कुछ थोड़ा-बहुत जानता है उसे औरों में बांटने के लिए बहुत उत्सुक रहता है। लेकिन जैसे-जैसे वह मार्ग पर आगे बढ़ता है उसे अधिकाधिक पता लगता है कि वह बहुत नहीं जानता और औरों को सिखाने का प्रयास करने से पहले उसे अपने ज्ञान के मूल्य के बारे में निश्चित होना चाहिये जबतक कि अन्त में वह बुद्धिमान् न हो जाये और यह अनुभव न करने लगे कि कुछ मिनटों तक उपयोगी बात करने के लिए घण्टों की नीरव एकाग्रता की जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त, आन्तरिक जीवन और आध्यात्मिक साधना के बारे में वाणी के उपयोग पर ज्यादा कठोर अनुशासन रखना होगा और जबतक एकदम आवश्यक ही न हो कुछ न कहा जाये।

७—यह भली-भांति जाना हुआ तथ्य है कि अगर तुम अपनी

मई 2005

अनुभूति में इकट्ठी की गयी शक्ति को, जो तुम्हारी प्रगति को तेज करने के लिए है, क्षण-भर में गायब होते नहीं देखना चाहते तो तुम्हें अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के बारे में कभी न बोलना चाहिये। इसमें केवल एक ही अपवाद हो सकता है—गुरु, जब तुम उनसे अपनी अनुभूति के बारे में कोई व्याख्या चाहो या उसके अर्थ के सम्बन्ध में कोई आदेश चाहो। वास्तव में, तुम केवल अपने गुरु के सामने ही इन चीजों के बारे में बिना किसी भय के बोल सकते हो, क्योंकि केवल गुरु ही अपने ज्ञान द्वारा तुम्हारी अनुभूति के तत्त्वों को तुम्हारी भलाई के लिए नयी चढ़ाई के सोपानों में बदल सकते हैं।

यह सत्य है कि गुरु भी स्वयं अपनी निजी बातों के बारे में इसी तरह नीरवता के नियम के अधीन होते हैं। प्रकृति में हर चीज गतिशील है, अतः जो आगे नहीं बढ़ता वह पीछे हटने के लिए बाधित है। अपने शिष्य की भांति गुरु को भी आगे बढ़ना चाहिये, चाहे उनकी प्रगति उसी स्तर पर न हो। उनके लिए भी अपनी अनुभूति के बारे में बोलना हितकर नहीं है : अनुभूति की गतिशील शक्ति को शब्दों में प्रकट किया जाये तो वह बड़ी हदतक भाप बनकर उड़ जाती है। दूसरी ओर, शिष्यों को अपने अनुभव समझाकर गुरु उनकी समझ और उनकी प्रगति में प्रबल सहायता पहुंचाते हैं। उन्हें अपनी समझ के अनुसार यह जानना होगा कि किस हदतक एक की दूसरे के लिए बलि चढ़ायें। यह तो जानी-मानी बात है कि उनके वर्णन में शेखी या अहम्मन्यता का प्रवेश नहीं होना चाहिये, क्योंकि जरा-सा अभिमान उन्हें गुरु की जगह पाखण्डी बना देगा।

(निष्कर्ष) : रही बात शिष्य की, तो उससे मैं कहूंगी : “हर हालत में अपने गुरु के प्रति निष्ठावान् बने रहो, वे चाहे कोई भी क्यों न हों, तुम जितनी दूर तक जा सको वे तुम्हें उतनी दूर तक ले

जायेंगे। लेकिन अगर तुम्हें भगवान् को ही गुरु के रूप में पाने का सौभाग्य प्राप्त हो तो तुम्हारी उपलब्धि की कोई सीमा न होगी।”

फिर भी, जब भगवान् धरती पर अवतार लेते हैं तो वे भी प्रगति के इस विधान के अधीन होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति के यन्त्र को, भौतिक सत्ता को, जो उनका परिधान होती है, सतत प्रगति की अवस्था में रहना चाहिये और उनकी निजी आत्माभिव्यक्ति का नियन्त्रण करनेवाले विधान एक तरह से धरती की प्रगति के सामान्य विधान से जुड़े रहते हैं। इस तरह सशरीर भगवान् धरती पर तबतक पूर्ण नहीं हो सकते जबतक मनुष्य पूर्णता को समझने और स्वीकार करने के लिए तैयार न हों। ऐसा एक दिन होगा जब मनुष्य सब कुछ भगवान् के प्रति प्रेम के कारण करेंगे, आज की तरह उनके प्रति कर्तव्य मानकर नहीं। तब प्रगति एक प्रयास, और बहुधा सङ्घर्ष होने की जगह एक आनन्द होगी, या यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि प्रगति समस्त सत्ता की निष्ठा के आनन्द के द्वारा होगी, अहङ्कार के प्रतिरोध के दमन के द्वारा नहीं, जिसका अर्थ होता है बहुत प्रयास और कभी-कभी बहुत अधिक दुःख-कष्ट।

अन्त में, मैं तुमसे यह कहूंगी: यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी वाणी सत्य को अभिव्यक्त करे और भागवत शब्द की शक्ति प्राप्त करे तो पहले से मत सोचो कि तुम क्या कहोगे, यह निश्चय न करो कि क्या कहना अच्छा या बुरा होगा, यह हिसाब न लगाओ कि तुम जो कहनेवाले हो उसका क्या प्रभाव होगा। अपने मन में नीरव रहो और ‘सर्व प्रज्ञा’, ‘सर्व ज्ञान’, ‘सर्व चेतना’ के लिए सतत अभीप्सा के सच्चे भाव में स्थिर रहो। तब, अगर तुम्हारी अभीप्सा निष्कपट है, अगर यह चीजों को अच्छी तरह करने और सफल होने की महत्त्वाकाङ्क्षा को छिपाने के लिए एक आवरण नहीं है, अगर वह शुद्ध, सहज और सर्वाङ्गीण है तो तुम सरलता के साथ

मई 2005

बोल सकोगे, वे ही शब्द बोलोगे जो बोले जाने चाहियें, न अधिक, न कम, और उनमें सर्जक शक्ति होगी।

शब्दों के बिना सञ्चार

"अगर तुम अकेले नहीं हो, दूसरों के साथ रहते हो तो तुम ऐसा अभ्यास डालो कि सदा अपने-आपको शब्दों में न उंडेलते रहो, और तुम देखोगे कि धीरे-धीरे तुममें और दूसरों में एक आन्तरिक बोध स्थापित हो गया है, तब तुम कम-से-कम बोलकर या बिना बोले ही एक-दूसरे से सम्पर्क रख सकोगे।"

क्या प्रत्येक अवस्था में, स्थूल वस्तुओं में भी, दो व्यक्तियों के बीच एक आन्तरिक समझ स्थापित की जा सकती है?

हां, शब्द केवल दो मनों के बीच सम्पर्क के साधन हैं। उनका एकमात्र औचित्य यही है। किन्तु यदि मन इतना निर्मल एवं सशक्त हो कि वह शब्दों का प्रयोग किये बिना सम्पर्क कर सके, तो वह यह कार्य कहीं अधिक अच्छे, अधिक स्पष्ट और शुद्ध रूप में कर सकता है। और तब शब्दों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बिल्कुल भौतिक विषयों में भी नहीं?

हां, तुम एक परीक्षण कर सकते हो। उदाहरणार्थ, जब दो व्यक्ति अपने मन एकलय कर लें और उनमें से एक सोचे : "इस वस्तु को वहां नहीं, यहां होना चाहिये," तो दूसरा स्वभावतया ही उठकर उस वस्तु को खोजता है और यथास्थान रख देता है। वह काफी स्पष्टता से उस बात को समझ जाता है, उसे कुछ कहने की आवश्यकता

नहीं पड़ती। अथवा पहला सोचता है : “अब बाहर जाने का समय है” या “मुझे अमुक वस्तु की आवश्यकता है,” तो दूसरा यह सब पूर्णतया ठीक ढंग से समझ जायेगा, उसे कहने की आवश्यकता नहीं होती। इस अवस्था तक पहुंचने से पहले एक बात प्रायः होती है—मैं उन लोगों की बात कर रही हूं जो अपने ऊपर नियन्त्रण रखते हैं और सचेतन होते हैं, इकट्ठे रहते हैं—एक उस प्रश्न का उत्तर देता है जो दूसरे ने मुंह से नहीं निकाला है। वह उसके मन में था, और दूसरा उत्तर देता है : “हां, यह बात ऐसी है; न, वह काम अभी नहीं हुआ।” दूसरे व्यक्ति ने कुछ पूछा नहीं था पर उसने सुन लिया था, समझ लिया था, उसे सन्देश मिल गया था। ऐसा प्रायः होता है, होता है न? और फिर, जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में शब्दों के कहने की आवश्यकता भी पड़े, वहां भी दस शब्दों के स्थान पर एक ही शब्द बोलना काफी होता है, और बाकी बात स्वयं समझ में आ जाती है, जान ली जाती है। और यह सीधा आदान-प्रदान एक ऐसी अनुभूति है जो बड़ी सरलता से प्राप्त की जा सकती है। यदि तुम किसी नये व्यक्ति से बात करते हो और उसके साथ तुम्हारा मानसिक सम्पर्क अधिक नहीं है, तो वह चाहे उन्हीं शब्दों का प्रयोग करे जिन्हें तुम भी एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त करते हो, फिर भी तुम उसे बिलकुल समझ नहीं पाते, मानों उसकी भाषा बूझते ही नहीं। पर कुछ देर बाद, जब तुम उससे कई बार मिल लेते हो, उसके साथ मानसिक रूप में एकलय हो जाते हो, तो तुम एक-दूसरे को समझना शुरू कर देते हो।

नेशिखा
मई 2005

नीरव रहना सीखें

व्यक्तिगत विकास की दृष्टि से और उन लोगों के लिए जो अभी पथ के शुरू में ही हैं, उस बात के बारे में चुप रहना जिसे वे नहीं समझते, उन चीजों में से एक है जो प्रगति में सबसे अधिक सहायक होती है। चुप कैसे रहा जाये यह जानना, केवल बाहरी तौर पर शब्द न बोलना ही नहीं, बल्कि यह जानना कि अन्दर कैसे नीरव रहा जाये, यह जानना कि मन, जैसा कि वह हमेशा करता है, अपनी स्वभावगत ढिठाई के साथ अपने अज्ञान के दावे के साथ घोषणा न करे, समझने में असमर्थ यन्त्र द्वारा समझने की कोशिश न करे, अपनी दुर्बलताओं को पहचाने और बस सहजभाव से चुपचाप स्वयं को खोले, प्रकाश को ग्रहण करने के लिए ठीक मुहूर्त की प्रतीक्षा करे क्योंकि केवल 'प्रकाश', सच्चा प्रकाश ही उसे समझ प्रदान कर सकता है। जो कुछ इसने सीखा है वही सब कुछ नहीं है, जो कुछ निरीक्षण किया है वही सब कुछ नहीं है, जो कुछ जीवन का तथाकथित अनुभव लिया है वही सब कुछ नहीं है, वह तो कुछ और है जो इस सबको पूरी तरह अतिक्रम कर जाता है। इससे पहले कि यह कुछ और—जो 'कृपा' की अभिव्यञ्जना है—उसमें अभिव्यक्त हो, यदि मन बड़ी शान्ति से, बड़ी विनम्रता से अचञ्चल बना रहे, समझने की, और सबसे बढ़कर मूल्याङ्कन करने की कोशिश न करे तो चीजें अधिक तेजी से आगे बढ़ेंगी।

ये सारे शब्द, सारे विचार सिर में जो शोर मचाते हैं वह बहरा बना देनेवाला होता है, वह तुम्हें सत्य को, यदि वह अभिव्यक्त होना चाहे तो, सुनने से रोक देता है।

अचञ्चल और नीरव रहना सीखना...। जब तुम्हारे सामने सुलझाने के लिए कोई समस्या हो तो सब सम्भावनाओं, सब परिणामों,

करणीय या अकरणीय, सब सम्भव चीजों पर दिमाग लड़ाने को जगह यदि तुम सद्भावना की अभीप्सा लिए अचञ्चल बने रह सको, यदि सम्भव हो तो सद्भावना की आवश्यकता लिये, तो बहुत जल्दी समाधान निकल आता है। और क्योंकि तुम नीरव होते हो, इसलिए तुम उसे सुन पाते हो।

जब तुम किसी कठिनाई में फंस जाओ तो इस तरीके को आजमाओ : विक्षुब्ध होने, सब विचारों को उलटने-पलटने, जोर-शोर से समाधान ढूँढ़ने, चिन्ता करने, चिढ़ने, अपने सिर के अन्दर इधर-उधर भागते रहने के बजाय—मेरा मतलब बाह्य रूप से नहीं है, इतनी सामान्य बुद्धि तो तुममें होगी ही कि बाह्य रूप में दौड़-भाग न करो ! वरन्, भीतर, अपने सिर में—अचञ्चल बने रहो। और अपने स्वभाव के अनुसार, उत्कटता के साथ या शान्ति के साथ, तीव्रता के साथ या विस्तार के साथ या इन सबको मिलाकर, प्रकाश की अभ्यर्थना करो और उसके आगमन की प्रतीक्षा करो।

इस तरह पथ काफी छोटा हो जायेगा।

*

मैं समझती हूँ कि यह एक ऐसा अभ्यास है जिसे करने का परामर्श प्रत्येक व्यक्ति को दिया जाना चाहिये कि वह मन को स्थिर, शान्त, यहाँतक कि निश्चल बनाने की चेष्टा करने के लिए प्रतिदिन थोड़ा-सा समय निश्चित कर ले।

... चिन्तन बन्द कर देना अन्तहीन विचारों की लड़ी बुनते जाने से कहीं उच्चतर प्राप्ति है और उसके लिए मन के बहुत अधिक विकास की आवश्यकता होती है।

... न केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि सभी दृष्टिकोणों से कुछ क्षण, कम-से-कम दिन में दो बार, नीरवता प्राप्त करने का

मई 2005

अभ्यास करना सर्वदा ही बहुत अच्छा है, परन्तु वह सच्ची नीरवता होनी चाहिये, केवल बातचीत बन्द करना ही नहीं होना चाहिये। आओ, अब कुछ मिनट हम पूर्णतः नीरव हो जाने की कोशिश करें।

*

यह एक साधारण अनुभव है कि हम जो कुछ कहते हैं उसे प्रायः और ही रूप में समझा या प्रदर्शित किया जाता है...। हम जो कुछ कहते हैं वह सर्वथा स्पष्ट हो फिर भी लोग उसे जिस प्रकार समझते हैं उसे देखकर आदमी चकरा जाता है ! प्रत्येक व्यक्ति उसमें कुछ ऐसी बात देखता है जो कहनेवाले के अभिप्राय से अलग होती है, यहाँतक कि वह उसमें कोई ऐसी चीज जोड़ देता है जो उसके आशय से बिल्कुल उलटी होती है। यदि तुम सच्चे रूप में समझना और इस प्रकार के भ्रम से बचना चाहते हो तो तुम्हें शब्दों की ध्वनि और गति के पीछे जाकर नीरवता में सुनना सीखना चाहिये। यदि तुम नीरवता में सुनोगे तभी तुम ठीक-ठीक सुनोगे, ठीक-ठीक समझोगे। परन्तु जबतक तुम्हारे मस्तिष्क में कोई चीज घूम रही हो और कोलाहल मचा रही हो, तबतक तुम केवल वही समझोगे जो तुम्हारे सिर में घूम रहा है, न कि वह जो तुमसे कहा गया है।

सर्जनात्मक शब्द

मधुर मां, एक फूल है जिसे आपने नाम दिया है "सर्जनात्मक शब्द"। उसका क्या अर्थ है?

श्रीमां ने गुलदाऊदी को यह नाम दिया है।

यह ऐसा शब्द है जो सृजन करता है।

सब प्रकार की परम्पराएं हैं, प्राचीन हिन्दू मान्यता, प्राचीन कैल्डियन मान्यता जिसमें भगवान् अपने 'स्रष्टा' के रूप में, यानी, अपने 'स्रष्टा' रूप में एक शब्द का उच्चारण करते हैं जिसमें सृजन करने की शक्ति होती है। तो यह वही है...। और यही मन्त्र का मूल है। मन्त्र एक उच्चारित शब्द है जिसमें सृजन-शक्ति होती है। एक आवाहन किया जाता है और आवाहन का उत्तर मिलता है, या कोई प्रार्थना की जाती है और प्रार्थना स्वीकृत होती है। यही 'शब्द' है, वह 'शब्द' जो अपनी ध्वनि में... यह केवल भाव नहीं होता, ध्वनि में सर्जक-शक्ति होती है। यह मन्त्र का मूल है, समझे...।

मेरा ख्याल है कि मैं एक बार तुम्हें यह समझा चुकी हूं, उदाहरण के लिए, मैंने तुमसे कहा था कि बिल्कुल यूं ही सरसरी तौर पर बोले गये शब्द, सामान्यतः बिना सोचे-विचारे, बिना कोई महत्त्व दिये बोले गये शब्दों का भी बहुत भलाई करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। मेरा ख्याल है कि मैंने तुमसे "बोंजूर" (फ्रेंच शब्द Bonjour), "सुप्रभात" की बात की थी, कही थी न? जब लोग मिलते और "बोंजूर" कहते हैं, तो यह यान्त्रिक रूप से और बिना सोचे होता है। लेकिन अगर तुम उसमें इस इच्छा को रखो, किसी के लिए शुभ दिन की कामना करते हुए अभीप्सा रखो, तो "सुप्रभात" कहने का एक तरीका होता है जो बहुत प्रभावशाली होता है, उस अवस्था से बहुत ज्यादा प्रभावशाली जिसमें तुम किसी से मिलकर कुछ कहे बिना मन में यह सोचो : "आह, मैं चाहता हूं कि इसके लिए दिन अच्छा हो।" अगर अपने विचार में इस आशा के साथ एक विशेष ढंग से "सुदिन" कहो, तो तुम उसे अधिक ठोस और प्रभावशाली बना सकते हो।

मई 2005

हां तो, शाप के साथ, या गुस्से में कही गयी बुरी बातों के साथ भी ऐसा ही है। इससे तुम उन्हें थप्पड़ लगाने के जितना ही—शायद उससे भी ज्यादा—नुकसान पहुंचा सकते हो। बहुत संवेदनशील लोगों में इसके कारण पेट खराब हो जाता है या उनके दिल में धुकधुकी होने लगती है, क्योंकि तुम अपने शब्द में कोई अशुभ शक्ति डाल देते हो जिसमें विनाश की क्षमता होती है।

बोलना बिलकुल प्रभावहीन नहीं होता। स्वभावतः यह बहुत कुछ हर एक की आन्तरिक शक्ति पर निर्भर होता है। जिन लोगों में बल नहीं है और चेतना नहीं है वे तबतक कुछ नहीं कर सकते जबतक कि भौतिक साधनों का उपयोग न करें। लेकिन जिस हदतक तुम मजबूत हो, विशेषकर जब तुम्हारा प्राण सबल हो, तो तुम जो कुछ कहो उसपर बहुत संयम रखना चाहिये, अन्यथा तुम बिना चाहे, बिना जाने, अज्ञान द्वारा बहुत नुकसान पहुंचा सकते हो।

सोसायटी समाचार

मार्च तथा अप्रैल के महीनों में तीन महत्वपूर्ण दिवसों की जयन्ती मनायी गयी। २९ मार्च १९१४ को श्रीमां फ्रांस से भारत आयी और श्रीअरविन्द से पहली बार इसी दिन मिलीं। ४ अप्रैल १९१०— श्रीअरविन्द पॉण्डिचेरी आये। २४ अप्रैल १९२०— श्रीमां जापान से पॉण्डिचेरी हमेशा के लिए आ गयीं। बाद में यह दिवस चार दर्शन-दिवसों में से एक बन गया।

झारखण्ड राजकीय सभा—झारखण्ड में स्थित श्रीअरविन्द सोसायटी के सभी केन्द्रों तथा शाखाओं की वार्षिक सभा रांची में २२ तथा २३ जनवरी २००५ को हुई।

वडोदरा (गुजरात) शाखा ने २१ से २५ जनवरी तक श्रीअरविन्द निवास में पञ्च-दिवसीय सत्र का आयोजन किया। पॉण्डिचेरी के डॉ. आनन्द रेड्डी इन तीन विषयों पर अंग्रेजी में बोले—कार्य द्वारा साधना, प्रेम द्वारा साधना और ध्यान द्वारा साधना। न्यू जर्सी के डॉ. जगदीश व्यास 'वर्तमान सङ्कटकाल तथा श्रीअरविन्द' विषय पर बोले।

सिलीगुड़ी (प. बं.) शाखा ने ९ जनवरी को श्रीअरविन्द के पवित्र देहावशेष स्थापित करने की पांचवीं जयन्ती मनायी। चित्तूर (आन्ध्र-प्रदेश) केन्द्र ने कैम्फोर्ड अंग्रेजी माध्यम विद्यालय में २१ फरवरी २००५ को एक सभा का आयोजन किया जिसमें अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के सम्बन्ध में काफी बातें बतलायी गयीं। नैरोबी केन्द्र के कुछ लोगों ने १० फरवरी को बच्चों के अस्पताल में जाकर २२०० पुस्तिकाएं बांटीं। **पश्चिम बंगाल राजकीय सभा**—पश्चिम बंगाल के सोसायटी के केन्द्रों तथा शाखाओं की छठी वार्षिक सभा कैनिंग सुन्दरबन केन्द्र में ५ और ६ फरवरी २००५ को हुई। विभिन्न केन्द्रों और शाखाओं से आये लोगों की संख्या २३० थी। श्री गोपाल भट्टाचार्यजी ने इसका सभापतित्व किया। श्री बी. एन. डे ने वार्षिक रिपोर्ट दी।

पॉण्डिचेरी—राष्ट्रीय सङ्गठन के लिए 'अखिल भारत युवा केन्द्र' के वार्षिक सम्मेलन का आयोजन सोसायटी ने ३ से ११ जनवरी २००५ तक किया। यह The Oil and Natural Gas Corporation (ONGC) नयी दिल्ली के तत्त्वावधान में हुआ। १६ से २५ वर्ष की उम्र के ५९ किशोर-किशोरियों ने (२२ लड़कियां, ३७ लड़के) इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। ये भारत के १५ विभिन्न राज्यों से आये थे। श्री विजय, श्री कैवल्य स्मार्त, श्री शिवकुमार तथा युवा-वर्ग के एक दल ने इसका सञ्चालन किया।

सूचना

पुरोधा और अग्निशिखा के लिए शुल्क भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखिये —

१. मनीऑर्डर-फॉर्म टाइप करके न भेजें। यह फॉर्म पर छपी लकीरों के बीच ऐसा घपला जाता है कि पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है। हाथ से लिखना ठीक है।

२. तमिलनाडु में हिन्दी पढ़नेवाले, विशेषतः डाक-विभाग में हिन्दी जाननेवाले बहुत कम हैं। अतः मनीऑर्डर-फॉर्म या पत्र का पता अंग्रेजी में ही लिखें।

३. मनीऑर्डर-फॉर्म के सम्पर्क-स्थान पर यह जरूर लिखें :

(क) यह धन किसलिए, किस पत्रिका के लिए और कितने समय के लिए भेजा जा रहा है।

(ख) अपना नाम व पूरा पता पिनकोड सहित साफ-साफ पढ़े जा सकनेवाले बड़े अक्षरों में (अंग्रेजी में) लिखें।

(ग) अपनी ग्राहक-सङ्ख्या लिखना न भूलें।

४. पता बदल जाये तो उसकी सूचना तुरन्त दें। अन्यथा पत्रिकाएं लौट-लौट आती हैं।

५. मनीऑर्डर या डी. डी. या चैक पुरोधा एवं अग्निशिखा के नाम ही भेजें, आश्रम के नाम नहीं।

६. पत्रिका के लिफाफे पर आपके पते के ऊपर आपकी ग्राहक-सङ्ख्या और शुल्क समाप्त होने की तारीख लिखी रहती है।

७. पत्रिका प्राप्त न होने की सूचना एक मास प्रतीक्षा के बाद अपने डाकखाने से जांच-पड़ताल कर हमें तुरन्त सूचित करें। देर से सूचना प्राप्त होने पर कई बार वह अड्क भेजना सम्भव नहीं होता।

८. धैर्य से लिखें, अक्षर स्पष्ट हों यह जरूरी है।

पुरोधा हर महीने की १० तथा ११ तारीख को भेजी जाती है।

अग्निशिखा हर महीने की २५ तथा २६ तारीख को भेजी जाती है।

पुरोधा तथा अग्निशिखा के हमारे ग्राहकों के लिए
नयी रियायती दरें :

अग्निशिखा		पुरोधा		अग्निशिखा एवं पुरोधा	
वर्ष	दरें		दरें		दरें
	पुरानी	नयी	पुरानी	नयी	पुरानी नयी
१	४०	४०	५०	५०	९० ८५
३	१२०	११०	१५०	१४०	२७० २४०
५	२००	१८०	२५०	२३०	४५० ४००
१०	४००	३५०	५००	४५०	९०० ७५०
२०	८००	६५०	१०००	८५०	१८०० १४५०
२५	१०००	८००	१२५०	१०५०	२२५० १८००

नशिखा

मई 2005

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

UNESCO INSTITUTE, INTERNATIONAL INSTITUTE OF
EDUCATION PLANNING (PARIS, FRANCE), STATE INSTITUTE
OF EDUCATIONAL MANAGEMENT AND TRAINING U.P.
के सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश का सर्वोत्तम आदर्श शिक्षण संस्थान

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी
प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com

महान् रहस्य

Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

[Handwritten signature]



अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जून २००५

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां	१
दैनन्दिनी		२
केवल ध्यान में ही न डूबे रहो	श्रीमां	४
ध्यान का पूरा लाभ उठाओ	श्रीमां	६
महान् रहस्य	श्रीमां	८

कृपया पृ. ३८ पर सूचना अवश्य पढ़ें

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ
अन्धकार के बिना प्रकाश
(अपनी सरलता में सर्वसमर्थ)

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

एक बाहरी कर्म है जिसे हर एक को अपनी क्षमता और व्यक्तिगत पसन्द के अनुसार चुनना होगा। हर एक को अपना स्थान, वाद्य-गोष्ठी में वह स्थान, जिसे केवल वही भर सकता है, खोजना होगा और फिर अपने-आपको पूरी तरह उसके लिए अर्पित कर देना होगा। इस बात को न भूलते हुए कि वह धरती की स्वर-संगति में एक ही स्वर बजा रहा है, लेकिन सारे संगीत के सामञ्जस्य के लिए उसका स्वर ही अनिवार्य है और उसका मूल्य उसके ठीक-ठीक होने पर निर्भर है।

—श्रीमां

दैनन्दिनी

जून

१. नया प्रकाश तुम्हारे विचार और जीवन को प्रकाशित करे, तुम्हारे हृदय पर राज करे, और तुम्हारे कार्यों का मार्ग-दर्शन करे।
२. हम संसार को दिखाना चाहते हैं कि मनुष्य भगवान् का सच्चा सेवक बन सकता है।
३. सभी सच्ची प्रार्थनाओं का उत्तर मिलता है लेकिन उन्हें भौतिक रूप में चरितार्थ होने में समय लग सकता है।
४. वर दो कि मैं तुम्हारा बनूं, पूरी तरह तुम्हारा। तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा प्रकाश और प्रेम समस्त अशुभ से मेरी रक्षा करें।
५. प्रभु हमारे अन्दर कोई चीज तेरे काम में बाधा न दे पाये।
६. प्रभु, तेरा प्रेम इतना महान् है, इतना उदात्त, इतना पवित्र है कि वह हमारी समझ के परे है। हमें उसे घुटने टेककर ग्रहण करना चाहिये, फिर भी तूने उसे इतना मधुर बना दिया है कि हममें सबसे निर्बल भी, एक बच्चा भी तेरे पास आ सकता है।
७. हे मेरे प्रभु, तेरी सहायता और कृपा हो तो फिर डर ही क्या है।
८. प्रभु, तू ही परम सुरक्षा है जो सभी शत्रुओं को हरा देता है।
९. प्रभु, तेरे बिना जीवन विकृति है। तेरे प्रकाश, तेरी चेतना, तेरा सौन्दर्य और तेरी शक्ति के बिना समस्त अस्तित्व एक विकृत और डरावना प्रहसन है।
१०. घृणा को सामञ्जस्य में बदलो।
११. ईर्ष्या को उदारता में बदलो।
१२. अज्ञान को ज्ञान में बदलो।
१३. अन्धकार को प्रकाश में बदलो।
१४. मिथ्यात्व को सत्य में बदलो।

जून 2005

१५. धूर्तता को भलाई में बदलो।
१६. भय को अभय में बदलो।
१७. सन्देह को श्रद्धा में बदलो।
१८. अव्यवस्था को व्यवस्था में बदलो।
१९. पराजय को जय में बदलो।
२०. चैत्य सत्ता मनुष्य की विशेषता है और अगर हम बात की गहराई में उतरें तो यही मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान करती है।
२१. जब तुम ऐसा सपना देखो कि कोई तुम्हारे प्रति निर्दय हो रहा है तो सबसे पहले अपने-आपसे पूछो "उसके प्रति मेरे मन में कोई बुरा विचार तो नहीं आया था?"
२२. अगर तुम्हारे अन्दर कोई बुरा विचार हो जो तुम्हें सताता और परेशान करता हो तो उसे बहुत सतर्कता से, बहुत सावधानी के साथ, अपनी चेतना और संकल्प लगाकर उसे एक कागज पर लिख लो, फिर एकाग्रता के साथ इस संकल्प से फाड़ डालो कि विचार भी इसी तरह फट जाये। इस तरह तुम उससे छूट जाओगे।
२३. तुम्हारी श्रद्धा, निष्कपटता और समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे उतने ही अधिक कृपा और सुरक्षा तुम्हारे साथ होंगी।
(श्रीअरविन्द)
२४. जब दिव्य मां की कृपा और सुरक्षा तुम्हारे साथ हों तो कौन है जो तुम्हें छू सके या तुम्हें किससे डरने की जरूरत है? (श्रीअरविन्द)
२५. दिव्य मां का स्पर्श कठिनाइयों को अवसरों में, असफलता को सफलता में और दुर्बलता को अस्खलित शक्ति में बदल सकता है। (श्रीअरविन्द)
२६. हर व्यक्ति को एक उद्देश्य पूरा करना है, विश्व में उसे एक भूमिका निभानी है। उसे ऐसी भूमिका दी गयी है जिसे उसे वैश्व उद्देश्य के लिए याद करना है और निभाना है।

२७. उस उद्देश्य को जानने के लिए तुम्हें पूरी तरह सच्चा और पक्षपातहीन होना चाहिये। तुम्हें अपने-आपका इस तरह निरीक्षण करना होगा मानों तुम किसी और ही व्यक्ति का निरीक्षण, उसका समालोचना कर रहे हो।
२८. अगर मानव प्रेम अपने-आपको बिना किसी मिश्रण के अभिव्यक्त करे तो वह सर्वशक्तिमान् होगा। दुर्भाग्यवश मानव-प्रेम में अपने-आपके लिए उतना ही प्रेम होता है जितना प्रेम-पात्र के लिए, यह ऐसा प्रेम नहीं है जिसमें तुम अपने-आपको भूल जाओ।
२९. केवल दिव्य सत्य का ही अस्तित्व है, केवल वही अभिव्यक्त किया जायेगा। आगे बढ़ो।
३०. परम प्रभो, परम विजेता ! तेरी विजय हो।

केवल ध्यान में ही न डूबे रहो

अगर तुम कुछ न करो, तो तुम्हें कोई भी अनुभव नहीं हो सकता। सारा जीवन अनुभव का क्षेत्र है। तुम्हारी हर एक गति, तुम्हारा हर एक विचार, तुम्हारा हर काम एक अनुभूति हो सकता है, और उसे अनुभूति होना ही चाहिये, और स्वभावतः काम विशेष रूप से अनुभूति का क्षेत्र है जहां तुम आन्तरिक प्रयास से की गयी सारी प्रगति को प्रयोग में ला सकते हो।

अगर तुम काम किये बिना ध्यान और निदिध्यासन में लगे रहो तो तुम यह नहीं जान पाते कि तुमने प्रगति की है या नहीं। तुम एक भ्रम में, अपनी प्रगति के भ्रम में रह सकते हो, जब कि अगर तुम अपने-आपको काम में लगाओ, तो तुम्हारे काम की सभी परिस्थितियां, औरों के साथ सम्पर्क, भौतिक व्यस्तता, यह सारा अनुभूति का क्षेत्र है ताकि तुम्हें

जून 2005

केवल अपनी प्रगति का ही भान न हो बल्कि तुम्हें यह भी मालूम हो कि अभी कितनी सारी प्रगति करनी बाकी है। अगर तुम अपने-आपमें ही बन्द रहो, कोई काम न करो, तो तुम पूरी तरह आत्म-निष्ठ भ्रान्ति में रह सकते हो, जिस क्षण तुम अपने कार्य को बहिर्मुख करो और दूसरों के साथ, परिस्थितियों और जीवन की चीजों के सम्पर्क में आओ, तो विलकुल तटस्थ भाव से तुम्हें पता लगता है कि तुमने प्रगति की है या नहीं, क्या तुम अधिक शान्त, अधिक सचेतन, अधिक प्रबल, अधिक निस्वार्थ हो या नहीं, क्या तुम्हारे अन्दर अब कोई कामना, कोई पसन्द, कोई कमजोरी, कोई बेईमानी है या नहीं—तुम काम करके इन सबका भान पा सकते हो। लेकिन अगर तुम ध्यान में ही बन्द रहो, तो यह विलकुल व्यक्तिगत चीज है, तुम पूर्ण भ्रान्ति में प्रवेश कर सकते हो और हो सकता है कि उसमें से कभी बाहर न निकलो, और यह मान लो कि तुमने असाधारण चीजें प्राप्त कर ली हैं, जब कि वास्तव में तुम्हें बस, यह लगता ही है, यह भ्रान्ति है कि तुमने यह पा लिया।

*

सक्रिय ध्यान रूपान्तर सिद्ध करने का ध्यान होता है।

साधारणतया लोग सक्रिय ध्यान का अभ्यास नहीं करते। जब वे ध्यान में (अथवा कम-से-कम जिसे वे “ध्यान” कहते हैं) प्रवेश करते हैं तो वे एक प्रकार की निश्चलता में चले जाते हैं जहां कुछ भी हिलता-डुलता नहीं—और वे उसमें से ठीक वैसे ही बाहर निकलते हैं जैसे प्रवेश करते समय होते हैं, और न तो उनकी सत्ता में, और न उनकी चेतना में ही कोई परिवर्तन होता है। और वह ध्यान जितना ही अधिक गतिहीन होता है वे उतना ही अधिक प्रसन्न होते हैं। वे इस प्रकार शाश्वत काल तक ध्यान कर सकते हैं, पर इससे न तो विश्व में और न उनके अन्दर कभी कोई परिवर्तन आयेगा।

ध्यान का पूरा लाभ उठाओ

... ध्यान के लिए सदा ही यह अधिक अच्छा है कि उसे एक केन्द्र पर एकाग्र किया जाये, उस केन्द्र पर जिसे अभीप्सा का केन्द्र कहा जा सकता है, जहां अभीप्सा की लौ जलती रहती है, उस सौर-चक्र के केन्द्र पर अपनी सब शक्तियों को एकत्र कर लिया जाये और यदि सम्भव हो तो, एक ऐसी सजग नीरवता की स्थिति प्राप्त कर ली जाये जिसमें व्यक्ति मानों किसी अत्यधिक सूक्ष्म चीज को सुनने का प्रयास कर रहा हो, किसी ऐसी चीज को जो उसकी पूर्ण सजगता, पूर्ण एकाग्रता और सम्पूर्ण नीरवता की अपेक्षा रखती हो, और फिर बिलकुल भी क्रियाशील न हुआ जाये। सोचे या क्रियाशील हुए बिना अपने-आपको इतना खोल देना कि जो कुछ ग्रहण किया जा सकता हो वह सब ग्रहण कर लिया जाये, पर इसकी पूरी सावधानी रखते हुए कि जो वस्तु उस समय हो रही है उसे समझने की कोशिश भी न की जाये, क्योंकि यदि व्यक्ति उसे जानना, यहांतक कि ध्यान से देखना भी चाहता है तो उसमें एक प्रकार की मस्तिष्क की क्रिया बनी रहती है जो ग्रहणशीलता की पूर्णता के अनुकूल नहीं होती—नीरव रहना, सजग एकाग्रता में जितना सम्भव है उतने समग्र रूप में नीरव रहना और फिर निश्चल हो जाना।

यदि व्यक्ति इसमें सफल हो जाये तो सब समाप्त होने पर, जब वह ध्यान से बाहर आता है तो कुछ देर बाद (सामान्यतः तुरत नहीं), सत्ता के अन्दर से चेतना में कुछ नयी चीज प्रकट होती है : एक नयी बोध-शक्ति, वस्तुओं का एक नया मूल्यांकन, जीवन में एक नयी वृत्ति—संक्षेप में, जीवन का एक नया ढंग प्रकट होता है। यह सब क्षणिक हो सकता है, परन्तु उस क्षण में, यदि व्यक्ति इधर ध्यान दे तो उसे पता चलता है कि कोई चीज है जो बोध-शक्ति या रूपान्तर के मार्ग पर एक कदम आगे बढ़ गयी है। यह एक ज्ञानालोक हो सकता है, एक ऐसी बोध-शक्ति

जून 2005

हो सकती है जो अधिक सच्ची हो या सत्य के अधिक निकट हो या एक रूपान्तरकारी शक्ति हो सकती है जो तुम्हें आन्तरिक प्रगति करने में या चेतना को विस्तारित करने में या अपनी गतियों एवं क्रियाओं पर प्रभुत्व की वृद्धि में सहायता पहुंचाती है।

पर ये परिणाम कभी तात्कालिक नहीं होते। क्योंकि यदि व्यक्ति उन्हें उसी समय देखने की कोशिश करे तो वह एक ऐसी सक्रिय अवस्था में रहता है जो सच्ची ग्रहणशीलता की विरोधी है। व्यक्ति को उस समय जितना सम्भव हो उतना तटस्थ, निश्चल और निष्क्रिय रहना चाहिये, पृष्ठभूमि में नीरव अभीप्सा अवश्य रहनी चाहिये पर वह शब्दों, विचारों, यहांतक कि भावना के रूप में भी रूपायित नहीं होनी चाहिये। उसे एक ऐसी वस्तु होना चाहिये जो तीव्र स्पन्दन के रूप में इस प्रकार ऊपर उठती है (ऊपर उठती लौ की तरह का संकेत), पर जो कोई रूप धारण नहीं करती और सबसे बढ़कर, जो समझने का कोई प्रयास नहीं करती।

थोड़े अभ्यास के बाद व्यक्ति ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेता है कि जब चाहे, कुछ क्षणों में ही, इस स्थिति में आ जाये, अर्थात्, तब वह ध्यान में कोई समय नहीं खोता। शुरू में, स्वभावतः व्यक्ति को धीरे-धीरे मन को शान्त करना, चेतना को एकत्रित और एकाग्र करना होता है, इस प्रकार तीन-चौथाई समय वह तैयारी में खो देता है। परन्तु जब व्यक्ति अभ्यास कर लेता है तो वह दो-तीन क्षणों में ही इसे प्राप्त कर लेता है और तब उसे ग्रहण करने के लिए सारे समय का लाभ मिल जाता है।

स्वभावतः इससे और आगे की तथा अधिक पूर्ण अवस्थाएं भी हैं, पर वे बाद में प्राप्त होती हैं। परन्तु यदि तुम कम-से-कम इस अवस्था को पा लो तो ध्यान का पूरा लाभ उठा सकते हो।

महान् रहस्य

[इसमें छह एकालाप और फिर निष्कर्ष है। श्रीमां के शब्दों में, “यह नाटक-कला की किसी भी श्रेणी में नहीं आता और इसे निश्चय ही नाटक नहीं कहा जा सकता, फिर भी, इसे मञ्च पर दिखाया जायेगा और मुझे आशा है कि यह नीरस न होगा।”]

श्रीमां ने राजनीतिज्ञ, कलाकार तथा अज्ञात व्यक्ति (‘उसके द्वारा मैं स्वयं बोल रही होऊंगी’—पाठ तैयार करते समय अज्ञात व्यक्ति के बारे में उन्होंने यह कहा था) के भाग स्वयं लिखे। बाकी चार पात्रों के भाग श्रीमां के साथ विचार-विमर्श करके नलिनी (लेखक), पवित्र (वैज्ञानिक), आन्द्रे (उद्योगपति) तथा प्रणव (व्यायामी) द्वारा लिखे गये।]

बुद्धि, संकल्पशक्ति, नैतिक बोध, भावमय चित्त, सौन्दर्यवृत्ति और भौतिक सत्ता की साधना और उन्नति बहुत लाभदायी हैं, पर अन्त में हमें पता चलता है कि यह सब साधना और उन्नति निरन्तर बस एक ही चक्कर में घूमते रहना है जिसका कोई अन्तिम उद्धारकारी एवं आलोकप्रद लक्ष्य नहीं है; हमारी बुद्धि, संकल्पशक्ति आदि इस प्रकार का चक्कर तबतक काटती रहती हैं जबतक कि वे एक ऐसे स्थान पर नहीं पहुंच जातीं जहां वे आत्मा की शक्ति तथा उपस्थिति की ओर अपने-आपको खोलकर उसकी प्रत्यक्ष क्रियाओं को अवकाश दे सकें। इस प्रकार की प्रत्यक्ष क्रिया सम्पूर्ण सत्ता का रूपान्तर साधित कर देती है...।

—श्रीअरविन्द

जून 2005

महान् रहस्य

छह एकालाप और एक सिंहावलोकन।

मानव प्रकृति के विषय में होनेवाली एक विश्व-परिषद् में भाग लेने के लिए जाते हुए संसार के सबसे प्रसिद्ध छह आदमी, ऐसा लगता है कि संयोग से, एक "लाइफ-बोट" में आ मिलते हैं, क्योंकि उनका जहाज बीच-समुद्र में डूब गया है।

नौका में एक सातवां आदमी भी है। वह युवा प्रतीत होता है, या यूँ कहें, वह वयसहीन है। उसकी वेश-भूषा किसी देश या किसी युग जैसी नहीं है। वह चुपचाप निश्चल होकर पतवार के पास बैठा है, पर वह औरों की बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा है। वे उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते, उसका होना, न होना बराबर है।

वे व्यक्ति हैं :

राजनीतिज्ञ

लेखक

वैज्ञानिक

कलाकार

उद्योगपति

व्यायामी

अज्ञात व्यक्ति

पानी खत्म हो चुका है, रसद चुक गयी है। उनकी शारीरिक यातनाएं असह्य हो उठी हैं। क्षितिज पर कहीं कोई आशा नहीं : मृत्यु निकट आती जा रही है। अपने वर्तमान क्लेशों से मन को हटाने के लिए, उनमें से हर एक अपनी जीवन-गाथा सुनाता है।

(परदा उठता है।)

राजनीतिज्ञ

आप लोगों की इच्छा है तो लीजिये, मैं ही सबसे पहले बताता हूँ कि मेरा जीवन कैसा रहा है।

मैं एक राजनीतिज्ञ का बेटा था और बचपन से ही सरकारी बातों और राजनीतिक समस्याओं से परिचित था। मेरे माता-पिता अपने मित्रों को जब दावत दिया करते थे तो इन बातों पर अच्छी तरह बहस हुआ करती थी। मैं भी बारह वर्ष की आयु से वहां उपस्थित रहा करता था। विभिन्न राजनीतिक दलों के मत मुझसे छिपे न थे और मैं अपने छोटे-से उत्साहपूर्ण मस्तिष्क में प्रत्येक कठिनाई का हल पा लेता था।

स्वभावतः, मेरी पढ़ाई-लिखाई भी इसी दिशा में चली और मैं राजनीति-विज्ञान का एक प्रतिभाशाली छात्र बन गया।

फिर, जब सिद्धान्तों को क्रिया में लाने की बात आयी तब मुझे पहली गम्भीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और तब मुझे मालूम हुआ कि अपने विचारों को क्रियान्वित करना लगभग असम्भव-सा है। मुझे समझौते करने पड़े और धीरे-धीरे मेरा महान् आदर्श मुरझा गया।

मैंने जाना कि सफलता सचमुच व्यक्तिगत मूल्यांकन नहीं है, बल्कि सफलता अपने-आपको परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेने और दूसरों को खुश करने की क्षमता का नाम है। इसके लिए, हमें दूसरों की त्रुटियों को ठीक करने की जगह उनकी कमजोरियों की लल्लो-चप्पो करनी पड़ती है।

निःसन्देह, आप सभी जानते होंगे कि मेरा उज्ज्वल जीवन कैसा रहा है, उसके बारे में स्वयं मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं। लेकिन हां, मैं इतना तो कहना ही चाहूंगा कि जैसे ही मैं प्रधानमन्त्री बना और मेरे हाथ में सचमुच कुछ शक्ति आयी, वैसे ही मैंने अपनी जवानी के पुरुषार्थ की महत्वाकांक्षाओं को याद किया और उन्हें चरितार्थ करने की कोशिश

जून 2005

की। मैंने चाहा कि मैं दलबन्दी में न पड़ूं। संसार में राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों, हलचलों में जो विग्रह मचा हुआ है और जो सारे संसार को तोड़ने में लगा है; फिर भी, मैं समझता हूं कि इनमें से प्रत्येक के अन्दर कुछ अच्छाइयां और कुछ बुराइयां हैं, इस सबमें से मैंने एक हल निकालना चाहा। इनमें से कोई भी पूरा-पूरा अच्छा या पूरा-पूरा बुरा नहीं है, इनकी अच्छाइयों को चुनकर एक क्रियात्मक और सामञ्जस्य-पूर्ण हल निकालना चाहिये। लेकिन मैं ऐसे समन्वय का कोई सूत्र न पा सका जो परस्पर-विरोधी तत्त्वों में एकता ला सके, उसे क्रियात्मक रूप देना तो और भी असम्भव था।

अतः मैं राष्ट्रों में शान्ति, एकता और सौहार्द चाहता था, मैं सबके भले के लिए सहयोग चाहता था और मुझसे बड़ी शक्ति ने मुझे युद्ध करने पर, अविवेकी तरीकों और अनुदार निर्णयों द्वारा विजय प्राप्त करने पर बाधित कर दिया।

लेकिन फिर भी मुझे एक बड़ा नीतिकुशल नेता माना जाता है, मेरे ऊपर आदर, सम्मान और प्रशंसा की बौछार की जाती है और मुझे "मानवजाति का मित्र" माना जाता है।

लेकिन मैं अपनी कमजोरी जानता हूं और मैंने उस सच्चे ज्ञान और सच्ची शक्ति को खो दिया जो मेरे बचपन की सुन्दर आशाओं को सफलता का मुकुट पहना सकती।

और अब जब कि अन्त नजदीक है, मुझे लगता है कि मैंने बहुत ही थोड़ा किया है और जो किया है वह भी शायद बुरी तरह, और मैं मृत्यु के द्वार पर टूटे सपनों का विषाद लेकर पहुंचंगा।

लेखक

इस मर्त्यलोक में स्पन्दन करते हुए सत्य और सौन्दर्य को मैंने पंखदार शब्दों से पकड़ना चाहा। हमारी आंखों के सामने जो सृष्टि का सौन्दर्य-विस्तार फैला हुआ है—यह चराचर जगत्, ये दृश्य और घटनाएं—और इसी तरह फैला हुआ हमारी अनुभूतियों और संवेदनों का दूसरा जगत् हमारी चेतना में एक रहस्यमय मायाजाल बना देता है, मानों मय दानव की बनायी भूल-भुलैया हो। वह सृष्टि मेरे ऊपर सम्मोहन-जाल फेंकती है, उसकी वाणी में किन्नरियों की बांसुरी से ज्यादा मधुरता है, वह मुझे बुला रही है अपने-आपको जानने, पहचानने और मूर्त रूप देने के लिए। मैंने अपने शब्दों को वही ध्वनि देनी चाही।

मैंने वस्तुओं के मर्म को वाणी देनी चाही, मैंने चाहा कि काल पुरुष के रहस्यों का उद्घाटन करूं। जो कुछ छिपा हुआ है, जो अज्ञात है, जो अपने सुदूर रहस्यमय आवास से सूर्य और नक्षत्र और मानव-हृदय का परिचालन करता है, मैंने उसे खोलकर दिव्य लोक में लाकर रखना चाहा। पार्थिव और अपार्थिव वस्तुओं के आयास-प्रयास मूक कठ-पुतलियों के अस्तव्यस्त नाटक जैसे हैं; मैंने उन्हें वाचा और चेतना अर्पित की। मेरी दृष्टि में शब्द एक अनुपम यन्त्र हैं, उनसे बढ़कर परिव्राहक यन्त्र कोई नहीं। शब्दों की गढ़न्त कुछ ऐसी है कि वे वस्तु को मूर्त रूप भी दे सकते हैं और प्रकाश में भी ला सकते हैं, वे तरल होते हुए भी अस्पष्ट नहीं हैं, ठोस होते हुए भी अपारदर्शक नहीं हैं। शब्द एक ही समय दो सृष्टियों के साथ सम्बन्ध रखता है। वह पार्थिव जगत् का है इसलिए स्थूल आकार दे सकता है : और पर्याप्त सूक्ष्म होने के नाते अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुओं, शक्ति और स्पन्दन, नियम और विचारों के साथ सम्बन्ध रखता है। वह अपार्थिव को पार्थिव बना सकता है, अशरीरी को शरीर दे सकता है; और इनसे बढ़कर, वह वस्तुओं के सच्चे अर्थ को,

जून 2005

रूप के पिंजरे में बन्द यथार्थ भाव को मुक्त करता है।

मैंने अपने गीति-काव्यों में मनुष्य और प्रकृति के हृदय की व्याकुलता, उनके क्रन्दन, उनके अश्रुओं के रहस्य को खोलना चाहा। कथा-कहानी के विशालतर पट पर, मैंने जीवन के विविध भावों और आवेगों का चित्रण किया, उसके उत्तुंग ज्ञान-शिखर और उसकी साधारण दैनिक मूढ़ता को आंका, जो घटनाएं मनुष्य और प्रकृति के इतिहास में घटती हैं मैंने उनमें प्राण का स्पन्दन पैदा किया और उन्हें एक भावपूर्ण वास्तविकता प्रदान की। मैंने जीवन के हास्य और रुदन को नाटक का रूप दिया और मुझे यह बताने की जरूरत नहीं है कि उस प्राचीन रूप को ही नवीन आवश्यकताओं और मांगों को भली-भांति पूरा करते हुए देखकर आप लोगों को कितना आनन्द हुआ था। मैंने जीवित शक्तियों के पात्रों को कभी न भुलाये जा सकनेवाले व्यक्तित्व के सांचे में ढाला। शायद उपन्यास, जो अधिक विस्तृत और अधिक सुस्पष्ट यन्त्र है, इस युग की वैज्ञानिक शोधवृत्ति के अधिक अनुकूल है, क्योंकि इसमें चित्र और व्याख्या, दोनों हैं। मैंने व्यष्टि और समष्टि के जीवन का इतिहास दिया और उसके साथ ही सम्पूर्ण मानवजाति के इतिहास की कभी गोल, कभी कुण्डलियों जैसी और कभी चढ़ती हुई गति के कुछ अंश को देना चाहा। लेकिन मैंने जाना और अनुभव किया कि मनुष्य की अन्तरात्मा के लिए केवल परिधि का विस्तार और बाह्य प्रसार काफी नहीं है। वह ऊंची उड़ान चाहती है। वह ऊर्ध्वतम शैली की मांग करती है। यह सोचकर मैंने महाकाव्य रचा। इसमें निश्चय ही सारे जीवन का परिश्रम लग गया। हां तो, आपमें से बहुत-से उसके मर्म को न समझ पाये, अधिकतर उससे अभिभूत हो गये, फिर भी सभी ने उसके जादुई स्पन्दन का अनुभव किया। हां, रहस्यों का पर्दा चाक करने के लिए यह मेरा जी-जान से अन्तिम प्रयास था।

मैंने अपने विषय और भाषा को कैसे चित्र-विचित्र रूप दिये। एक

निपुण वैज्ञानिक की न्याई मैंने शब्दों के साथ खेल किया, मैं उन्हें उलट-पलट कर, उनमें हेर-फेर करके उनका रूपान्तर करना जानता था और जानता था उनमें नवीन अर्थ, नवीन स्वर, नवीन व्यञ्जना लाना। मैं सिसैरो की तरंग, मिलटन की उच्च गम्भीरता, रासीन की मधुर सुकुमारता को हस्तगत कर सकता था; मेरे लिए वर्ड्ज़वर्थ की सर्वोत्तम काव्य की सरलता या शेक्सपीयर का जादू अनुपलब्ध न था। वाल्मीकि की उत्तुंग महिमा या व्यास की उदात्तता मेरे लिए अगम्य शिखर न थे।

और फिर भी मैंने जो चाहा था वह न पा सका। मुझे सन्तोष न हो पाया। मैं अतृप्त रह गया। क्योंकि आखिर, मैंने जो कुछ किया है वह एक स्वप्न से बढ़कर नहीं है, मानों हवा में स्वप्न बिखरे हों। आज मुझे लगता है कि मैंने वस्तुओं के वास्तविक सत्य को छुआ तक नहीं है, उनकी सौन्दर्य-आत्मा की हवा तक नहीं पा सका। मैं ऊपर-ही-ऊपर एक खरोंच-सी कर पाया हूँ, मैं प्रकृति के बाह्य आवरण का स्पर्श-भर कर पाया हूँ; पर उसका शरीर, उसकी अपनी सत्ता मुझसे दूर ही रही है। बाहर से देखने में चाहे कितना भी सच्चा और मनोहर क्यों न लगे, पर मैं सृष्टि के अंग-प्रत्यंग पर एक मकड़ी का जाल ही तो रच पाया हूँ। जिन उपायों और यन्त्रों को मैंने एक बार स्वभावतः अपनी क्षमता में निष्कलंक और पूर्ण माना था, मेरी धारणा थी कि वे सर्वग्राही, सर्व-प्रकाश और सर्वसमर्थ हैं, वे ही साधन अन्त में मुझे हताश कर रहे हैं। अब मुझे लगता है कि एक महान् नीरवता, एकान्त मौन ही वस्तुओं के हार्द के अधिक नजदीक है। इसी चिन्तन-प्रवाह में, इस अनन्त चपलता के बीच मैं अपनी असहाय भुजाएं उठाकर फाउस्ट की तरह चिल्ला उठता हूँ : “ओ असीम प्रकृति रानी, मैं तुम्हें कहां पा सकूंगा?” एक और महाकवि की तुलना उस असमर्थ देवदूत से की गयी थी जो शून्य में अपने चमकदार सुनहरे पंखों को फड़फड़ा रहा हो। सारी मानवजाति इससे बढ़कर और कुछ नहीं है।

जून 2005

आज अपने जीवन की सन्ध्या में, एक बच्चे के अज्ञान के साथ मैं पूछता हूँ कि इस सबका मतलब क्या है? हम किस देवता के आगे सिर झुकाएं और किसे अपनी हवि दें—कस्मै देवाय हविषा विधेम। सेकीना¹ की अन्तर्दृष्टि क्या है? हम किसलिए जियें और किसलिए मरें? पृथ्वी पर इस उड़ते हुए आविर्भाव का अर्थ क्या है? इस सारे प्रयास और संघर्ष का, इतने कष्टों और इतनी सफलताओं के मुकाबिले में इतनी वेदना का क्या मूल्य है? ऐसी ज्वलन्त आशाओं और विजयी उत्साह का क्या अर्थ है जो अज्ञान और अचेतना की ऐसी खाई में ले जायें जिसे कोई पाट न सके? और इस सबकी अनिवार्य समाप्ति—विलय और विनाश जो आविर्भाव से भी अधिक रहस्यमय है—देखकर लगता है मानों सारा ही एक अविश्वसनीय, वीभत्स और व्यर्थ का मजाक हो।

वैज्ञानिक

आप लोगों में से कइयों की तरह, मैंने अपना जीवन मानवजाति की अवस्था सुधारने के उद्देश्य से नहीं शुरू किया था। मेरे लिए कर्म नहीं, ज्ञान ही मुख्य आकर्षण था—ज्ञान का भी आधुनिक रूप : विज्ञान। मुझे लगता था कि प्रकृति के रहस्यों को छिपानेवाले परदों के एक कोने को उठाकर वहां छिपे स्रोतों को जरा अधिक जान लेने से बढ़कर अद्भुत और हो ही क्या सकता है? मैंने, शायद अनजाने ही, प्रचलित धारणा के अनुसार यह मान लिया था कि ज्ञान की वृद्धि के परिणाम-स्वरूप शक्ति आवश्यक रूप से बढ़ेगी, और प्रकृति पर हर नयी विजय आज न सही कल, मनुष्य की अवस्था को जरूर सुधारेगी, उसकी नैतिक और भौतिक स्थिति में उन्नति लायेगी। उन विचारकों की न्याईं,

¹ कृपा की मुद्रा में ईश्वर (इबरानी भाषा)।

जिनकी जड़ें भौतिक विज्ञान की प्रतिष्ठा करनेवाली गत शताब्दी में हैं, मेरी दृष्टि में भी अज्ञान, एकमात्र नहीं तो मुख्य पाप तो अवश्य था। यही मानव के पूर्णता की ओर अभियान में बाधा देता था। हम बिना ननुनच के, मनुष्य की असीम परिपूर्णता को मान बैठे थे। हम मानते थे कि धीमी हो या तेज, पर प्रगति है अवश्यम्भावी। हमें विश्वास था कि जब इतनी दूर तक आ चुके हैं तो आगे भी जाया जा सकता है। हमारे लिए, ज्यादा जानने का अर्थ ही था अधिक समझना, अधिक बुद्धिमान और न्यायसंगत होना—एक शब्द में कहें तो उन्नति करना।

हमने इस धारणा को भी स्वतःसिद्ध मान लिया : 'विश्व' जैसा है उसे वस्तुपरक रूप में वैसा जानना, उसके नियमों पर अधिकार कर लेना सम्भव है। यह बात इतनी स्पष्ट थी कि हमें उसके बारे में जरा भी शंका तक न हुई। 'विश्व' और मैं—हम दोनों का अस्तित्व है, एक का काम है दूसरे को समझना। निस्सन्देह, मैं 'विश्व' का एक अंग हूं, पर उसे समझने की प्रक्रिया में उससे दूर खड़ा होकर वस्तुपरक रूप में देखता हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि जिन्हें मैं प्रकृति के नियम कहता हूं उनकी अपनी पृथक् सत्ता है, वे मेरे या मेरे मन के ऊपर निर्भर नहीं हैं, वे सभी विचारवान् लोगों के लिए एक ही हैं।

मैंने विशुद्ध ज्ञान के इस आदर्श से प्रेरित होकर अपना काम शुरू किया। मैंने भौतिक विज्ञान और उसमें भी विशेषकर अणु, तेजस्क्रियता (रेडियो एक्टिविटी) के क्षेत्र को चुना जिसमें बेकरेल और क्यूरी दम्पति ने पहले से ही राजमार्ग बना रखा था। यह वह समय था जब प्राकृतिक तेजस्क्रियता का स्थान कृत्रिम तेजस्क्रियता ने ले रखा था, जब कीमियागरों के स्वप्न सच्चे हो रहे थे। मैंने उन बड़े वैज्ञानिकों के साथ काम किया जिन्होंने यूरेनियम विस्फोट की खोज की और मैंने अणुबम के जन्म को भी देखा : ये कठोर, अविच्छिन्न और एकनिष्ठ परिश्रम के वर्ष थे। उन्हीं दिनों मुझे वह प्रेरणा मिली जिसके कारण मैंने अपनी

जून 2005

पहली खोज की, यानी, अणु-केन्द्रिक ऊर्जा या न्यूक्लियर ऊर्जा से सीधी-सीधी बिजली प्राप्त करने को सम्भव बनाया। आप जानते ही हैं कि इस खोज ने सारी दुनिया की आर्थिक स्थिति में एक मौलिक परिवर्तन ला दिया, क्योंकि इसके कारण ऊर्जा सस्ती होने के कारण सर्वसुलभ हो गयी। अगर यह खोज सनसनीपूर्ण थी तो उसका कारण यह था कि इसने मनुष्य को श्रम के अभिशाप से मुक्त कर दिया, अब वह रोटी कमाने के लिए खून-पसीना एक करने के लिए विवश न रहा।

इस भाँति मैंने अपने यौवन के स्वप्न को सिद्ध किया—एक महान् खोज की—और साथ ही मैंने मनुष्यजाति के लिए उसका महत्त्व भी समझा। बिना विशेष प्रयास के मैं मनुष्यजाति के लिए एक वरदान ले आया था।

मुझे पूर्णतया सन्तुष्ट होने का अधिकार था, पर यह कुछ समय के लिए ही प्राप्त हुआ। अब हम मृत्यु के द्वार पर खड़े हैं और मेरा रहस्य सम्भवतः मेरे साथ ही विलीन हो जायेगा, इसलिये मैं कह सकता हूँ कि इसके कुछ समय बाद ही, मैंने न केवल यूरेनियम, थोरियम आदि दुर्लभ धातुओं से, अपितु ताम्बा और एल्युमिनियम आदि से भी अणु-शक्ति को मुक्त कराने का तरीका खोज निकाला। लेकिन फिर मेरे सामने एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई जिसके भार ने मुझे लगभग ढा दिया। क्या अपनी खोज को प्रकट कर दूँ? मेरे सिवा इस रहस्य को अभी तक और कोई नहीं जानता।

आप सब अणु-बम की कहानी जानते ही हैं। आप यह भी जानते हैं कि उसके बाद उससे भी भयंकर एक अस्त्र की खोज हुई—वह था उद्जन बम। मेरी तरह आप भी जानते हैं कि मानवता इन खोजों के भार से लड़खड़ा रही है, इन खोजों ने मनुष्य के हाथ में संहार की कल्पनातीत शक्ति पकड़ा दी है। पर अब अगर मैं अपनी इन खोजों को प्रकाशित कर दूँ, उनके रहस्यों को खोल दूँ तो एक विकट संहार की

आसुरी शक्ति जिस किसी के हाथ लग सकती है। और इसपर किसी का कोई अधिकार या नियन्त्रण न रहेगा...। यूरेनियम और थोरियम को सरकारें आसानी से अपने हाथ में रख सकती थीं, एक तो इसलिए कि वे दुष्प्राप्य थीं, पर उससे भी बढ़कर इसलिए कि उन्हें परमाणु राशि के काम में लगाना बहुत कठिन था। पर आप कल्पना कर सकते हैं कि वह स्थिति कितनी भयंकर होगी जब हर हत्यारा या पागल या मतान्ध व्यक्ति अपनी कामचलाऊ प्रयोगशाला में ऐसे अस्त्र बना सके जिनसे पेरिस, लन्दन या न्यूयार्क को उड़ाया जा सके! क्या यह मानवजाति के लिए एक घातक प्रहार न होगा? मैं खुद अपनी खोज के भार से चकराया। मैं बहुत देर तक हिचकिचाया और अभी तक किसी ऐसे निश्चय पर नहीं पहुंच पाया जो मेरे दिल और दिमाग, दोनों को सन्तुष्ट कर सके।

इस भांति अपनी जवानी में जिस पहले सूत्र को लेकर मैं प्रकृति के रहस्यों की खोज करने चला था, वही टुकड़े-टुकड़े हो गया। अगर ज्ञान की हर वृद्धि अधिक शक्ति लाती हो, तब भी यह हर्गिज नहीं कहा जा सकता कि उससे मानव कल्याण भी होता है। वैज्ञानिक प्रगति का अनिवार्य रूप से यह अर्थ नहीं है कि उसके साथ-साथ नैतिक प्रगति भी हो। वैज्ञानिक और बौद्धिक ज्ञान मानव प्रकृति को बदलने में असमर्थ हैं, फिर भी इनकी आवश्यकता अनिवार्य हो उठी है। मानव की लोलुपता और मनोवेग आज भी प्रायः वैसे ही हैं जैसे अश्मकाल में थे; यदि भविष्य में भी वे ऐसे बने रहे तो मानव का सर्वनाश निश्चित ही है। अब हम ऐसी अवस्था तक पहुंच चुके हैं कि यदि शीघ्र ही आमूल नैतिक रूपान्तर न हो तो मानवजाति अपने ही हाथों इस नयी शक्ति से अपना विनाश कर लेगी।

अच्छा, अब देखें मेरे यौवन की दूसरी स्वतःसिद्ध धारणा का क्या हुआ। क्या मैं कम-से-कम विशुद्ध ज्ञान का आनन्द पा सका, क्या मैं निश्चित रूप से प्रकृति की रचना के छिपे तलों को थोड़ा-बहुत भी

जून 2005

पकड़ पाया? क्या मैं यह आशा कर पाया कि प्रकृति को सञ्चालित करनेवाले सच्चे नियमों को जानने का आनन्द ले सकूंगा? खेद की बात तो यह है कि यहां भी मेरे आदर्श ने मुझे निराश कर दिया। हम वैज्ञानिकों ने कब से यह विचार छोड़ रखा है कि हर परिकल्पना या सिद्धान्त को पूरा-पूरा सत्य या असत्य होना ही चाहिये। हम अब यही कहते हैं कि यह सुविधाजनक है, यह तथ्यों के साथ मेल खाता है और एक काम-चलाऊ व्याख्या देता है। मगर यह जानना कि यह सच है या नहीं, अर्थात्, वास्तविकता के साथ मेल खाता है या नहीं—यह तो एक और किस्सा है। और शायद यह प्रश्न ही निरर्थक है। निःसन्देह और सिद्धान्त भी हैं, निःसन्देह क्यों, अवश्य ऐसे सिद्धान्त भी हैं जो इन्हीं तथ्यों को इतनी ही अच्छी तरह स्पष्ट कर सकते हैं और इसलिए वे भी इतने ही न्यायसंगत हैं। आखिर, ये सिद्धान्त हैं क्या? वे बिम्बमात्र ही तो हैं। वे उपयोगी अवश्य हैं, क्योंकि उनके द्वारा हम भविष्य की अनेक चीजों को देख सकते हैं; वे यह तो दिखाते हैं कि घटनाएं कैसे घटती हैं, पर उनके अस्तित्व के 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर नहीं दे पाते। वे हमें वास्तविकता की ओर नहीं ले जाते। हमें सारे समय ही लगता है कि हम सत्य और वास्तविकता के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं, उन्हें भिन्न-भिन्न कोणों से देखते हैं, भिन्न-भिन्न दिशाओं से नजर डालते हैं, पर उसे खोजने में या पकड़ पाने में कभी सफलता नहीं मिलती; वह अपने-आप भी पर्दा हटाकर अपने-आपको प्रकट नहीं करता।

और फिर, दूसरी ओर, हम जो कुछ माप-तोल करते हैं, जिससे हम आशा करते हैं कि वह इस स्थूल जगत् के बारे में कुछ बतायेगा, उसमें भी मानव सहायता की जरूरत होती है। इस माप-जोख की क्रिया से ही हम बाहरी तथ्य पर कुछ-न-कुछ हलचल पैदा कर देते हैं और यह हलचल जगत् के बाह्य रूप में कुछ तो हेर-फेर कर ही देती है। तो इस माप-तोल से मिलनेवाला ज्ञान भी पूरी तरह निःसन्दिग्ध नहीं है। इस सब

हिसाब-किताब से हम संसार का जो चित्र बनाते हैं वह सम्भव तो होता है, पर सुनिश्चित नहीं। हम भौतिक जगत् के जिस स्तर पर रहते हैं वहां यह अनिश्चितता नगण्य-सी होती है, पर इससे अत्यन्त सूक्ष्म अणु-परमाणु के जगत् के लिए यही बात नहीं कही जा सकती। यहां पर एक मौलिक अक्षमता है, एक ऐसी बाधा है जिसे पार करने की आशा तक नहीं की जा सकती। इसका कारण हमारी अनुसन्धान-पद्धति की त्रुटि नहीं है, चीजों की अपनी प्रकृति ही ऐसी है, अतः हम जिन रंगीन चशमों से सृष्टि को देखते हैं उन्हें उतार फेंकना असम्भव है। मेरे सारे हिसाब, मेरी सारी परिकल्पनाएं, वे जितने परिमाण में जगत् को पकड़ पाते हैं उतने ही परिमाण में मुझे और मेरे मन को भी लिये रहते हैं। वे जितने वस्तुपरक हैं उतने ही आत्मपरक, और वस्तुतः, उनका अस्तित्व शायद मेरे मन में ही हो।

'असीम' के तट पर, मैंने एक पदचिह्न देखा और बालू पर निशान देखकर मैंने उसकी मूर्ति गढ़नी चाही जिसने यह पदचिह्न छोड़ा था। मुझे आखिर सफलता तो मिली, लेकिन मैंने देखा, वह व्यक्ति स्वयं मैं ही था। आज मेरी यह अवस्था है—हम सबकी अवस्था यही है—और मुझे कोई मार्ग नहीं दीखता।

लेकिन आखिर, शायद इस बात से कुछ आशा बंधती है कि मैंने विश्व के बारे में असंख्य सम्भावनाएं ही देखी हैं, कोई निश्चित ज्ञान नहीं पाया—शायद इसीमें यह आशा छिपी है कि मनुष्य का भविष्य सदा के लिए अवरुद्ध नहीं है।

जून 2005

कलाकार

मेरा जन्म एक सम्भ्रान्त मध्यवर्गीय कुटुम्ब में हुआ था। मेरे घरवाले कला को आजीविका नहीं, मन-बहलाव की चीज मानते थे और उनके मतानुसार कलाकार बड़े हल्के, अनैतिक और धन के प्रति उदासीन होते हैं—और उनकी दृष्टि में यह बड़ी खतरनाक चीज थी। शायद विरोध की भावना से प्रेरित होकर ही मैंने चित्रकला को अपने जीवन का आदर्श बना लिया। मेरी सारी चेतना दो आंखों में केन्द्रित थी और मैं शब्दों की अपेक्षा रेखा-चित्रों द्वारा अपने-आपको ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त कर पाता था। मैंने पुस्तकें पढ़कर सीखने की अपेक्षा चित्र देखकर अधिक सीखा; और एक बार देखे हुए प्राकृतिक दृश्य, मानव-आकृति या रेखांकित चित्रों को मैं कभी न भूलता था।

मैंने कठोर परिश्रम द्वारा, तेरह वर्ष की आयु में ही रेखांकन, जल-रंग, पेस्टल और तैल-चित्र की तकनीक अच्छी तरह सीख ली थी। फिर अपने माता-पिता के मित्रों और परिचितों के लिए छोटे-मोटे काम करके कुछ कमाने का अवसर मिल गया, और पैसा आते ही मेरे परिवार ने मेरे काम को गम्भीरता से लेना शुरू कर दिया। इससे लाभ उठाकर मैंने यथासम्भव गहरा अध्ययन शुरू किया। ठीक आयु होने पर मैं ललितकला-शाला में भरती हो गया और शीघ्र ही प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगा। 'रोम' पुरस्कार पानेवाले सबसे छोटी आयुवालों में मैं भी एक था और इससे मुझे इटालियन कला का गहरा अध्ययन करने के लिए एक अच्छा अवसर मिला। कुछ समय बाद, छात्रवृत्ति पाकर मैंने स्पेन, बेल्जियम, हालैण्ड, इंग्लैण्ड और अन्य देशों का भ्रमण किया। मैं एक ही शैली या एक ही युग का कलाकार न बनना चाहता था। मैंने पूर्व और पश्चिम के सभी देशों की सब प्रकार की कला का अध्ययन किया।

साथ ही मेरा अपना काम भी जारी था। मैं एक नये कला-सूत्र के

सन्धान में लगा था। इसमें महान् सफलता मिली, यश मिला और ख्याति मिली; चित्र-प्रदर्शनियों में प्रथम पुरस्कार मिले, चित्रों की परीक्षा करनेवाली ज्यूरी में स्थान मिला, मेरे चित्र सारे संसार के बड़े-बड़े संग्रहालयों में स्थान पाने लगे और मेरी चीजों के लिए चित्र-विक्रेता पागल हो उठे। चारों ओर से धन, उपाधि, सम्मान की वर्षा होने लगी; लोग मुझे "प्रतिभाशाली" तक कहने लगे...। पर मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। प्रतिभा की मेरी कल्पना कुछ और ही है। प्रतिभाशाली को एक नये ही आधार पर एक नये उच्चतर, अधिक शुद्ध, अधिक सत्य और अधिक महान् सौन्दर्य को नये साधन, नवीन पथ और पद्धति से अभिव्यक्त करना होगा। जबतक मैं मानव-पशुता का बन्दी हूँ, तबतक जड़प्रकृति के रूप से पूरी तरह छुटकारा पाना सम्भव नहीं। उसके लिए अभीप्सा तो रही है, पर ज्ञान, अन्तर्दृष्टि का अभाव था।

और आज जब हम सब मरने लगे हैं तो मुझे लग रहा है कि मैं जैसा सृजन करना चाहता था, न कर पाया, मैं जिस चीज को आंकना चाहता था न आंक पाया। और मुझे लगता है कि यश-प्राप्ति के ढेर के होते हुए भी मैं असफल ही रहा।

उद्योगपति

यहां हम सब ही अपने हृदय खोल रहे हैं और, साथ ही, मैं जो कहूंगा उसका उपयोग मेरे प्रतिरूप या मेरी सफलता—या यूँ कहिये तथाकथित सफलता—से जलनेवाले न कर पायेंगे, इसलिए मैं आपको अपनी दृष्टि से अपनी कहानी सुनाता हूँ—ठीक वैसी जैसे मैं उसे देखता हूँ, वैसे नहीं जैसे अन्य लोग उसका बखान करते हैं।

घटनाएं तो ठीक ही बतायी गयी हैं। मेरे पिता एक छोटे-से गांव में लोहार थे। मैंने उनसे पितृदाय में धातुओं के काम में रस लेना सीखा;

जून 2005

उन्होंने मुझे अच्छी तरह किये गये काम में मजा लेना सिखाया और सिखाया हाथ में लिये हुए काम में अपने-आपको भुला देना। मैंने अपने काम का अतिक्रमण करना—दूसरों से भी ज्यादा अच्छा करना, प्रगति करना—उनसे ही सीखा। मुनाफा ही उनका मुख्य उद्देश्य न था, फिर भी उन्हें अपने व्यवसाय में सर्वोपरि होने का गर्व जरूर था और वे बिना किसी मिथ्या नम्रता के अपने सहकर्मियों से प्रशंसा सुनकर खिल उठते थे।

इस शताब्दी के आरम्भ में, जब अन्तर्दहन द्वारा चलनेवाला इंजन आया तो उसकी शक्यताओं को देखकर हम छोटे लड़के पागल हो उठे। बिन घोड़े की गाड़ी को, या जिसे आज मोटरकार कहते हैं, बनाना हमारे लिए ऐसा लक्ष्य था जो महानतम प्रयास के योग्य हो। सच तो यह है कि उन दिनों जो इने-गिने नमूने बने थे वे भी पूर्णता से बहुत दूर थे।

कुछ कल-पुरजे इकट्ठे किये और उस भानुमती के पितासे, जो इस काम के लिए नहीं बना था, मैंने पहली मोटर तैयार की। उसने जीवन में मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता दी। डगमगाती असुविधाजनक सीट पर बैठकर मैंने अपनी गाड़ी को पिताजी के कारखाने से नगरपालिका तक कुछ सौ गज चलाया। यह लड़खड़ाता, हांफता-कांपता, अजीबो-गरीब यन्त्र राहगीरों को डराता था, और उसे देखकर कुत्ते भौंकते और घोड़े बिदकते थे, फिर भी मेरी दृष्टि में इस यन्त्र से बढ़कर सुन्दर कोई और चीज न थी।

मैं इसके तुरन्त बाद की, उन लोगों के द्वेष की बात नहीं कहता जो कहते थे कि भगवान् ने घोड़े को गाड़ी खींचने के लिए बनाया है, रेल बनाकर काफी भ्रष्टाचार फैलाया जा चुका है, अब इस पैशाचिक यन्त्र को सड़कों और शहरों में भीड़ बढ़ाने के लिए लाने की जरूरत नहीं। ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक थी जो कहते थे कि इन तुनकमिजाज मशीनों के लिए, जिन्हें सिर्फ विशेषज्ञ या सनकी ही संभाल सकते हैं,

कोई भविष्य नहीं। कुछ ऐसे साहसी भी निकल आये जिन्होंने इस्पात खरीदने और दो-एक कारीगर रखने लायक पैसे उधार दे दिये। इन लोगों में वैसी ही अन्ध-श्रद्धा थी जैसी पिछली शताब्दी में अमरीका के सोने की खोज में भागते हुए सनकियों में, जो वीरान और सब तरह प्रतिकूल प्रदेश में अनिश्चित और मृगतृष्णा-सी समृद्धि के पीछे भागते थे।

मैं पैसे के पीछे दीवाना नहीं था। अभी-अभी बनी मोटरों से ज्यादा सुविधाजनक और ज्यादा सस्ती मोटर बना सकने का सन्तोष ही मेरे लिए पर्याप्त था। मुझे कुछ ऐसा लगता था कि यातायात का यह साधन अधिक सस्ता रहेगा क्योंकि, आखिर, उसकी चालक शक्ति को बैठकर नहीं खिलाना होगा। उसमें तेल की तभी जरूरत होगी जब वह काम करे। अगर इसका दाम कम रखा जा सके तो बहुत-से लोग जो घोड़ों को पालने के स्थायी खर्च से सकुचाते हैं, इसे ले सकेंगे।

बड़े पैमाने पर गाड़ियां पैदा करने के लिए जिस नमूने का उपयोग हुआ था उसे सब आज भी याद करते हैं। वह पहियों से बहुत ऊंचा था ताकि देहातों की ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर चल सके, उसे खूब मजबूत बनाया गया था ताकि अक्खड़ किसान भी उसका उपयोग कर सकें, परन्तु जो इसे अभीतक बड़े आदमियों के चोंचले ही मानते थे, इसका उपेक्षा करते थे। इस गाड़ी को चलाना बहुत आसान था, उसमें कोई प्रयास न करना पड़ता था। इससे हमें विश्वास हो गया कि शीघ्र ही अच्छी मोटरों को चलाने के लिए भी विशेषज्ञ की जरूरत न होगी।

प्रथम महायुद्ध ने ही मोटर को घोड़े से आगे बढ़ने का पहला मौका दिया। रोगीवाहक गाड़ियों के लिए, हथियारों के यातायात के लिए, उन सब चीजों के लिए जिन्हें शीघ्र ले जाना था, सब भारी-भारी चीजों के लिए मोटरों की जरूरत हुई। मेरे कारखाने में बहुत जोरों से काम होने लगा। सेना-विभाग से बड़ी-बड़ी मांगें आने लगीं जिन्होंने मुझे अपने यन्त्रों को सुधारने और उत्पादन तथा संयोजन-विधियों को पूर्णता की

जून 2005

और ले जाने का अवसर दिया।
महायुद्ध के अन्त तक, मेरे पास एक सुव्यवस्थित संस्था थी। लेकिन ऐसा लगता था कि नागरिक आवश्यकताओं की तुलना में यह बहुत ज्यादा भारी-भरकम थी। मेरे सहायक घबरा उठे। उन्होंने आग्रह किया कि मैं उत्पादन कम कर दूं, कर्मचारियों की संख्या घटा दूं, सामान भेजनेवालों को दिये हुए आर्डर रद्द करवा दूं और कुछ समय तक प्रतीक्षा करके देखूं कि मांग का प्रवाह किस स्तर पर आकर टिकता है। बेशक, ये बुद्धिमानी की बातें थीं; लेकिन दुनिया की सबसे सस्ती मोटर का उत्पादन करने के लिए यह बड़ा अच्छा अवसर था, ऐसे अवसर बार-बार नहीं आया करते। उत्पादन कम करने का अर्थ होता लागत में वृद्धि। तो मैंने निश्चय किया कि हमें बिक्री को देखकर उत्पादन कम नहीं करना चाहिये, बल्कि उत्पादन के अनुसार बिक्री को बढ़ाना चाहिये। छः महीने की धुंआधार इश्तहारबाजी ने मेरी बात को सत्य प्रमाणित कर दिया।

उसके बाद से मेरी कम्पनी मानों अपने-आप आगे बढ़ती गयी। मुझे महत्वपूर्ण निर्णय लेने का भार अधिकाधिक अपने सहायकों पर छोड़ना पड़ा, मैं अपने-आप केवल सिद्धान्त निरूपित करता था। मेरा सिद्धान्त था कि अपनी चीजों का स्तर गिराये बिना और मजदूरों के वेतन कम किये बिना—मैं चाहता था कि मेरे कार्यकर्ता दुनिया में सबसे अधिक वेतन पानेवाले हों—हमें अपनी चीजें कम-से-कम खर्च पर तैयार करनी चाहियें; कम-से-कम दाम पर बेचनी चाहियें, ताकि हमेशा नयी-नयी श्रेणी के ग्राहकों तक पहुंचा जा सके—व्यापार की क्षति कम किये बिना मुनाफा कम करना था, विज्ञापन और प्रचार को इस तरह संगठित करना था कि उत्पादन के खर्च पर ज्यादा भार डाले बिना अपेक्षित मुनाफा पाया जा सके; अन्त में, यदि माल देनेवाले हमसे अतिरिक्त मुनाफा लें तो मुझे मशीनरी के भाग, तैयार या आधे तैयार हिस्से, तथा

कच्चा माल भी अपने-आप तैयार करने में न हिचकिचाना चाहिये। मेरा व्यवसाय एक जीवित बढ़ते हुए प्राणी की तरह विकसित होने लगा। मैं जिस चीज में हाथ लगाता उसीमें सफलता मिलती। परिणाम-स्वरूप, मैं पौराणिक गाथाओं के नायक जैसा एक छोटा-मोटा देवता बन गया जिसने एक नयी जीवन-प्रणाली को जन्म दिया, मैं एक उदाहरण बन गया जिसका अनुसरण किया जाता था। मेरी किसी भी मामूली बात का, मेरे नगण्य-से कामों का विश्लेषण किया जाता था, उनके बाल को खाल निकाली जाती थी और उन्हें एक वेद-वाक्य के रूप में जनता के सामने पेश किया जाता था।

इस सबके पीछे कोई सत्य है? मेरा व्यापार आगे बढ़ता जाता है और इसीलिए जीवित है। उसकी प्रगति में कोई रुकावट उसके लिए सांघातिक होगी। क्योंकि उन्नतिशील व्यवसाय में ऊपरी खर्च उत्पादन के खर्च से थोड़ा पीछे रहता है, यदि उत्पादन का खर्च उसके बराबर हो जावे तो वह जो थोड़ा-सा मुनाफा रखा जाता है, उसे निगल जायेगा। मेरा व्यापार इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि परिपक्वता की ओर बढ़नेवाले स्वस्थ शरीर की अपेक्षा, एक फूला हुआ गुब्बारा लगता है। उदाहरण के लिए, मेरे कुछ विभागों में औरों के साथ कदम मिलाये रखने के लिए मजदूरों के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करना पड़ता है, और जैसे ही इस विभाग में मशीनों में सुधार करके स्थिति ठीक की जाती है, वैसे ही किसी दूसरे विभाग में यही हाल हो जाता है। मैं इस मामले में अपने-आपको असहाय-सा पाता हूँ, क्योंकि सारी गति में यदि कहीं रुकावट आयी तो कार्यकर्ताओं की और भी अधिक दुर्दशा हो जायेगी।

और मैंने मानवजाति को क्या दिया? लोग ज्यादा आसानी से सफल कर सकते हैं। लेकिन क्या वे एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझ पाते हैं? मेरा अनुसरण करते हुए, जीवन को अधिक सरल बनानेवाली बहुतेरी चीजों को बड़े पैमाने पर तैयार करना और अधिक-से-अधिक

जून 2005

ग्राहकों तक पहुंचाना शुरू हुआ। लेकिन इसके परिणामस्वरूप क्या नयी-नयी आवश्यकताएं नहीं पैदा की गयीं और उसके साथ-ही-साथ मुनाफे के लिए लोभ नहीं बढ़ता गया? मेरे आदमियों को अच्छा वेतन मिलता है लेकिन ऐसा लगता है कि मैं उनमें अधिकाधिक और उससे भी अधिक, अन्य कारखाने के लोगों से अधिक कमाने की तृष्णा पैदा करने में ही सफल हुआ हूं। मुझे लगता है कि वे असन्तुष्ट हैं, दुःखी हैं। मेरी आशाओं के विपरीत, उनका जीवन-स्तर उठाने से, उनके योग-क्षेम की ठीक व्यवस्था कर देने से उनके अन्दर मानव व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ। सच पूछिये तो मनुष्य के दुःखों का भार जैसा-का-तैसा ही बना है, आज भी वह पहले जैसा दुःसह है, और, ऐसा लगता है कि मैंने जो उपाय किये हैं उनसे उसका उपचार नहीं हो सकता। मुझे लगता है कि आधार में ही कोई ऐसी भूल रह गयी है जिसे मेरे उपाय ठीक नहीं कर पाते। इतना ही नहीं, मैं उसे जानता और समझता भी नहीं हूं। मुझे लगता है कि कोई रहस्य है जिसका उद्घाटन करना अभी बाकी है; और उसके बिना हमारे सारे प्रयास बेकार हैं।

व्यायामी

मैं कसरती परिवार में पैदा हुआ था। मेरे मां-बाप खेल-कूद, दौड़-भाग और विभिन्न कसरतों में निपुण थे। मेरी मां तैराकी, डुबकी लगाने, धनुर्विद्या, पट्टेबाजी और नृत्य में विशेष रूप से कुशल थीं। वे इन चीजों के लिए काफी विख्यात थीं और उन्हें कई स्थानीय पारितोषिक भी मिल चुके थे।

मेरे पिता एक विलक्षण व्यक्ति थे। वे जिस चीज में हाथ लगाते उसीमें सफलता मिलती थी। वे अपने विद्यार्थी-जीवन में फुटबॉल, बास्केटबॉल और टेनिस के जानेमाने खिलाड़ी थे। मुष्टि-युद्ध और लम्बी

दौड़ में वे अपने जिले में सबसे अच्छे थे। फिर, बाद में, वे एक सरकस-दल में जा मिले और वहां फ्लाइंग ट्रेपीज तथा घुड़सवारी के खेलों में नाम पाया। लेकिन उनकी अपनी विशेषता थी शरीर-गठन ("बॉडी बिल्डिंग") और कुश्ती। इनमें उन्होंने बहुत ख्याति पायी।

स्वस्थ, सबल और सक्षम शरीर पाने के लिए ऐसे परिवार में पैदा होना और पलना स्वभावतः एक आदर्श अवस्था थी। मेरे माता-पिता ने जो शारीरिक उपलब्धियां बड़े कष्ट से परिश्रम कर-कर के पायी थीं, वे मुझे सहज प्राप्त हो गयीं। इसके अतिरिक्त, मेरे व्यायामी माता-पिता मेरे अन्दर अपने स्वप्नों की सार्थकता देखना चाहते थे,—वे मुझे एक महान् और सफल व्यायामी के रूप में देखना चाहते थे। अतः उन्होंने मुझे बड़ी सावधानी के साथ पाला, वे चाहते थे कि मैं स्वास्थ्य, बल, तेज और ओज प्राप्त कर सकूं। इस विषय में उन्हें जितनी भी जानकारी थी, जितना भी अनुभव था, उस सबका उपयोग मेरे लालन-पालन में किया; और उन्होंने इसमें कोई कसर न रखी। मेरे जन्म से ही स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से भोजन, वस्त्र, नींद, सफाई और अच्छी आदतों का यथासम्भव पूरा ख्याल रखा गया। उसके बाद व्यवस्थित रूप से कसरतों की बारी आयी जिनके द्वारा मेरे शरीर में सौष्ठव, उचित अनुपात, शोभा, छन्द और सुसंगति लाये गये। फिर तत्परता, फुर्ती, साहस, सतर्कता, यथार्थता और अंग-प्रत्यंग की क्रियाओं में सहयोग लाने की शिक्षा दी, और अन्त में शक्ति तथा सहनशीलता प्राप्त करना सिखाया।

मुझे एक छात्रावास में भेजा गया। स्वभावतः मुझे शारीरिक शिक्षण का कार्यक्रम सबसे अधिक पसंद आया। मैंने उसमें खूब रस लेना शुरू किया और कुछ ही वर्षों में मुझे विद्यालय के अच्छे खिलाड़ियों और व्यायामियों में स्थान मिलने लगा। मुझे पहली बार सफलता मिली जब मैं अन्तर्विद्यालय मुष्टि-युद्ध प्रतियोगिता में चैम्पियन बना। यह देखकर मेरे

जून 2005

मां-बाप कितने प्रसन्न हुए ! उन्हें लगा कि उनके स्वप्न चरितार्थ होने लगे हैं। इस सफलता से मुझे बहुत बढ़ावा मिला, और तबसे मैंने पूरी दृढ़ता, बड़े ही यत्न और परिश्रम के साथ शारीरिक शिक्षण की विविध शाखाओं के कौशल को सीखना और उनमें निष्णात होने का प्रयास शुरू कर दिया। मुझे सब प्रकार के खेल-कूद और कसरतों में भाग लेकर शरीर की नाना प्रकार की क्षमताओं को विकसित करना सिखाया गया। मेरा ख्याल था कि शारीरिक शिक्षण की एक व्यापक पद्धति के द्वारा आदमी एक से अधिक या यूँ कहिये, कई प्रकार की शारीरिक प्रवृत्तियों में बहुत सफल और दक्ष हो सकता है। इसलिए जिस-जिस खेल में मौका मिला, मैंने उस-उसमें भाग लिया। मैंने बरसों खुली प्रतियोगिताओं में—कुश्ती, मुष्टि-युद्ध, भार उठाना, शरीर-गठन, तैराकी, दौड़-भाग, कूद-फांद, टेनिस, कसरत आदि में—नियमित रूप से प्रथम पुरस्कार लिये।

अब मैं अठारह वर्ष का था। मैं खेलों की राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग लेना चाहता था। मैं सर्वांगीण विकास का पक्षपाती था इसलिए मैंने राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिए डेकैथलेन को चुना। यह सबसे अधिक कठिन होता है,—इसमें तेजी, बल, सहनशक्ति और सब अंगों का समन्वय आदि गुणों की बड़ी कड़ी परीक्षा होती है। मैं कठिन अभ्यास के लिए मैदान में उतर पड़ा और छः महीने के कठोर परिश्रम के बाद आसानी से राष्ट्रीय पारितोषिक प्राप्त कर लिया, मेरे बाद का व्यक्ति मुझसे बहुत दूर रह गया था।

राष्ट्रीय शरीर-शिक्षण संस्था के व्यवस्थापक मेरी सफलता देखकर स्वाभाविक रूप से मुझे विश्व-‘ऑलिम्पिक्स’ में भेजने के बारे में सोचने लगे। अगले दो वर्ष के अन्दर विश्व-‘ऑलिम्पिक्स’ होनेवाले थे और मुझे वहाँ डेकैथलेन में देश का प्रतिनिधित्व करने का निमंत्रण मिला। विश्व-प्रतियोगिता में भाग लेना हंसी-खेल नहीं है, वहाँ सारे संसार के अच्छे-से-अच्छे खिलाड़ी इकट्ठे होते हैं। अब समय नष्ट करने का

अवसर नहीं था।

तो मैंने पिताजी के निर्देश और मां की देखभाल में प्रशिक्षण शुरू कर दिया। मुझे बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता था। कभी-कभी प्राति असम्भव-सी लगती थी और हर बात कठिन मालूम होती थी। फिर भी मैं दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने काम पर पिला रहा, और फिर आखिर 'ऑलिम्पिक' के खेलों का दिन आ गया।

मुझे शेखी नहीं बघारनी चाहिये, पर मैंने अपनी ही आशा से बहुत ज्यादा अच्छा किया। मैं प्रथम तो आया ही, परन्तु न मुझसे पहले और न मेरे बाद किसी ने मेरे जितने अंक पाये। यह बात किसी को सम्भव न लगती थी। पर हुआ यही, और मेरी और माता-पिता की ऊंची-से-ऊंची महत्त्वाकांक्षा पूरी हो गयी।

लेकिन मेरे अन्दर एक आश्चर्यजनक बात हुई। यद्यपि मैं सफलता और यश के शिखर पर था, फिर भी लगा कि मेरे अन्दर एक उदासी और एक खोखलेपन का भाव आ रहा है;—ऐसा लगता था मानों मेरे अन्दर कोई कह रहा हो कि कोई कसर रह गयी है, किसी चीज की खोज करनी होगी, अपने अन्दर किसी चीज की प्रतिष्ठा करनी होगी। ऐसा लगता था मानों वही वाणी कह रही है : शायद कोई और चीज हो जिसके लिए मेरी शारीरिक दक्षता, क्षमता और ऊर्जा का अधिक अच्छा उपयोग हो सकता है। परन्तु वह चीज क्या है इसका मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था। धीरे-धीरे यह स्थिति चली गयी। इसके बाद भी मैंने बहुत-सी महत्त्वपूर्ण प्रतियोगिताओं में भाग लिया, और सबमें काफी सफल रहा। परन्तु प्रत्येक विजय के बाद यह भावना मुझे जोर से आ जकड़ती थी।

मेरी ख्याति के कारण नवयुवकों का एक दल मेरे चारों ओर इकट्ठा हो गया। युवक शारीरिक शिक्षण के भिन्न-भिन्न विषयों में मेरी सहायता चाहते थे, मैंने बड़ी खुशी से सहायता दी। मैंने देखा कि अपने

जून 2005

प्रिय विषय में, यानी, खेल-कूद, व्यायाम आदि में दूसरों की सहायता करने में एक आनन्द है। मैं प्रशिक्षक के रूप में सफल हो रहा था। मेरे कई विद्यार्थी खेल-कूद, व्यायाम आदि में आश्चर्यजनक सफलता पा रहे थे। शिक्षक-रूप में अपनी सफलता देखकर और खेल-कूद के लिए अपनी रुचि के कारण (मुझे इतनी रुचि थी कि मैं इससे सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहता था) मैंने सोचा कि मैं इस शिक्षण-कार्य को ही अपने जीवन का ध्येय बना लूं। शारीरिक शिक्षण के सिद्धान्त-पक्ष से भी भली-भांति परिचित होने के लिए मैं शारीरिक शिक्षण के एक प्रसिद्ध महाविद्यालय में भरती हो गया और चार वर्ष में मैंने वहां की उपाधि भी पा ली।

अब शारीरिक शिक्षण के सिद्धान्त और प्रयोग, दोनों में निपुणता पाकर मैं कार्यक्षेत्र में उतर पड़ा। जबतक मैं केवल व्यायामी था, मेरा मुख्य उद्देश्य था अपने शरीर के लिए स्वास्थ्य, बल, कौशल, शारीरिक सौंदर्य और शारीरिक पूर्णता पाना। अब मैं इसी उद्देश्य को लेकर औरों की सहायता करने लगा। मैंने अपने देश-भर में प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण-केन्द्रों की व्यवस्था की और बहुत अच्छे प्रशिक्षक और शारीरिक शिक्षण के निर्देशक तैयार किये। उनकी सहायता से मैंने देश के कोने-कोने में अनगिनत शारीरिक शिक्षण-केन्द्र खोले। इन केन्द्रों का उद्देश्य था साधारण जनता के अन्दर स्वास्थ्य, व्यायाम और मनबहलाव को वैज्ञानिक रूप से लोकप्रिय बनाना। इन केन्द्रों ने अपना काम बड़ी अच्छी तरह किया और कुछ ही वर्षों में मेरे देशवासियों का स्वास्थ्य बहुत सुधर गया। देश-विदेश में वे खेल-कूद में अच्छे परिणाम दिखाने लगे। खेल-कूद की दुनिया में शीघ्र ही मेरे देश का नाम चमक उठा। मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मेरे देश की सरकार ने इस दिशा में मेरी बहुत सहायता की और मुझे मन्त्रिमण्डल में शारीरिक शिक्षण-मन्त्री के रूप में स्थान दिया गया। इसी कारण मैं यह सब कर पाया।

शीघ्र ही मेरा नाम देश-देशान्तर में महान् शारीरिक शिक्षक और

व्यवस्थापक के रूप में फैल गया, और मुझे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शारीरिक शिक्षण के बारे में प्रामाणिक व्यक्ति माना जाने लगा। मुझे बहुत-से देशों में शारीरिक शिक्षण के बारे में बोलने और अपनी पद्धति का परिचय देने के लिए निमन्त्रित किया गया। मेरे पास धरती के कोने-कोने से चिट्ठियों की बौछार आने लगी जिनमें मेरी पद्धति के बारे में पूछ-ताछ होती थी और शारीरिक शिक्षण के क्षेत्र में उन देशों की विशेष समस्याओं के बारे में मेरी सलाह मांगी जाती थी।

लेकिन इस सब कार्य-व्यस्तता के बीच मुझे ऐसा लगता था कि मेरी सारी शक्ति और मेरे कौशल, मेरे देश-व्यापी संगठन और उससे मिलनेवाली शक्ति, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मेरे जोरदार प्रभाव का शायद कुछ और ऊंचा, कुछ और महान् और उदात्त उद्देश्य हो सकता था और तभी मेरे सब किये-कराये का कुछ अर्थ हो सकता था। लेकिन मुझे अभी तक मालूम नहीं हो पाया कि वह उद्देश्य क्या है।

मुझे कई बार “अतिमानव” कहा गया है, पर मैं अतिमानव नहीं हूँ। मैं अब भी प्रकृति का दास हूँ, मैं एक मनुष्य हूँ—अज्ञान से भरा, सीमाओं से घिरा, अक्षम, रोगों, दुर्घटनाओं और इच्छा-वासनाओं का शिकार जो मनुष्य को सारी शक्ति से खाली कर देती हैं। मुझे लगता है कि मैं अभी तक इन चीजों से ऊपर नहीं उठ पाया हूँ, कोई और ही चीज है जिसे सीखना और पाना है।

अब, जब कि मौत के साथ आमना-सामना हो रहा है, मुझे मौत का जरा भी डर नहीं है। अत्यधिक कष्ट, भूख और प्यास के विचार मुझे नहीं सताते। लेकिन मुझे खेद है कि मैं अपने जीवनकाल में अपनी समस्या को न सुलझा पाया। मैंने अपने जीवन में बहुत सफलता पायी, ख्याति, मान, धन, यानी, मनुष्य जिस-जिस चीज के स्वप्न ले सकता है वह सब मुझे प्राप्त है। पर मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ क्योंकि मुझे इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिला—

जून 2005

“सब कुछ होते हुए भी वह कौन-सी चीज है जिसे मैं नहीं पा सका? मेरी शारीरिक पूर्णता और दक्षता का ऊंचे-से-ऊंचा उपयोग क्या हो सकता था? देश-भर में फैले हुए मेरे संगठन और मेरे अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव का किस उद्देश्य के लिए अच्छे-से-अच्छा विनियोग हो सकता है?”

(तब अज्ञात व्यक्ति की शान्त, मधुर, स्पष्ट, अधिकारपूर्ण और गम्भीर आवाज सुनायी देती है।)

अज्ञात व्यक्ति

आप लोग जो जानना चाहते हैं, वह मैं आपको बता सकता हूँ।

आप लोगों के कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न रहे हैं और कार्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न रही है, फिर भी आप सबके अनुभव एक जैसे हैं। आप छह-छह बड़े परिश्रम के बाद सफलता प्राप्त करके भी एक ही परिणाम पर पहुंचे हैं। क्योंकि आप चेतना के ऊपरी तल पर रहे हैं और आपने चीजों के बाह्य रूप को ही देखा है। आप सब विश्व की वास्तविकता से अनभिज्ञ ही रह गये।

आप लोग मनुष्यों में अभिजात श्रेणी के हैं, आपने अपने-अपने क्षेत्र में यथासम्भव अधिक-से-अधिक सफलता पायी है; अतः आप मानवजाति के मूर्खन्य हैं। लेकिन अब मानवजाति के शिखर पर पहुंच कर आगे बढ़ना असम्भव हो गया है और आपके सामने एक बड़ी खाई है। आपमें से कोई भी सन्तुष्ट नहीं है, साथ ही कोई यह भी नहीं जानता कि अब क्या किया जाये। आपके जीवन और आपकी सद्भावना ने जो दुहरी समस्या आपके आगे रखी है उसका आपको कोई हल नहीं पड़ता। मैंने कहा, दुहरी समस्या, क्योंकि सचमुच समस्या के दो पहलू हैं—व्यक्तिगत और सामाजिक : अपना और दूसरों का कल्याण कैसे

किया जाये? आप लोग इस समस्या को हल नहीं कर पाये हैं, क्योंकि जीवन की यह समस्या आदमी के मन द्वारा (चाहे वह कितना भी उन्नत क्यों न हो) हल होनेवाली नहीं है। इसके लिए, हमें एक नवीन और उच्चतर, 'सत्य-चेतना' में जन्म लेना होगा। क्योंकि उन भागते हुए रूपों के पीछे एक अमर वास्तविकता छिपी है, इस निश्चेतन और परस्पर टकराते हुए बहु के पीछे एक, प्रशान्त 'चेतना' है, इस अनवरत और असंख्य मिथ्याचार के पीछे एक पवित्र, दीप्तिमान 'सत्य' विद्यमान है, इस अन्धकारमय और विद्रोही अज्ञान के पीछे सर्वजयी ज्ञान है।

और यह 'वास्तविकता', यह 'सद्वस्तु' मौजूद है, बहुत ही नजदीक है, आपकी सत्ता के और इस विश्व की सत्ता के केन्द्र में मौजूद है। आपको सिर्फ इसी सत्ता को खोजना होगा और उसे अपने जीवन में मूर्त रूप देना होगा और तब आप सारी समस्याएं हल कर सकेंगे, सब विघ्न-बाधाओं को पार कर सकेंगे।

आप शायद कहें कि यही बात तो नाना धर्मों ने कही है : अधिकतर ने इस 'सद्वस्तु' को भगवान् का नाम दिया है, परन्तु उनमें से कोई भी आपकी समस्या का सन्तोषजनक हल नहीं कर सका और न आपको आपके प्रश्नों का समुचित उत्तर दे पाया है, और वे आर्त मानवजाति के दुःख-दर्द को दूर करने के प्रयास में पूरी तरह असफल हुए हैं।

इनमें से कुछ धर्म सन्तों द्वारा सुनी गयी आन्तरिक वाणी पर आधारित हैं, कुछ दार्शनिक और आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति पर खड़े हैं, परन्तु शीघ्र ही आन्तरिक वाणी का स्थान ले लेते हैं आचार-व्यवहार और कर्मकाण्ड तथा दार्शनिक आदर्श का स्थान कट्टर मान्यताएं ले लेती हैं, और उनके अन्दर का सत्य इस तरह गायब हो जाता है। इसके अलावा, सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रायः बिना अपवाद के, इन धर्मों ने मनुष्य को प्रायः एक ही प्रकार का समाधान दिया है और वह इहलोक को छोड़कर परलोक की ही बात करता है, मानों उनका

जून 2005

समाधान जीवन पर नहीं मृत्यु पर आधारित है। उनका कहना कुछ-कुछ इस प्रकार है : अपनी मुसीबतों को चुपचाप सहते जाओ, क्योंकि यह जगत् असाध्य रूप से पापमय है, और तुम्हें मृत्यु के बाद इसका पुरस्कार मिलेगा; या वे कहते हैं : जीवन से सब प्रकार की आसक्ति छोड़ दो और तुम जीवित रहने की कठोर आवश्यकता से सदा के लिए मुक्त हो जाओगे। निश्चय ही ये हल धरती पर मनुष्य के दुःख-दर्द के लिए अथवा संसार की साधारण अवस्था के लिए कोई इलाज नहीं हैं। इसके विपरीत, यदि हमें संसार की इस विशृंखलता, अव्यवस्था और दुर्दशा का कोई सच्चा इलाज ढूँढ़ना है तो इसे इस धरती पर ही पाना होगा। और वस्तुतः यह समाधान यहीं मौजूद है, अन्तर्निहित है, सिर्फ उसे ढूँढ़ निकालना होगा; वह रहस्यमय या काल्पनिक नहीं है; वह एक ठोस वास्तविकता है और यदि हम ठीक तरह निरीक्षण करना जानें तो पता लगेगा कि स्वयं प्रकृति ने ही उसे यहां प्रस्तुत किया है। क्योंकि प्रकृति की गति ऊर्ध्वमुखी है; वह एक ऐसे रूप, एक ऐसी जीव-श्रेणीके सृजन के लिए प्रयत्नशील है जो विश्व-चेतना को अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सके। इस सबसे यही प्रमाणित होता है कि धरती के विकास-क्रम में मनुष्य ही अन्तिम सीढ़ी नहीं है। मनुष्य के बाद निश्चय ही एक ऐसी जाति आयेगी जो मनुष्य के लिए वैसी ही होगी जैसे मनुष्य पशु के आगे; मनुष्य की वर्तमान चेतना की जगह एक नयी चेतना आयेगी जो मानसिक नहीं, अतिमानसिक होगी। और यह चेतना एक अधिक उन्नत, अतिमानस और भागवत जाति को जन्म देगी।

अब समय आ गया है जब यह सम्भावना जिसे आर्ष-दृष्टि ने युगों पहले देखा था और जिसके बारे में आदेश भी हो चुका है, वह धरती पर मूर्त रूप ले ले, और इसीलिए आप लोग इतने असन्तुष्ट हैं और आपको लगता है कि आपने जीवन से जिस चीज की मांग की थी वह नहीं मिली। पृथ्वी जिस अन्धकार में डूबी हुई है उसमें से निकलने के

लिए चेतना में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। सच पूछिये तो चेतना का यह रूपान्तर, एक उच्चतर और सत्यतर चेतना की अभिव्यक्ति केवल सम्भव ही नहीं है, अनिवार्य है; वही हमारे जीवन का लक्ष्य और पार्थिव जीवन का रहस्य है। पहले चेतना का, फिर प्राण का और उसके बाद शरीर का रूपान्तर करना होगा; नवीन सृष्टि इसी क्रम से होगी। प्रकृति की भी क्रियाएं, जीवन को उस 'परम वास्तविकता' की ओर धीरे-धीरे वापिस ले जा रही हैं जो समग्र विश्व और उसके अणु-परमाणु का लक्ष्य और स्रोत है। हम सार-रूप में जो हैं वही स्थूल रूप में भी हमें बनना होगा; जो सत्य, सौन्दर्य, शक्ति और पूर्णता हमारी सत्ता की गहराई में निहित है उन्हें समग्र भाव से जीवन में उतारना होगा, और तब सारा जीवन ही उस महान्, शाश्वत और दिव्य 'आनन्द' की अभिव्यक्ति हो उठेगा।

(सब लोग चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखते हैं और सहमति प्रकट करते हैं। फिर :)

लेखक—आपकी वाणी में एक मन्त्र-शक्ति है, एक जादुई बल है। हां, हमें लगता है कि हमारे लिए एक नया दरवाजा खुल गया है; हमारे हृदयों में एक नयी आशा ने जन्म लिया है। लेकिन उसे सिद्ध करने में समय लगेगा, शायद अभी बहुत समय की जरूरत हो। परन्तु अब तो मृत्यु नजदीक ही है, हमारा अन्त आ पहुंचा है। खेद है कि अब बहुत देर हो चुकी है।

अज्ञात व्यक्ति—नहीं, बहुत देर नहीं हुई, ऐसी देर कभी नहीं हुआ करती। हम सब अपनी संकल्प-शक्ति को एकत्र करके, एक महान् अभीप्सा के साथ भागवत 'कृपा' से प्रार्थना करें। चमत्कार किसी भी समय हो सकता है। श्रद्धा में बड़ी शक्ति होती है। और अगर सचमुच भविष्य में होनेवाले महान् कार्य में हमारे लिए कोई स्थान है तो भागवत

जून 2005

सहायता आयेगी और हमारे जीवन की रक्षा होगी। आइये, हम एक सन्त की नम्रता, एक शिशु की सरलता के साथ प्रार्थना करें; पूरी सच्चाई से उस नयी 'चेतना', उस नयी 'शक्ति', उस 'सत्य' और उस 'सौन्दर्य' का आवाहन करें जिसका अवतरण इस धरती का रूपान्तर करने के लिए, और यहां, इस पार्थिव जगत् में अतिमानस-जीवन सिद्ध करने के लिए जरूरी है।

(सब लोग एकाग्रचित्त होते हैं। अज्ञात व्यक्ति बोलता है :)

"हे 'परम सत्य' हमने जिस उत्तम रहस्य को जाना है उसे समग्र सत्ता के जीवन में उतार सकें।"

(सब मिलकर यह प्रार्थना करते हैं, फिर नीरव ध्यान करते हैं। अचानक कलाकार चिल्ला पड़ता है :)

देखो! देखो!

(दूर क्षितिज से एक बिन्दु के समान एक जहाज आता हुआ दिखायी देता है। सबको आश्चर्य होता है।)

अज्ञात व्यक्ति—हमारी प्रार्थना सुन ली गयी।

(जब जहाज अच्छी तरह दिखायी देने लगता है तो व्यायामी उठकर खड़ा हो जाता है और जेब से सफेद रूमाल निकालकर जोर से हिलाता है। जहाज और नजदीक आता जाता है। वैज्ञानिक चिल्ला उठता है :)

उन लोगों ने हमें देख लिया है। वे हमारी ओर आ रहे हैं!

अज्ञात व्यक्ति—(धीरे-धीरे) यही है मुक्ति, यही है नवजीवन!

(परदा गिरता है।)

सूचना

पुरोधा और अग्निशिखा के लिए शुल्क भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखिये —

१. मनीऑर्डर-फॉर्म टाइप करके न भेजें। यह फॉर्म पर छपी लकीरों के बीच ऐसा घपला जाता है कि पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है। हाथ से लिखना ठीक है।

२. तमिलनाडु में हिन्दी पढ़नेवाले, विशेषतः डाक-विभाग में हिन्दी जाननेवाले बहुत कम हैं। अतः मनीऑर्डर-फॉर्म या पत्र का पता अंग्रेजी में ही लिखें।

३. मनीऑर्डर-फॉर्म के सम्पर्क-स्थान पर यह जरूर लिखें :

(क) यह धन किसलिए, किस पत्रिका के लिए और कितने समय के लिए भेजा जा रहा है।

(ख) अपना नाम व पूरा पता पिनकोड सहित साफ-साफ पढ़े जा सकनेवाले बड़े अक्षरों में (अंग्रेजी में) लिखें।

(ग) अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

४. पता बदल जाये तो उसकी सूचना तुरन्त दें। अन्यथा पत्रिकाएं लौट-लौट आती हैं।

५. मनीऑर्डर या डी. डी. या चैक पुरोधा एवं अग्निशिखा के नाम ही भेजें, आश्रम के नाम नहीं।

६. पत्रिका के लिफाफे पर आपके पते के ऊपर आपकी ग्राहक-संख्या और शुल्क समाप्त होने की तारीख लिखी रहती है।

७. पत्रिका प्राप्त न होने की सूचना एक मास प्रतीक्षा के बाद अपने डाकखाने से जांच-पड़ताल कर हमें तुरन्त सूचित करें। देर से सूचना प्राप्त होने पर कई बार वह अंक भेजना सम्भव नहीं होता।

८. धैर्य से लिखें, अक्षर स्पष्ट हों यह जरूरी है।

पुरोधा हर महीने की १० तथा ११ तारीख को भेजी जाती है।
अग्निशिखा हर महीने की २५ तथा २६ तारीख को भेजी जाती है।

जून 2005

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

UNESCO INSTITUTE, INTERNATIONAL INSTITUTE OF
EDUCATION PLANNING (PARIS, FRANCE), STATE INSTITUTE
OF EDUCATIONAL MANAGEMENT AND TRAINING U.P.
के सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश का सर्वोत्तम आदर्श शिक्षण संस्थान

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ♦ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ♦ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ♦ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ♦ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ♦ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ♦ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ♦ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी
प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

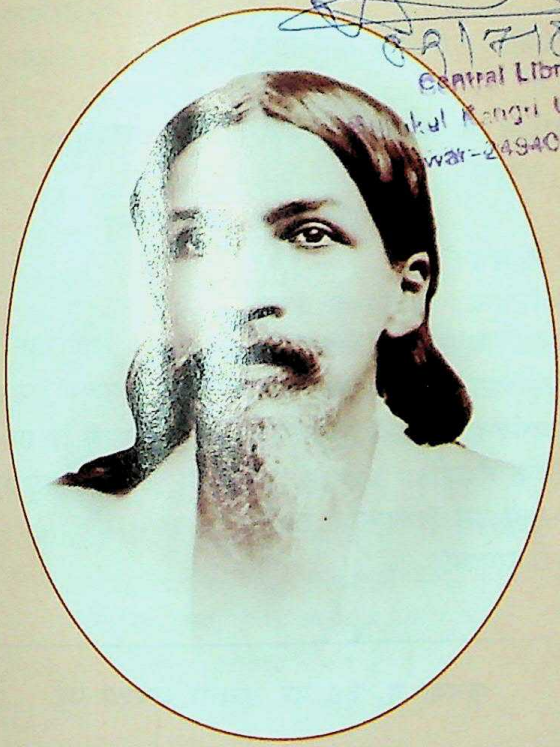
☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com

अग्निशिखा



अखिल भारतीय पत्रिका

जुलाई २००५

विषय-सूची

सन्देश	श्रीअरविन्द	१
‘सम्पादकीय’ : भगवान् साथ-साथ चलते रहें	अनुबेन	२
दैनन्दिनी		५
श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष	नीरदवरण	८
पुनश्च		

श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ना

‘श्रीमां के वचन’ :

श्रीअरविन्द : भविष्य के अग्रदूत	१०
श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ना	१३
श्रीअरविन्द के ग्रन्थ कैसे पढ़ें	१६
श्रीअरविन्द के ग्रन्थों से उत्तर कैसे पाया जाये	२१
बौद्धिक तैयारी	२४
जो पढ़ो उसे अभ्यास में लाओ	३३
सोसायटी समाचार	३७

कृपया पृ. ३८ पर सूचना अवश्य पढ़ें

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

व्यक्ति को सब कुछ अन्दर ही अन्दर नीरवता में करना चाहिये
-कार्य करना, बोलना, पढ़ना, लिखना—सभी कुछ सच्ची चेतना
के एक भाग के रूप में ही करना चाहिये—साधारण चेतना की
छितरी हुई तथा चञ्चल गतिविधि के साथ नहीं।

—श्रीअरविन्द

‘सम्पादकीय’ :

भगवान् साथ-साथ चलते रहें

दो भाई व्यापार करते थे। दोनों ही जी-जान से काम करते अतः उनकी आमदनी खासी अच्छी थी। पता नहीं किसने दोनों भाइयों को भड़का दिया और दोनों में बात-बात पर तू-तू मैं-मैं होने लगी। बात का बतंगड़ बनते देर न लगी। उन्होंने अलग होने का निश्चय कर लिया, किन्तु छोटा भाई थोड़ा कोमल हृदय का था। उसने भगवान् से प्रार्थना की, अपने अभिन्न मित्र को भी चिट्ठी लिखी कि वह भी उसकी सहायता करे। मित्र ने माताजी के सामने दोनों भाइयों की समस्या रखी जो सचमुच और कुछ न थी, केवल आमदनी के सही-सही बंटवारे की ही थी। पता नहीं माताजी ने कौन-सा जादू किया, लेकिन एक-दो महीने के बाद ही छोटे भाई का पत्र अपने मित्र के पास आया जिसमें उसने बंटवारे की समस्या के सुलझ जाने की खबर दी थी और साथ ही यह खुश-खबरी सुनायी कि दोनों भाइयों के बीच पहले जैसा प्यार और अपनापन भी बरकरार हो गया है।

चूँकि मित्र अपनी हर समस्या के लिए माताजी से प्रार्थना करता था, उसने दो भाइयों की यह समस्या भी माताजी के सामने रखी थी और उसने जानना चाहा कि मनुष्य अपनी समस्याओं को सुलझा क्यों नहीं पाता। माताजी ने जो उत्तर दिया उसे जानकर शायद हम अधिक सचेतन हो पायेंगे और कई कठिनाइयों से मुक्त भी रह सकेंगे।

उन्होंने कहा, “जब तुम अपने-आपको ऐसी परिस्थिति से घिरा हुआ पाओ जहां से बाहर निकलना तुम्हारे लिए असम्भव हो जाये तो तुम्हारे हृदय से एक पुकार उठती है जो अभीप्सा का रूप लेकर भगवान् की सहायता को पुकारती है। तब उनकी करुणामयी कृपा

जुलाई 2005

तुम्हारी मदद करने आ जाती है। कभी तुम्हारे अपने मन से ही समस्या का समाधान आ जाता है किन्तु प्रेरणा देती है भागवत कृपा, कभी कोई मित्र सुझाव देता है तो वह भी कृपा के द्वारा ही आता है। तुम्हें कभी न भूलना चाहिये कि सच्ची प्रार्थना के बाद जो भी सुझाव आये वह भी कृपा की अनुकम्पा के कारण ही आता है। एक बार मुसीबतों से मुक्त हो जाओ तो भूलो मत कि कृपा ने तुम्हें उबारा है। हमेशा कृतज्ञ बने रहो। मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि वह सोचता है, 'मैंने समस्या सुलझाई' और फिर वह कृपा को भूल ही जाता है।

"यही कारण है कि तुम बार-बार मुसीबत में पड़ जाते हो, बार-बार कठिनाइयाँ आती हैं क्योंकि 'मैंने सुलझाया', 'मैं समर्थ हूँ', इस तरह के अहम्-केन्द्रित विचार कृपा के लिए दरवाजा बन्द कर देते हैं।"

आगे चलकर माताजी कहती हैं, "सच्चा और सत्यनिष्ठ बने रहना कठिन है... इसीलिए तुम पर अनेक प्रहार, आघात पड़ते रहते हैं, कभी-कभी वे भयंकर भी होते हैं... ऐसा होना अनिवार्य है क्योंकि उन प्रहारों, आघातों के बिना तुम्हारी जड़ता टूटती ही नहीं!"

माताजी आखिर मां हैं, अपने बच्चों को इन मुसीबतों, कठिनाइयों से कैसे बचाया जाये और साथ ही उनकी जड़ता को कैसे तोड़ा जाये, उसका भी वे उपाय बताती हैं, वे कहती हैं, "तुम जो भी काम करो, उसे भगवान् के अर्घ्य, अर्पण के रूप में करो। इसी भावना से कार्य करो तो काम कैसा है इसका कोई महत्त्व नहीं रहता..."

यह पढ़कर मेरा मन वर्षों पहले हुई एक घटना की ओर देखने लगा। एक महिला का काम था कई कमरों को बुहारना। एक विशेष उत्सव—दर्शन दिवस—पर वे बहुत बीमार पड़ गयीं। उनका हृदय रो रहा था, वे सोच रही थीं, 'आज भगवान् के दर्शन से मैं वञ्चित रहूंगी।' और उनकी आंखों में सावन-भादों उतर आया। थोड़ी देर

बाद आंखें पोंछी और कमरे की ओर ताका तो वे भाव-विभोर होकर देखती ही रह गयीं। उनके आसपास जितने लोग थे वे सब भगवान्-स्वरूप बन गये थे। कृतज्ञता के शीतल आंसू उनकी आंखों से बरसने लगे। मुझे लगा उन्होंने निश्चित रूप से अपना अतिक्षुद्र काम भगवान् के अर्पण करके ही किया होगा।

किसी ने माताजी से पूछा होगा कि उस पर इतनी कठिनाइयाँ क्यों आती हैं, तो माताजी ने उत्तर दिया, “काम में कठिनाइयाँ परिस्थिति या छोटी-मोटी घटनाओं के कारण नहीं आतीं। ये सब कष्ट तुम्हारे अपने मनोभावों में किसी अशुद्धि, असत्य के कारण आते हैं, विशेषकर प्राण का रवैया, अहम् भावना और महत्त्वाकांक्षा उसके कारण होते हैं। इस तरह के असामञ्जस्य को सुधारने के लिए अपने अन्दर उसके कारण को ढूँढो...।”

किसी अन्य व्यक्ति को माताजी ने काम करने की श्रेष्ठ वृत्ति, मनोभाव अपनी मधुर शैली में समझाया, “प्रेम से किया गया काम बहुत अच्छा होता है क्योंकि प्रेम सबसे शक्तिशाली यन्त्र है; उसकी बदौलत तुम जो भी काम करो वह सम्पूर्ण और शक्ति से भरा हुआ होता है।”

काश, हम प्रत्येक कार्य को प्रेम से कर पाते!! और वह भी निःस्वार्थ भावना से! तब जैसा कि कई सन्त कहते हैं, भगवान् हमारे साथ-साथ चलते रहेंगे!! तब जीवन कितना मधुर, आश्चर्यजनक और परिपूर्ण हो जायेगा!!

—अनुबेन

दैनन्दिनी

जुलाई

१. ठीक दिशा में किये गये प्रयास सभी विघ्न-बाधाओं को दूर कर देते हैं।
२. हम अपने प्रयास में स्थिर और निश्चय में शान्त और दृढ़ रहें तो अवश्य ही लक्ष्य तक जा पहुंचेंगे।
अपने निश्चय में दृढ़ रहो, सब कुछ ठीक हो जायेगा।
३. भगवान् ने मनुष्य को दुष्ट नहीं बनाया, स्वयं मनुष्य अपने-आपको भगवान् से अलग करके दुष्ट बना लेता है।
४. नम्रता और सच्चाई सबसे अच्छे रक्षक हैं, उनके बिना एक-एक पग खतरनाक है, उनके साथ विजय निश्चित है।
५. तूफान समुद्र की सतह पर ही है, गहराइयों में सब कुछ अचञ्चल है।
६. तुम्हें कठिनाइयों के बीच भी स्थिर और अचञ्चल रहना सीखना चाहिये, सभी बाधाओं पर विजय पाने का यही तरीका है।
७. शोक मत करो, मानव प्रेम अस्थायी है, केवल भागवत प्रेम कभी धोखा नहीं देता।
८. जब मनुष्य यह समझ लेंगे कि भगवान् उनकी अपेक्षा कहीं ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि उनके लिए उत्तम क्या है, तब उनकी बहुत-सी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी।
९. अगर भगवान् तुम्हारे लिये कोई कठिनाई चाहते हैं तो विरोध मत करो, उसे आशीर्वाद के रूप में लो और वह सचमुच आशीर्वाद बन जायेगी।
१०. यह बहुत ही विरल है कि कोई किसी-न-किसी कठिनाई का

सामना किये बिना पूर्ण रूप से भगवान् की इच्छा के प्रति समर्पण कर सके।

११. हम सभी परिस्थितियों में अपना अच्छे-से-अच्छा करें और परिणाम को भगवान् के निश्चय पर छोड़ दें।
१२. पथ लम्बा है, लेकिन आत्म-समर्पण उसे छोटा कर देता है, मार्ग कठिन है पर पूरा भरोसा उसे सरल बना देता है।
१३. सच्चा और निष्कपट आत्म-दान ही मनुष्य को सभी कठिनाइयों और खतरों से बचाता है।
१४. अपने-आपको पूरी तरह भगवान् को दे दो और तुम देखोगे कि तुम्हारे सभी कष्टों का अन्त आ गया है।
१५. अपने-आपको देना—यह अपने-आपको पाने का सबसे अच्छा तरीका है।
१६. जब कठिनाइयां तुम्हें घेर लें तो यह जानो कि भागवत कृपा तुम्हारे साथ है।
१७. जब कभी, अपने जीवन में तुम्हें कठिनाई का सामना करना पड़े तो उसे प्रभु की कृपा के रूप में लो और वह वही बन जायेगी।
१८. आदमी जितना अधिक जानता है उतना ही अधिक अनुभव करता है कि वह कुछ नहीं जानता।
१९. असफलता में, और सफलता में भी भागवत कृपा हमेशा मौजूद रहती है।
२०. भागवत कृपा हमारे साथ है और हमें कभी नहीं छोड़ती, तब भी नहीं जब सब कुछ अन्धकारमय प्रतीत होता है।
२१. हां, भागवत कृपा में श्रद्धा हमेशा उसका हस्तक्षेप लाती है। भगवान् की सहायता हो तो कुछ भी असम्भव नहीं है।
२२. जहां कहीं सच्चाई और सद्भावना होती है, वहीं भगवान् की

जुलाई 2005

ग्नशिखा

के प्रति

करें और

देता है,

है।

कठिनाइयों

म देखेंगे

से अच्छा

वत कृपा

ना करना

वही बन

अनुभव

शा मौजूद

डती, तब

ताती है।

है।

गवान् की

सहायता भी रहती है।

२३. बालक के सरल विश्वास में बड़ी शक्ति होती है।
 २४. जब तुम्हें यह विश्वास हो कि तुमने पूर्ण सच्चाई पा ली है, तो निश्चय ही जानो कि तुम मिथ्यात्व में डूब गये हो।
 २५. सच्चे बनो और आवश्यक हो तो मैं तुम्हारी भूलें हजार बार ठीक करने के लिए भी तैयार हूँ।
 २६. तुम जिसे खोज रहे हो उसे अवश्य पाओगे, यदि तुम पूरी तरह सच्चाई के साथ खोजो, क्योंकि तुम जिसे खोज रहे हो वह तुम्हारे अन्दर ही है।
 २७. भगवान् के बिना जीवन एक दुःखद भ्रान्ति है, भगवान् साथ हों तो सब आनन्द है।
 २८. केवल भगवान् के बारे में ही सोचो और भगवान् तुम्हारे साथ होंगे।
 २९. केवल भगवान् ही वह सहारा है जो कभी निराश नहीं करता।
 ३०. हमारी सारी शक्ति भगवान् के साथ होने से है, उनके साथ हम सब बाधाओं को पार कर सकते हैं।
 ३१. केवल भगवान् में ही हम वह सब पायेंगे जिसकी हमें जरूरत है।
- अपनी समस्याएं भगवान् को सौंप दो और वे तुम्हें कठिनाइयों से बाहर निकाल लेंगे।

श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष

पुनश्च

१९७२ में प्रकाशित यह पुस्तक ऊंचे, आशान्वित तथा प्रत्याशा-भरे स्वर पर समाप्त हो रही है। १९३५ में लिखी श्रीअरविन्द की कविता 'एक देवता का श्रम' (A God's Labour) से लिया गया उद्धरण हमें निश्चित आशा दे रहा है कि श्रीअरविन्द का स्वप्न चरितार्थ होकर रहेगा, माताजी का शरीर "स्वर्णिम और नील परिधान" में रूपान्तरित हो जायेगा। श्रीअरविन्द के शरीर छोड़ने के बाद कार्य तीव्र गति से चलने लगा था। कई साधकों ने अपने शरीर में हो रहे परिवर्तनों से रूपान्तर के कार्य में भाग लेने का अनुभव भी प्राप्त किया था। माताजी ने इसके बारे में विस्तार से लिखा और उसके विषय में कई बार वे बोली भी थीं। तो इस तरह हम प्रसन्नतापूर्वक आशा कर रहे थे कि बस थोड़े समय का प्रश्न है। माताजी सौ वर्ष पूरे करेंगी या उससे भी अधिक समय रहेंगी और एक महिमामण्डित शरीर में दिखाई देंगी।

माताजी पहले की भांति अपने दैनिक कार्यक्रम को उसी शक्ति और उसी तीव्र उत्साह से सवेरे से शाम तक करती रहती थीं। मैं उनका विशेष कृपापात्र बन गया जब वे मेरी पुस्तक "श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष" की पाण्डुलिपि प्रेस में भेजी जाये, उससे पहले सुनने के लिए खुशी से तैयार हो गयीं। १९७२ तक प्रत्येक सन्ध्या, मैं पुस्तक के अंश उनके आगे पढ़ता था। वे पुस्तक से इतनी प्रसन्न थीं कि जब मैंने उसके बारे में उनकी राय पूछी तो उन्होंने तुरन्त एक वाक्य लिख दिया जिसे पुस्तक के पहले पृष्ठ पर जोड़ दिया गया है, वह है, "नीरद के प्रयास से हम श्रीअरविन्द के व्यक्तित्व के अज्ञात पक्ष को उद्घाटित होते देख पाये।" 'श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष' के अतिरिक्त मैंने अपनी अन्य रचनाएं भी उन्हें पढ़कर सुनायी थीं, जैसे 'श्रीअरविन्द के साथ पत्र-व्यवहार' और

जुलाई 2005

श्रीअरविन्द के साथ बातचीत'। 'पत्र-व्यवहार' उनको इतना अच्छा लगा कि उन्होंने अन्त में कहा, "श्रीअरविन्द ने तुम्हें सब कुछ दिया है।" एक बार, मुझे याद नहीं किस सन्दर्भ में माताजी ने मेरी ओर अपना दायाँ हाथ बढ़ाकर कहा, "मेरे हाथ को पकड़ो।" हम दोनों ने एक-दूसरे के हाथ दबाये, फिर उन्होंने मुस्कुराकर पूछा, "कैसा लगा तुम्हें?" मैंने उत्तर दिया, "बहुत मजबूत माताजी," वे खुश हो गयीं।

हठात् सब कुछ बदल गया। उन्होंने कहा था कि उनका शरीर अतिमानसिक शक्ति के प्रभाव में रहनेवाला पहला शरीर होगा। श्रीअरविन्द चाहते थे कि माताजी इस प्रयोग को झेल पायें। माताजी ने इस अतिमानसिक शक्ति के दबाव के प्रति अपने-आपको निःसंकोच भाव से उद्घाटित कर दिया था। और उसका प्रभाव भौतिक यन्त्र—शरीर के ऊपर पड़ने लगा; माताजी बीमार हो गयीं। १९७३ के प्रारम्भिक महीनों से सब काम और साक्षात्कार हठात् बन्द हो गये। माताजी पूर्णरूप से निवृत्ति में चली गयीं, केवल अपने व्यक्तिगत परिचारकों के सिवाय और किसी से नहीं मिलती थीं। चूँकि ये सब गुह्य विद्या के आयाम हैं अतः इनकी व्याख्या करना किसी के लिए भी निरर्थक होगा। हम यही कह सकते हैं कि १९५० में श्रीअरविन्द के प्रस्थान के बाद माताजी भी तेइस वर्ष के आश्चर्यजनक एकाकी परिश्रम के बाद प्रस्थान कर गयीं। अब जब हमारा विशेष सहारा दूर चला गया, हमें काफी हद तक अपने ही प्रयास पर अधिक निर्भर रहना पड़ेगा। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि माताजी की सहायता हमें प्राप्त न होगी। श्रीअरविन्द की न्याईं उन्होंने भी हमें विश्वास और आश्वासन दिया है कि वे हमेशा हमारे साथ रहेंगी। साधकों का सतत अनुभव यही रहा है कि उनकी 'उपस्थिति' उनके साथ है और सक्रिय है। हमें केवल अनथक उत्साह, श्रद्धा और समर्पण से आगे चलते रहना है और माताजी की सहायता अविरत रूप से हमारे साथ बनी रहेगी।

(समाप्त)

—नीरदवरण

श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ना

श्रीमां के वचन :

श्रीअरविन्द : भविष्य के अग्रदूत

श्रीअरविन्द धरती पर पुराने मतों अथवा पुरानी शिक्षाओं के साथ प्रतियोगिता करने के लिए कोई शिक्षा या मत लाने के लिए नहीं आये हैं, वे अतीत को पार करने का तरीका दिखाने और सन्निकट और अनिवार्य भविष्य के लिए मूर्त रूप में मार्ग बनाने आये हैं।

*

श्रीअरविन्द अतीत के नहीं हैं और न इतिहास के ही हैं।

श्रीअरविन्द चरितार्थ होने के लिए आगे बढ़ता हुआ दिव्य 'भविष्य' हैं।

*

तुम्हारी मुख्य भूल यह थी कि तुमने श्रीअरविन्द की शिक्षा को आध्यात्मिक शिक्षाओं में से एक मान लिया—और यहां होनेवाले कार्य को भागवत कार्यों के बहुत-से पहलुओं में से एक जाना।...

तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि विश्व-इतिहास में श्रीअरविन्द जिस चीज के प्रतिनिधि हैं, वह कोई शिक्षा नहीं है, कोई अन्तःप्रकाश भी नहीं है; यह सीधा परम प्रभु से आया हुआ निर्णायक कार्य है।

और मैं बस उस कार्य को पूरा करने की कोशिश कर रही हूं।

*

पृथ्वी के इतिहास के आरम्भ से ही श्रीअरविन्द ने किसी-न-

जुलाई 2005

किसी रूप में, किसी-न-किसी नाम से हमेशा पृथ्वी के महान् रूपान्तरों का सञ्चालन किया है।

*

मनुष्य बीते कल की सृष्टि है।

श्रीअरविन्द आगामी कल की सृष्टि—अतिमानसिक सत्ता के आने—की घोषणा करने आये थे।

*

श्रीअरविन्द जगत् को उस भविष्य के सौन्दर्य के बारे में बतलाने आये थे जिसे चरितार्थ करना चाहिये।

वे उस भव्यता की आशा ही नहीं, निश्चिति देने आये थे जिसकी ओर जगत् गति कर रहा है। जगत् एक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना नहीं है, यह एक अद्भुत चीज है जो अपनी अभिव्यक्ति की ओर गति कर रही है।

जगत् को भविष्य के सौन्दर्य की निश्चिति की जरूरत है। और श्रीअरविन्द ने यह आश्वासन दिया है।

*

सम्भवन की शाश्वतता में प्रत्येक अवतार एक अधिक पूर्ण सिद्धि का उद्घोषक और अग्रदूत होता है।

फिर भी लोगों में हमेशा यह वृत्ति रहती है कि भविष्य के अवतारों के विरुद्ध भूतकाल के अवतार की पूजा करें।

अब फिर से श्रीअरविन्द जगत् के सामने आगामी कल की उपलब्धि की घोषणा करने आये हैं; और फिर से उनके सन्देश का उसी तरह विरोध हो रहा है जैसा उनसे पहले आनेवालों का हुआ था।

लेकिन आगामी कल उनके द्वारा प्रकाश में लाये गये सत्य को प्रमाणित करेगा और उनका कार्य पूरा होगा।

*

प्रकृति में एक ऊपर उठनेवाला विकास है जो पत्थर से पौधे में और पौधे से पशु में तथा पशु से मनुष्य में उठता है, चूंकि अभी तक मनुष्य ही इस उठते हुए विकास की अन्तिम सीढ़ी है, वह समझता है कि इस आरोहण में वही सबसे ऊंचा स्तर है और यह मानता है कि धरती पर उससे ऊंचा कुछ हो ही नहीं सकता। लेकिन यह उसकी भूल है। अपनी भौतिक प्रकृति में वह अभी तक पूरा-पूरा पशु है, एक विचारशील और बोलनेवाला पशु है, फिर भी, अपने भौतिक अभ्यासों और सहज बोधों में पशु है। निःसन्देह, प्रकृति ऐसे अपूर्ण परिणामों से सन्तुष्ट नहीं हो सकती। वह एक ऐसी सत्ता को लाने के लिए प्रयत्नशील है जो मनुष्य की तुलना में वैसा ही होगा जैसा मनुष्य पशु की तुलना में, वह ऐसी सत्ता होगी जो अपने बाहरी रूप में तो मनुष्य ही होगी, लेकिन उसकी चेतना मन तथा उसकी अज्ञान की दासता से बहुत ऊंची उठ जायेगी।

श्रीअरविन्द धरती पर मनुष्य को यही सत्य सिखाने के लिए आये थे। उन्होंने कहा कि मनुष्य केवल एक संक्रमणशील सत्ता है जो मानसिक चेतना में निवास करता है, लेकिन उसमें एक नयी चेतना, सत्य-चेतना प्राप्त करने की सम्भावना है। वह पूरी तरह सामञ्जस्यपूर्ण, शिव, सुन्दर, सुखी और पूर्णतः सचेतन जीवन जीने के योग्य होगा। अपने सारे पार्थिव जीवन में श्रीअरविन्द ने अपना पूरा समय अपने अन्दर उस चेतना को स्थापित करने में लगाया जिसे उन्होंने अतिमानस का नाम दिया है, और जो लोग उनके ईर्द-गिर्द इकट्ठे थे उन्हें सहायता दी कि वे भी इसे पा सकें।...

जुलाई 2005

तुम्हें यह बहुत बड़ा लाभ है कि तुम बहुत छोटी अवस्था में ही आश्रम में आ गये हो, यानी, अभी नमनीय अवस्था में आये हो जिसे नये आदर्श के अनुसार गढ़ा जा सकता है और तुम नयी जाति के प्रतिनिधि बन सकते हो। यहां आश्रम में तुम वातावरण, प्रभाव, शिक्षा और उदाहरण की दृष्टि से अच्छी-से-अच्छी अवस्था में हो ताकि तुम्हारे अन्दर यह अतिमानसिक चेतना जगायी जा सके और तुम उसके विधान के अनुसार बढ़ सको।

अब, सब कुछ निर्भर है तुम्हारे संकल्प और तुम्हारी सचाई पर। अगर तुम्हारे अन्दर यह संकल्प है कि अब और सामान्य मानवजाति के होकर न रहोगे, अब और विकसित पशु बनकर न रहोगे; अगर तुम्हारा संकल्प है कि नयी जाति के मनुष्य बनकर श्रीअरविन्द के अतिमानसिक आदर्श को चरितार्थ करोगे, एक नयी धरा पर नया और उच्चतर जीवन जिओगे तो तुम अपना अभीष्ट उद्देश्य पाने के लिये यहां समस्त आवश्यक सहायता पाओगे, तुम अपने आश्रम में रहने का पूरा-पूरा लाभ उठाओगे और अन्ततः, संसार के लिए जीते-जागते उदाहरण बनोगे।

श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ना

... बहुत कम हैं ऐसे जो जीवन को, उसके उद्देश्य तथा उसके लक्ष्य को समझना चाहते हैं। उनके पढ़ने के लिए श्रीअरविन्द की पुस्तकें ही सबसे अच्छी हैं।

तुम धरती पर आये हो अपने-आपको जानना सीखने के लिए। श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ो और सावधानी से अपने अन्दर जितनी गहराई में जा सकते हो, जाओ।

*

रही बात श्रीअरविन्द की चीजें पढ़ने की, तो इन्हें पढ़ना हमारे लिए भविष्य के द्वार खोल देता है।

*

सबसे अच्छी बात जो हम कर सकते हैं वह यह है : उन्होंने (श्रीअरविन्द ने) हमसे जो कुछ कहा है उसका अध्ययन करें और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें।

यह चीज जीवन को उसका असली अर्थ देती है और हमें सभी बाधाओं पर विजय पाने में सहायता देगी।

हम नयी सृष्टि के लिए जियें तो हम युवा और प्रगतिशील रहकर बलवान्, और अधिक बलवान् होते जायेंगे।

*

अगर तुम ध्यान से श्रीअरविन्द की चीजें पढ़ो तो तुम जो कुछ जानना चाहते हो सबका उत्तर पा लोगे।

*

श्रीअरविन्द ने सभी विषयों पर जो कुछ कहा है उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से तुम आसानी से इस संसार की सभी चीजों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हो।

*

आध्यात्मिक अनुशासन के लिए तैयार हो जाने की प्रतीक्षा करते हुए, मुझे माताजी से इस निद्रा में से बाहर निकालने और अपनी चैत्य चेतना को जगाने की प्रार्थना करने के अतिरिक्त, और क्या करना चाहिए?

जुलाई 2005

अपनी बुद्धि को विकसित करने के लिए नियमित रूप से और बड़े ध्यान के साथ श्रीअरविन्द की कृतियां पढ़ो। अपने प्राण को विकसित करने और उसपर प्रभुत्व पाने के लिए, कामनाओं को जीतने के संकल्प के साथ ध्यान से अपनी गतियों और प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करो, और अपने चैत्य पुरुष को पाने और उसके साथ एक होने के लिए अभीप्सा करो। भौतिक रूप से, तुम जो कर रहे हो उसे करना जारी रखो, अपने शरीर को विधिवत् विकसित करो और उसपर अधिकार प्राप्त करो, क्रीड़ांगण में और अपने काम के स्थान पर कार्य द्वारा अपने-आपको उपयोगी बनाओ, और यह सब जितना बने निःस्वार्थ रूप से करो।

*

श्रीअरविन्द की सेवा में पूरी सचाई के साथ अपना मन अर्पण करने के लिए, क्या यह जरूरी नहीं है कि एकाग्रता की शक्ति को बहुत विकसित किया जाये? क्या आप मुझे बतलायेंगी कि इस बहुमूल्य क्षमता को विकसित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?

एक समय निश्चित कर लो जब तुम हर रोज शान्त-स्थिर हो सको।

श्रीअरविन्द की कोई एक पुस्तक ले लो। दो-एक वाक्य पढ़ो। तब गहरा अर्थ समझने के लिए नीरव और एकाग्र रहो। काफी गहराई में एकाग्र होने की कोशिश करो ताकि तुम मानसिक नीरवता पा सको, और फिर, जबतक कोई परिणाम न मिल जाये तबतक इसी तरह रोज करते रहो।

स्वभावतः तुम्हें सो न जाना चाहिये।

*

श्रीअरविन्द के ग्रन्थ कैसे पढ़ें

मधुर मां, आपकी और श्रीअरविन्द की पुस्तकों को किस तरह पढ़ा जाये ताकि वे केवल मन के द्वारा समझ में आने को जगह हमारी चेतना में प्रवेश कर जायें?

मेरी किताबें पढ़ना मुश्किल नहीं है, क्योंकि वे बहुत सरल, लगभग बोलचाल की भाषा में लिखी गयी हैं। उनसे लाभ उठाने के लिए इतना काफी है कि उन्हें ध्यान और एकाग्रता के साथ, आन्तरिक सद्भावना की वृत्ति से, उनमें जो शिक्षा दी गयी है उसे ग्रहण करने और जीवन में उतारने की इच्छा से पढ़ा जाये।

श्रीअरविन्द ने जो लिखा है उसे समझना कुछ ज्यादा कठिन है क्योंकि अभिव्यञ्जना बहुत ज्यादा बौद्धिक है और भाषा बहुत अधिक साहित्यिक और दार्शनिक। मस्तिष्क को उनकी बात ठीक तरह समझने के लिए तैयारी की जरूरत होती है और साधारणतः तैयारी में समय लगता है। अगर कोई विशेष प्रतिभावाला है, जिसमें सहजात अन्तर्भास की क्षमता हो तो और बात है।

बहरहाल, मैं हमेशा यह सलाह देती हूं कि एक बार में थोड़ा-सा पढ़ो, मन को जितना शान्त रख सकते हो रखो, समझने की कोशिश न करो, दिमाग को जहांतक हो सके मौन रखो, और जो तुम पढ़ रहे हो उसमें जो शक्ति है उसे अपने अन्दर गहराइयों में प्रवेश करने दो। शान्त-स्थिरता और नीरवता में ग्रहण की गयी यह शक्ति अपनी ज्योति का काम करेगी और, अगर जरूरत हुई तो, मस्तिष्क में इसे समझने के लिए आवश्यक कोषाणु पैदा करेगी। इस तरह, जब तुम उसी चीज को कुछ महीनों के बाद दोबारा पढ़ते हो तो तुम्हें लगता है कि उसमें व्यक्त किया गया विचार बहुत ज्यादा

जुलाई 2005

स्पष्ट और निकट, और कभी-कभी बहुत परिचित हो गया है।

ज्यादा अच्छा यह है कि नियमित रूप से पढ़ो, रोज थोड़ा-सा पढ़ो और हो सके तो एक निश्चित समय पर; इससे मस्तिष्क के लिए ग्रहण करना आसान हो जाता है।

*

साधारण और लगभग पूर्ण रूप से, यदि कोई श्रीअरविन्द के ग्रन्थों के पाठ से सचमुच लाभ उठाना चाहे,... तो उसका सबसे उत्तम तरीका यह है : अपनी चेतना को एकत्रित करके अपने ध्यान को पाठ्य-विषय पर जमा दो और थोड़ी-सी मानसिक समता स्थापित करो—यदि तुम पूर्ण निश्चल-नीरवता स्थापित कर सको तो वह सबसे अच्छी बात है—और मन की स्थिरता, मस्तिष्क की स्थिरता की एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाओ कि तुम्हारा ध्यान दर्पण की तरह शान्त और स्थिर, पूर्णतः शान्त जल की सतह के जैसा बन जाये। उस स्थिति में पढ़ी हुई चीज उस सतह को पार कर सत्ता की गहराई में पैठ जाती है जहाँ वह कम-से-कम विकृति के साथ गृहीत होती है; और उसके बाद, कभी-कभी दीर्घकाल के बाद, वह उन गहराइयों से ऊपर फूट निकलती है तथा मस्तिष्क में अपनी पूरी बोध-शक्ति के साथ प्रकट होती है—बाहर से प्राप्त किसी ज्ञान की तरह नहीं, वरन् एक ज्योति की तरह जिसे मनुष्य अपने अन्दर वहन करता है।

इस प्रकार समझने की शक्ति अपने शिखर पर होती है। परन्तु पढ़ने के समय यदि तुम्हारा मन चञ्चल रहता है तथा जो कुछ पढ़ा जाता है उसके विषय में तर्क करने तथा उसे तुरन्त समझ लेने की चेष्टा करता है तो तुम उन शब्दों में निहित शक्ति, ज्ञान तथा सत्य का तीन-चौथाई से भी अधिक भाग खो देते हो। और आत्मसात् करने तथा अन्तर में जाग्रत् होने की यह प्रक्रिया पूरी हो जाने के

बाद यदि तुम प्रश्न करना आरम्भ करो तो तुम देखोगे कि पढ़ने योग्य बहुत ही कम बातें हैं, क्योंकि पढ़ी हुई चीज को तुम अधिक अच्छी तरह समझ चुके हो।

*

श्रीअरविन्द की चीजों का अध्ययन पुस्तकों से नहीं, विषयवार करना चाहिये—यह कि उन्होंने भगवान्, एकता, धर्म, विकास-क्रम, शिक्षा, आत्म-सिद्धि, अतिमानस, आदि-आदि के बारे में क्या कहा है।

*

अगर तुम यह जानना चाहो कि श्रीअरविन्द ने अमुक विषय पर क्या कहा है तो तुम्हें कम-से-कम वह सब तो पढ़ना ही चाहिये जो उन्होंने उस विषय पर लिखा है। तब तुम देखोगे कि उन्होंने ऊपरी तौर पर बहुत अधिक परस्पर-विरोधी बातें कही हैं। लेकिन जब तुम सब कुछ पढ़ लो और थोड़ा-बहुत समझ लो तो देखोगे कि सभी विरोध एक-दूसरे के पूरक हैं और उन्हें सम्पूर्ण समन्वय में व्यवस्थित और एकीकृत किया गया है।

*

किसी अध्ययन-दल के लिए दिया गया कार्यक्रम :

१. प्रार्थना (श्रीअरविन्द और माताजी, अपनी शिक्षा को समझने के हमारे इस प्रयास में हमें सहायता प्रदान कीजिये।)
२. श्रीअरविन्द की कोई पुस्तक पढ़ना।
३. क्षणभर मौन।

जुलाई 2005

४. जो भी चाहे पढ़े हुए पाठ के विषय में एक प्रश्न करे।
 ५. प्रश्न का उत्तर।

६. सामान्य वाद-विवाद बिलकुल नहीं।

यह एक दल की बैठक नहीं है, श्रीअरविन्द की पुस्तकें पढ़ने के लिए एक कक्षा मात्र है।

*

विद्यार्थियों के सामने श्रीअरविन्द के ग्रन्थ प्रस्तुत करना

... जरूरी बात यह है कि श्रीअरविन्द की चीजें विद्यार्थियों के सामने चबायी हुई और आधी जीर्ण अवस्था में न आयें। अध्यापक मूल्यांकन के सभी तत्त्व बता सकता है, लेकिन बच्चों का सीधा सम्पर्क होना चाहिये। उन्हें बोध का आनन्द मिलना चाहिये। अध्यापक को इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि वह श्रीअरविन्द की महान् चेतना और विद्यार्थी के मन के बीच परदा बन बाधक न हो।

*

श्रीअरविन्द के जन्म तक, धर्म और अध्यात्म के पन्थ हमेशा भूतकालीन व्यक्तियों पर आधारित थे और वे “जीवन का लक्ष्य” बताते थे धरती से जीवन के विलय को। तो, तुम्हारे सामने दो विकल्प होते थे: या तो

—इस जगत् में ऐसा जीवन जो तुच्छ विलास और पीड़ा, सुख-दुःख का चक्कर होगा और ठीक तरह व्यवहार न करने से नरक का भय रहेगा, या

—यहां से किसी और लोक में बच निकलना स्वर्ग, निर्वाण, मोक्ष...

इन दोनों में से चुनने लायक कुछ भी नहीं है, दोनों समान रूप से खराब हैं।

श्रीअरविन्द ने हमें बतलाया है कि यही वह आधारभूत भूल थी जो भारत की दुर्बलता और उसके पतन के लिए जिम्मेदार है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, मायावाद देश की समस्त जीवनी शक्ति को सुखा देने के लिए काफी थे।...

यह सच है कि आज धरती पर भारत ही एकमात्र देश है जिसे इस बात का भान है कि 'जड़-द्रव्य' के अलावा और भी किसी चीज की सत्ता है। अन्य देश—यूरोप, अमरीका आदि—इसे बिलकुल भूल चुके हैं। इसीलिये सन्देश अभी तक उसी के पास है, उसे इसे सुरक्षित रखना और दुनिया तक पहुंचाना है। लेकिन अभी तो वह अव्यवस्था में बिखर और छटपटा रहा है।

श्रीअरविन्द ने बतलाया है कि सत्य सांसारिक जीवन से भागने में नहीं, उसके अन्दर रहकर, उसे रूपान्तरित करने और उसे दिव्य बनाने में है ताकि भगवान् यहां, भौतिक जगत् में अभिव्यक्त हो सकें।

तब, जब यह बात स्पष्ट, जोरदार शब्दों में कह दी जाये, और उसके बारे में कोई शंका न रहे—और केवल तभी—तुम आगे बढ़कर धर्मों या धार्मिक तथा आध्यात्मिक नेताओं का इतिहास बच्चों को सुना सकते हो।...

श्रीअरविन्द के ग्रन्थों से उत्तर कैसे पाया जाये

एक या दो बार, बस खेल-ही-खेल में आपने अपनी या श्रीअरविन्द की कोई पुस्तक ली और सहसा एक पृष्ठ खोल लिया और एक वाक्य पढ़ा। क्या ये वाक्य किसी व्यक्ति को कोई संकेत या कोई निर्देशन दे सकते हैं? सच्चा उत्तर पाने के लिए हमें क्या करना चाहिये?

प्रत्येक व्यक्ति इसे कर सकता है। यह इस तरह किया जाता है : तुम एकाग्र होओ। अब, वह निर्भर करता है इस बात पर कि तुम क्या चाहते हो। यदि तुम्हारे सामने कोई आन्तरिक समस्या है और तुम उसका समाधान चाहते हो तो तुम उस समस्या पर एकाग्र होओ; यदि तुम यह जानना चाहते हो कि तुम किस स्थिति में हो, और जिसे तुम नहीं जानते, और तुम जिस अवस्था में हो उसपर थोड़ा प्रकाश पाना चाहते हो, तो तुम बस सरलता के साथ जरा आगे आओ और प्रकाश के लिए प्रार्थना करो। अथवा, बिलकुल सरल रूप में, यदि तुम यह जानने के लिए उत्सुक हो कि अदृश्य ज्ञान तुमको क्या बतलाना चाहता है, तुम एक क्षण के लिए नीरव और स्थिर बने रहो और फिर पुस्तक खोलो। मैं सर्वदा इसके लिए एक कागज-तराश (Page knife) लेने की सलाह दिया करती हूँ क्योंकि वह अधिक नुकीला होता है; जब तुम एकाग्र होओ उसे तुम पुस्तक के अन्दर डाल दो और वह अपनी नोक से किसी चीज को सूचित करेगा। तब, यदि तुम्हें मालूम हो कि एकाग्र कैसे हुआ जाता है, अर्थात् यदि तुम सचमुच कोई उत्तर पाने की अभीप्सा के साथ इसे करो तो उत्तर हमेशा आता है।

कारण, इस प्रकार की पुस्तकों में (श्रीमाताजी 'योग-समन्वय'

पुस्तक दिखाती हैं), दिव्य ज्ञान की पुस्तकों में, सर्वदा शक्तियों का—कम-से-कम उच्चतर मानसिक शक्तियों का—और अधिकांशतः उच्चतम ज्ञान की आध्यात्मिक शक्तियों का एक पुञ्ज होता है। प्रत्येक ग्रन्थ, उसमें विद्यमान शब्दों के कारण, इन शक्तियों के एक छोटे-से सञ्चयकर्ता के समान होता है। लोग इसे जानते नहीं, क्योंकि वे इसका उपयोग करना नहीं जानते, पर बात ऐसी ही है। उसी तरह, प्रत्येक तस्वीर (फोटोग्राफ) में, जिस व्यक्ति की वह तस्वीर है उसकी शक्ति का, उसके स्वभाव का और, यदि उसमें आध्यात्मिक सामर्थ्य हो तो उसकी सामर्थ्यों का प्रतिनिधि-रूप एक शक्ति-पुञ्ज, एक छोटा-सा शक्ति-पुञ्ज होता है। अब, यदि तुम सच्चे हो और तुममें कोई अभीप्सा है तो तुम एक विशेष प्रकम्पन को, अपनी अभीप्सा के प्रकम्पन को बाहर निकालते हो जो बाहर जाता है और पुस्तक में विद्यमान अपने से मिलती-जुलती शक्ति से मिलता है, और वहां एक उच्चतर चेतना होती है जो तुम्हें उत्तर प्रदान करती है।...

जो कुछ हम पढ़ते हैं उसे पढ़ने और समझने का सर्वदा ही एक तरीका होता है और वही तुम जो कुछ चाहते हो उसका उत्तर देता है। यह ठीक कोई संयोग या तमाशा नहीं होता, न यह एक प्रकार का दिलबहलाव ही होता है। तुम इसे “यूं ही” कर सकते हो, और तब कुछ भी नहीं होता। तुम्हें कोई उत्तर नहीं मिलता और वह दिलचस्प नहीं होता। परन्तु तुम यदि उसे गम्भीरतापूर्वक करो, हां गम्भीरतापूर्वक, तुम्हारी अभीप्सा इस यन्त्र पर (यह एक बैटरी की तरह है, है न, जिसमें शक्ति भरी होती है) एकाग्र होने की चेष्टा करती है, उस शक्ति से सम्पर्क करने का यत्न करती है जो वहां विद्यमान होती है और जो कुछ वह जानना चाहती है उसका उत्तर पाने के लिए आग्रह करती है; हां, स्वभावतः, जो शक्ति वहां होती है—दो शक्तियों का मिलन, एक तो वह शक्ति जिसे तुम बाहर निकालते

जुलाई 2005

ग्नशिखा

हो और दूसरी वह जो पुस्तक में सञ्चित होती है—तुम्हारे हाथ और तुम्हारे कागज-तराश को या जो कुछ तुम्हारे हाथ में होता है उसको ले जाती है; ठीक उस चीज के पास ले जाती है जो उस बात को प्रकट करती है जो तुम्हें जाननी चाहिये...; स्पष्ट ही, यदि कोई इसे सच्चाई या विश्वास के बिना करता है तो एकदम कुछ नहीं आता। यदि इसे सच्चाई के साथ किया जाता है तो उत्तर आता है।...

स्वभावतः ही, उत्तर का मूल्य निर्भर करता है उस आध्यात्मिक शक्ति पर जो उस पुस्तक में है। यदि तुम कोई उपन्यास ले लो तो वह तुम्हें मूर्खताओं के सिवा एकदम कुछ नहीं बतायेगा। परन्तु यदि तुम कोई ऐसी किताब लो जिसमें शक्तियाँ घनीभूत हों—ज्ञान या आध्यात्मिक शक्ति या प्रशिक्षण की शक्ति का घनीभूत रूप हो—तो तुम्हें उत्तर मिल जायेगा।

*

तुम कहते हो कि तुमने हमारी पुस्तकें पढ़ी हैं, फिर भी पहले जैसे अज्ञानी हो; इस पढ़ने से तुम्हारे जीवन में कोई फर्क नहीं आया, इसलिए यह पढ़ना बेकार था। लेकिन पढ़ने के बाद तुम इतना तो जान ही गये हो कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है। अभी तक तुम्हारा आन्तरिक सम्बन्ध इतना बलवान् नहीं हुआ है कि वह तुम्हारे जीवन पर क्रिया कर सके। एक दिन वह सबल हो जायेगा और तुम्हारे ऊपर सशक्त रूप से प्रभाव डालेगा। लेकिन अगर तुमने यह सब पढ़ा ही न होता तो तुम्हें यह पता न लगता कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। तुम बस इतना ही कहते : 'मुझे पता नहीं', और स्थिति ज्यादा खराब होती।

—श्रीमां

बौद्धिक तैयारी

कोई-कोई विषय इतने अधिक कठिन क्यों होते हैं?

ऐसा बहुत-सी चीजों के कारण होता है—मस्तिष्क की बनावट के कारण, पूर्वजों की प्रवृत्ति के कारण, शिक्षा के प्राथमिक वर्षों के कारण, विशेषकर पूर्वजों की प्रवृत्ति के कारण। परन्तु इसमें एक बहुत ही मजेदार बात है; प्रत्येक नवीन विचार मस्तिष्क में एक प्रकार की छोटी-सी कुण्डली बना देता है, और उसमें थोड़ा समय लगता है। हां, तो तुमसे कोई बात कही जाती है जिसे तुमने पहले कभी नहीं सुना था; तुम सुनते हो, परन्तु वह तुम्हारी समझ में नहीं आती, वह तुम्हारे मस्तिष्क में नहीं घुसती। परन्तु यदि तुम थोड़े दिन बाद उसी बात को दूसरी बार सुनते हो तो उसका कुछ अर्थ समझ में आता है। इसका कारण यह है कि नवीन विचार के आघात ने तुम्हारे मस्तिष्क में थोड़ा-सा काम किया है और समझने के लिए जो कुछ आवश्यक था ठीक उसे तैयार कर दिया है। और वह केवल अपने-आपको गढ़ता ही नहीं, बल्कि अपने-आपको पूर्णत्व भी प्रदान करता है। यही कारण है कि यदि तुम कोई कठिन पुस्तक पढ़ो तो छः महीने या एक वर्ष के बाद तुम उसे पहली बार पढ़ने की अपेक्षा अनन्तगुना अच्छे रूप में, और, कभी-कभी बहुत भिन्न रूप में, समझोगे। यह कार्य तुम्हारी सक्रिय चेतना के हिस्सा लिये बिना तुम्हारे मस्तिष्क में होता रहता है।...

जो वस्तु आघात उत्पन्न करती है वह मस्तिष्क है या विचार की उपस्थिति?

नहीं, वह चीज चेतना है। अधिकतर लोगों को इसका पता नहीं होता,

जुलाई 2005

पर वह प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर सारे समय काम करती रहती है।

हम निश्चल-नीरवता में सुनना कैसे सीख सकते हैं?

यह ध्यानपूर्वक सुनने का विषय है। यदि तुम अपने ध्यान को उस बात पर एकाग्र करो जो कही जा रही है और उसे ठीक-ठीक समझने का संकल्प भी बनाये रखो तो निश्चल-नीरवता अपने-आप उत्पन्न हो जाती है—हमारा ध्यान ही निश्चल-नीरवता को पैदा करता है।

*

अच्छा मानसिक यन्त्र तैयार करने के लिए, जो विशाल, नमनीय और समृद्ध हो, बौद्धिक शिक्षण अनिवार्य है, लेकिन उसका कार्य बस वहीं पर समाप्त हो जाता है।

मन से ऊपर उठने में वह सहायक होने की जगह अधिकतर बाधक ही होता है क्योंकि साधारणतः परिष्कृत और शिक्षित मन अपने-आपसे सन्तुष्ट रहता है और ऐसा विरल ही होता है कि वह अपने-आपको चुप करने की कोशिश करे ताकि उसका अतिक्रमण किया जा सके।

*

मैं जब चैत्य पुरुष अथवा अध्यात्म के विषय में कुछ कहती हूँ तो मेरा अभिप्राय उन वस्तुओं से होता है जो शब्दों की नीरव सतह के पीछे अत्यन्त गभीर और वास्तविक हैं, और अपनी पृथक्ता में भी अन्तरंग सम्बन्ध रखती हैं। बौद्धिक व्याख्याएं और विवेचन इतने अधिक बाह्य और कठोर होते हैं कि वे वस्तुओं के वास्तविक सत्य को नहीं पकड़ सकते।

*

मधुर मां,

बहुत बार जब मैं श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ता या उनके वचन सुनता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है कि यह शाश्वत सत्य, अभिव्यञ्जना की यह सुन्दरता लोगों की पकड़ से कैसे निकल जाती है! यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि उन्हें अभीतक कम-से-कम परम सर्जक, शुद्ध कलाकार, अत्युत्कृष्ट कवि के रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया जाता! इसलिए मैं अपने-आप से कहता हूँ कि मेरी परख, मेरे मूल्यांकन प्रभु के प्रति अपनी भक्ति से प्रभावित हैं—और हर एक उनका भक्त नहीं है। मुझे नहीं लगता कि यह बात सच्ची है। लेकिन तब लोगों के हृदय अभीतक उनके वचनों से मन्त्र-मुग्ध क्यों नहीं हुए?

श्रीअरविन्द को कौन समझ सकता है? वे इतने विशाल हैं जितना यह विश्व और उनकी शिक्षा असीम है...।

उनके जरा निकट आने का एकमात्र तरीका है उनके साथ सचाई से प्यार करना और अपने-आपको निःसंकोच भाव से उनके काम के अर्पण करना। इस भांति हर एक अपना अच्छे-से-अच्छा करता है और श्रीअरविन्द ने जगत् के जिस रूपान्तर की भविष्यवाणी की है उसके लिए भरसक योगदान देता है।

*

मेरी प्यारी मां,

मैं तत्त्वमीमांसा और नीति-शास्त्र का बाकायदा अध्ययन करना चाहता हूँ। मैं 'लाइफ डिवाइन' पढ़ने की भी सोच रहा हूँ।

अगर तुम तत्त्वज्ञान और नीतिशास्त्र पढ़ो तो अपने मस्तिष्क को

जुलाई 2005

घोड़ा व्यायाम देने के लिए मानसिक जिम्नास्टिक्स के रूप में पढ़ो, लेकिन इस तथ्य को कभी आंख से ओझल न होने दो कि यह ज्ञान का स्रोत नहीं है और इस तरीके से आदमी ज्ञान के नजदीक नहीं पहुंच सकता। स्वभावतः 'लाइफ डिवाइन' के लिए यह बात नहीं है।...

*

क्या आपको लगता है कि पढ़ाई मेरी साधना में सहायता करती है?

यह मन और प्राण दोनों के लिए अच्छा अनुशासन है।

*

... जो कुछ श्रीअरविन्द ने कहा है उसे यदि तुम याद करो तो तुम समझ जाओगे कि ज्ञान प्राप्त करने की पहली शर्त है तर्क-बुद्धि के परे चले जाना। इसलिए वे कहते हैं : तर्क-बुद्धि सहायक थी—हां, मानवता के समूचे बाल्यकाल में तथा व्यक्ति-सत्ता के सारे विकास-काल में—पर तुम यदि नितान्त मानव-सत्ता, साधारण मानवीय प्रकृति के परे जाना चाहो तो, हां, तुम्हें तर्क-बुद्धि के परे चले जाना होगा; और जो वस्तुएं तुम्हें इतनी स्पष्ट मालूम होती थीं कि उनके विषय में कोई वाद-विवाद नहीं हो सकता था, उन्हें यह समझने में, अपने अन्दर यह अनुभव करने में तुम्हें समर्थ होना चाहिये कि वे सम्पूर्ण रूप में सापेक्षिक हैं और जो चीजें प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव में पूरी तरह एक-सी, अभिन्न दिखायी पड़ती थीं, ठीक वे ही चीजें, एक उच्चतर चेतना के द्वारा ऊपर से देखने पर, एकदम आत्मनिष्ठ और आपेक्षिक बन जाती हैं और व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा चेतना के

अनुरूप केवल व्यक्तिगत रचनाएं होती हैं, और इन रचनाओं में कोई निरपेक्ष सत्य नहीं होता, उसके बदले केवल एकदम सापेक्ष सत्य होता है, जो, जैसे ही तुम एक उच्चतर स्तर पर उठ जाते हो, पूरी तरह विलीन हो जाता है।

अतः अब, यदि तुम ज्योति के नीचे अपने विचार के स्वरूप को देखो तो तुम देखोगे कि इस प्रथम पग को उठाना भी उतना आसान नहीं है।

उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर वे ऊपरी उदाहरण होते हैं, स्वयं अपने-आपमें बहुत आंशिक, और उनका केवल एक पूर्णतः सापेक्षिक मूल्य होता है, जैसा कि यह उदाहरण जिसे मैं बहुत बार तुम्हें दे चुकी हूं... संसार के औषध-ज्ञान के दृष्टिकोण के बारे में : यदि तुम बहुत अधिक अध्ययन कर चुके हो, या काफी लम्बा जीवन बिता चुके हो तो तुम देखते हो कि एक ही प्रमाण, एक ही निश्चयता, एक ही विश्वास के साथ, एक बार जो चीजें न केवल बुरी मानी जाती थीं बल्कि एक अकाट्य ज्ञान, एक निर्विवाद निरीक्षण के आधार पर एक विशेष प्रभाव रखने के लिए विख्यात हो जाती थीं; और दूसरे समय, ठीक वे ही निर्विवाद निरीक्षण नितान्त विपरीत परिणामों पर पहुंचाते हैं। बहुत बार मैं एक दृष्टान्त दिया करती हूं जिसे मैंने संयोगवश देखा था, विशेषकर खाद्य पदार्थों के गुण तथा शरीर पर उनके प्रभाव के विषय में, जैसे कुछ फलों या तरकारियों के गुण-प्रभाव के विषय में : एक विशेष काल में डॉक्टरी विवरण में (अभी इतना समय नहीं हुआ, लगभग पचास या साठ वर्ष पहले), जब किसी को एक विशेष बीमारी होती थी तो डॉक्टर उसे वस्तुओं की एक सूची देता था, उसको पूरी गम्भीरता के साथ सलाह देता था कि इन चीजों में से वह किसी चीज को न छुए, नहीं तो वह और भी अधिक बीमार हो जायेगा... (मैं तुम्हें वह सूची दे सकती हूं, पर

जुलाई 2005

वह मनोरञ्जक नहीं है) — फिर, ठीक उन्हीं चीजों के विषय में, पचास या साठ वर्ष बाद, वही डॉक्टर तो शायद नहीं पर दूसरा, उसी गम्भीरता के साथ, उसी असन्दिग्ध निश्चयता तथा अधिकार के साथ तुमसे कहेगा कि बस, इन्हीं चीजों को तुम्हें खाना होगा यदि तुम नीरोग होना चाहते हो ! अतएव तुमने यदि वस्तुओं का भली-भाँति निरीक्षण किया है और तुम्हारे अन्दर थोड़ी-सी आलोचनात्मक भावना है, तुम अपने-आपसे कह सकते हो : “ओह ! वह तो लोगों पर अथवा सम्भवतः उस युग पर निर्भर करता है।” और मैं वही कहूँगी जो मेरा परिचित डॉक्टर मित्र चालीस या पचास साल पहले फ्रांस में अपने सभी रोगियों से कहा करता था : “वह औषध लो जिसका आजकल फैशन है, क्योंकि इस समय वह तुम्हें नीरोग कर देगी।” बस, यही बात है।

खैर, थोड़े-से विवेक से युक्त एक स्थिति में जिसमें मनुष्य वस्तुओं की इस असाधारण सापेक्षता को समझता है, उस स्थिति में जिसमें यह सापेक्षता इतनी तीव्र हो जाती है कि किसी बात को दावे के साथ कहना, यह कहना कि “यह चीज ऐसी है” अथवा “ऐसी चीज का यह अमुक परिणाम होता है” तुम्हें स्वाभाविक रूप से एक मूर्खता प्रतीत होता है...। परन्तु उस बिन्दु पर पहुँचने से पहले, मनुष्य थोड़ा-सा विचार-चिन्तन करके कह सकता है : आखिरकार, हम किसी विशेष वस्तु पर तबतक विश्वास करते हैं जबतक कि वह फैशन में है।

माताजी, यह प्रश्न इसलिए उठता है कि हम अपने स्कूल की पढ़ाई में कभी-कभी बहुत अधिक अरुचि अनुभव करते हैं और अपने-आपसे कहते हैं : “इस सबका क्या उपयोग है ?” अतः किस मनोभाव के साथ हमें अध्ययन करना चाहिये ?

मैंने हमेशा कहा है कि अध्ययन का मस्तिष्क पर वही प्रभाव पड़ता है जो व्यायाम का मांसपेशियों पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, अपनी मानसिक क्रियाशीलता को सुनम्य, सशक्त और समृद्ध बनाने तथा उसे समझने की एक ऐसी बारीक शक्ति देने के लिए जिसे वह तुम्हारे इन व्यायामों के किये बिना प्राप्त न कर पाती, मानसिक व्यायाम बहुत आवश्यक हैं। अभी कुछ दिन पहले से (निस्सन्देह काफी समय पहले से ही) मैंने ध्यान दिया है, उदाहरण के लिए यदि दुर्भाग्यवश मुझे दार्शनिक शब्दों से भरी कोई चीज तुम्हारे सामने पढ़नी पड़ती है या किञ्चित् दार्शनिक दृष्टिकोण के बारे में तुमसे चर्चा करनी पड़ती है तो तुम समझ नहीं पाते। और इसका कारण बस यह है कि तुमने कोई दार्शनिक व्यायाम नहीं किया है। इसका कारण यह नहीं है कि तुम बुद्धिमान् नहीं हो, इसका कारण यह नहीं है कि तुम्हारे अन्दर समझने की योग्यता नहीं है; बल्कि यह है कि तुमने समुचित व्यायाम नहीं किया है। मैं इसी बात को दूसरे ढंग से कह सकती हूँ, तुमने भाषा नहीं सीखी है। परन्तु वास्तव में उन्हीं शब्दों का व्यवहार किया जाता है, केवल उनके बीच थोड़ा-सा भिन्न सम्बन्ध होता है, वाक्यों का मोड़ कुछ भिन्न होता है, वस्तुओं के प्रति एक प्रकार का भिन्न मनोभाव होता है। परन्तु मनोभाव के इस अन्त को तुम तबतक नहीं पकड़ सकते जबतक कि तुम उसके अनुरूप व्यायाम नहीं कर लेते। और इस दृष्टान्त को समझना तुम्हारे लिए बहुत आसान है, क्योंकि तुम सब बहुत अच्छी तरह जानते हो कि यदि तुम प्रशिक्षित न होओ तो तुम कभी खेल-कूद की क्रियाएं नहीं कर सकते। यदि तुम्हारे अन्दर विशिष्ट क्षमताएं भी हों, यदि तुम स्वाभाविक रूप से प्रतिभासम्पन्न भी होओ, यदि तुम अभ्यास न करो और प्रशिक्षित न होओ, तो तुम उन्हें नहीं कर सकते। ध्यान दो, अपने सभी द्रुत कलाबाजी के व्यायामों पर, यदि पहले ही दिन उन्हें

जुलाई 2005

करने के लिए तुमसे कहा गया होता, तुम नहीं कर सकते थे, वह तुम्हारे लिये एकदम असम्भव होता, और इसे तुम भली-भाँति जानते हो। यदि कोई व्यक्ति सहजभाव से तुमसे कहता : “आह! अब इसे करो”—मान लो, कोई विशेष प्रकार की कूद, जिसे एक समय कलाबाजी¹ कहते थे—तुम कहोगे : “यह आदमी वास्तव में नासमझ है, यह तो असम्भव है!” हाँ, यह वही बात है; यदि मैं अमुक किताबें लूँ और तुम्हारे सामने पढ़ूँ तो तुम उन्हें नहीं समझ सकते क्योंकि तुमने पूर्ण रूप से दार्शनिक-मानसिक व्यायामों की उपेक्षा की है। यह ठीक-ठीक वही बात है कि जिस व्यक्ति ने गणित नहीं किया है, उससे यदि किसी गणित-शास्त्रीय तर्क का अनुसरण करने को कहा जाये तो—वह नहीं कर सकेगा...। और इसलिए, इसका तात्पर्य यह है कि यदि तुम अपनी सत्ता की गभीर सद्वस्तु को पूरी तरह, सर्वांग रूप में प्रकट करना चाहते हो तो तुम उसे तभी बहुत अधिक पूर्ण रूप से, बहुत अधिक विभिन्न रूप में, बहुत अधिक लाभदायी रूप में अभिव्यक्त करोगे जब तुम्हारी सत्ता के सभी भाग अपने समुचित व्यायामों के द्वारा इस ढंग से पूर्णतः विकसित हों।

मैं समझती हूँ मैं तुम्हें यह बात एक बार पहले समझा चुकी हूँ। यदि प्रश्न उस जीवन का होता जो आजतक सच्चा आध्यात्मिक जीवन माना जाता रहा है, अर्थात् समस्त भौतिक क्रियाकलाप को पूर्णतः त्याग देने का होता ताकि परात्पर दिव्य सद्वस्तु के साथ युक्त हुआ जा सके और इस तादात्म्य में बने रहा जा सके, जीवन तथा सभी बाहरी अभिव्यक्ति को त्यागकर निर्वाण में चले जाने, ऐसी तादात्म्य-स्थिति में चले जाने का प्रश्न होता जिसे न केवल जगत् में अब और अभिव्यक्त नहीं किया जायेगा, बल्कि जो तुम्हें पूरी तरह जगत् से बाहर ले जाती है, तब यह स्पष्ट है कि ये सब व्यायाम,

¹ फ्लाइंग समरसॉल्ट

चाहे भौतिक, प्राणिक, ऐन्द्रिय अथवा मानसिक हों, बिलकुल निरर्थक हैं और वे लोग इस सबको केवल समय का अपव्यय और एकदम बेकार समझते थे। परन्तु हम लोगों के लिए जो लगभग उसके ठीक विपरीत वस्तु को सिद्ध करना चाहते हैं, अर्थात्, जो, परम सद्बस्तु के साथ अपना तादात्म्य प्राप्त कर लेने के बाद, उसे जगत् का रूपान्तर करने के लिए जीवन के अन्दर अवतरित कराना चाहते हैं, हम यदि इस सद्बस्तु को ऐसे यन्त्र भेंट करें जो परिमार्जित, क्षमतासम्पन्न सुविकसित और पूर्णतः सचेतन हों तो रूपान्तर का कार्य अधिक फलप्रद होगा।

और यही कारण है कि तुमसे, जब कि तुम एक नन्हें बालक हो, यह कहने के बदले कि तुम वही करो (हंसते हुए) जो कि उन बच्चों से करने के लिए कहा गया है, शान्त-स्थिर बैठ जाओ और ध्यान में डूब जाओ या डूब जाने का दिखावा करो, तुमसे यह कहने के बदले कि तुम्हें सतत ध्यानावस्था में बने रहना तथा जगत् की सभी चीजों के प्रति पूर्णतः उदासीन बने रहना चाहिये, तुम्हें केवल एक ही विचार, भागवत कृपा को ग्रहण करने के लिए अपने-आपको तैयार करने का विचार रखना चाहिये; यह सब कहने के बदले तुमसे कहा जाता है : “नहीं, सुविकसित तथा सचेतन व्यक्ति बनने का प्रयास करो, जो वस्तुओं को जानते-समझते हैं तथा जिन्हें स्वस्थ, सबल, चुस्त तथा असाधारण कार्य करने में सक्षम शरीर, पर्याप्त संकल्प-शक्ति एवं सामर्थ्यवान्, सुनम्य और सक्रिय मन प्राप्त हो; ये सब चीजें भावी सिद्धि के लिए उपयोगी होंगी।”

*

पढ़ाई मन को मजबूत बनाती है और उसकी एकाग्रता को प्राण के आवेगों और कामनाओं से हटाती है। मन और प्राण पर काबू पाने

जुलाई 2005

के तरीकों में से पढ़ाई-लिखाई पर एकाग्र होना एक बहुत शक्तिशाली तरीका है; इसीलिए पढ़ना-लिखना इतना जरूरी है।

जो पढ़ो उसे अभ्यास में लाओ

... उन दिनों क्या हुआ करता था जब छापेखाने नहीं थे, पुस्तकें नहीं थीं और ज्ञान केवल गुरु या दीक्षित व्यक्ति के पास ही हुआ करता था और गुरु पात्र के सिवाय किसी को नहीं देते थे; और उनकी दृष्टि में, सामान्यतः “पात्र” होने का अर्थ था जो कुछ सीखा हो उसे **जीवन में उतारना**। वह तुम्हें एक सत्य देता और आशा करता था कि तुम उसपर आचरण करोगे। और जब तुम उसे आचरण में ले आते तभी वह अगला ज्ञान देने के लिए राजी होता।

अब चीजें बिलकुल और तरह की होती हैं। सब कोई और जो चाहे पुस्तक प्राप्त कर सकता और उसे पूरे-का-पूरा बांच सकता है और उसपर आचरण करने या न करने के बारे में अपनी मरजी मुताबिक पूरी तरह स्वतन्त्र होता है। यह सब ठीक है। परन्तु इससे बहुतों के मन में कुछ भ्रान्ति पैदा हो जाती है। जो लोग बहुत-सी पुस्तकें पढ़ लेते हैं वे सोचते हैं कि इतना पर्याप्त है और चूंकि उन्होंने बहुत पढ़ लिया है इसलिए अब उनके साथ सब प्रकार की चमत्कारिक बातें होनी चाहियें, उन्हें उसपर आचरण करने का कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए वे अधीर हो जाते हैं और कहते हैं: “यह कैसी बात है कि मैंने इतना सब पढ़ा और फिर भी मैं वह-का-वही हूं! —मेरी कठिनाइयां भी वही हैं, कोई सिद्धि भी नहीं मिली?” ऐसी टिप्पणियां मैं प्रायः ही सुनती हूं।

वे एक महत्त्वपूर्ण बात भूल जाते हैं कि उन्होंने जो ज्ञान—बौद्धिक, मानसिक ज्ञान—प्राप्त किया है वह अधिकारी होने से पहले

ही, अर्थात् पढ़े हुए ज्ञान को आचरण में लाने से पहले ही, प्राप्त कर लिया है, और इससे स्वभावतः उनकी चेतना की स्थिति और विचारों के बीच एक संघर्ष की स्थिति है, वे इस ज्ञान की चर्चा तो आराम से कर सकते हैं लेकिन इसपर उन्होंने आचरण नहीं किया।... तो यह चीज बताती है कि व्यक्ति को अधीर नहीं होना चाहिये, बल्कि यह समझना चाहिये कि सच्चे रूप में ज्ञान पाने के लिए, वह चाहे जो भी हो, उसे व्यवहार में लाना जरूरी है, अर्थात् अपनी प्रकृति पर प्रभुत्व पाना जरूरी है ताकि तुम उस ज्ञान को क्रिया में अभिव्यक्त कर सको।

*

पथ-प्रदर्शक किताबें पढ़ने का कोई उपयोग नहीं अगर तुम उनकी शिक्षा को जीवन में उतारने के लिए कृतसंकल्प न होओ।

*

जरा-सा सच्चा-निष्कपट और नियमित अभ्यास, बहुत-से अल्प-जीवी प्रणों से कहीं अधिक मूल्यवान् है।

*

यह देखते हुए कि निम्न प्रकृति को शुद्ध करने के लिए कोई उग्र प्रयास नहीं, मेरे लिये कोई आशा हो ही कैसे सकती है? मैं औरों के बारे में सोचता ही क्यों हूं? इससे मेरा क्या भला होगा? हे मां, मैं किसी भी चीज के लिए अयोग्य हूं! मां, अभी तक कोई सच्ची और निष्कपट अभीप्सा नहीं है। हे मां, मुझे कोई सलाह दो। मैं अज्ञानी, अन्धकारमय बालक हूं। मेरा पथप्रदर्शन करो, मुझे सच्चा रास्ता दिखाओ।

जुलाई 2005

ऐसा लगता है कि तुम इस बारे में अभी से बहुत सचेत हो कि क्या होना चाहिये और क्या नहीं। लेकिन तुम्हारी मुश्किल शुरू होती है व्यावहारिक प्रयोग में। तुम्हें अधिक ज्ञान के लिए मांग न करनी चाहिये, तुम्हें मांगना चाहिये बल और साहस ताकि जो कुछ थोड़ा-बहुत ज्ञान पहले से तुम्हारे पास है उसका सचाई और ईमानदारी के साथ उपयोग कर सको।

*

ज्ञान काफ़ी नहीं है, तुम्हें क्रियान्वित करना होगा।

दम्भ करना काफ़ी नहीं है, तुम्हें होना होगा।

*

'सत्य' के पथ पर, अधिक जानने के लिए तुमने जो कुछ सीखा है उसे अभ्यास में लाना होगा।

जरा-सा निष्कपट अभ्यास बहुत-से लिखे और बोले गये शब्दों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

*

अभ्यास की एक बूंद सिद्धान्तों, सलाहों और अच्छे संकल्पों के समुद्र से कहीं अच्छी है।

*

सुनना अच्छा है, लेकिन पर्याप्त नहीं है—तुम्हें समझना चाहिये।

समझना ज्यादा अच्छा है, लेकिन फिर भी पर्याप्त नहीं है—तुम्हें कार्य करना चाहिये।

*

ऐसे लोग जो अपने सोचने के अनुसार नहीं चलते बेकार होते हैं।

*

किसी 'भागवत शिक्षा' को पढ़ना अच्छा है।

उसे सीखना ज्यादा अच्छा है।

सबसे अच्छा है उसे जीना।

*

अन्तिम विश्लेषण में, सभी सिद्धान्त सभी शिक्षाएं, और कुछ नहीं, बस देखने और कहने के तरीके हैं। ऊंचे-से-ऊंचे अन्तर्भास भी अपने साथ आयी चरितार्थता की शक्ति से अधिक मूल्य नहीं रखते।

*

* *

मधुर मां, हम अपनी सत्ता को एक कैसे कर सकते हैं?

पहला चरण है, अपने अन्दर गहराई में कामनाओं और आवेशों के पीछे एक ज्योतिर्मयी चेतना को पाना जो हमेशा उपस्थित रहती और भौतिक सत्ता को अभिव्यक्त करती है।

साधारणतः लोग इस चेतना की उपस्थिति के बारे में केवल तभी अभिज्ञ होते हैं जब वे किसी संकट के आमने-सामने हों या उनका किसी अप्रत्याशित घटना या बड़े दुःख से पाला पड़ा हो।

तब तुम्हें उसके साथ सचेतन सम्पर्क में आना और जब मरजी हो तब यह कर सकना सीखना चाहिये। बाकी सब पीछे-पीछे आ जायेगा।

साधारणतः व्यक्ति इस ज्योतिर्मयी उपस्थिति को सौर चक्र के पीछे हृदय में पाता है।

गुनशिखा
जुलाई 2005

सोसायटी समाचार

१५ अगस्त—श्रीअरविन्द के जन्मोत्सव की १३३वीं वर्षगांठ पर सोसायटी के बीच-ऑफिस में दो कार्यक्रम होंगे—१२, १३ तथा १४ अगस्त को सोसायटी का वार्षिक सम्मेलन तथा १७ से २६ अगस्त तक डॉ. एम. वी. नडकर्णी का 'गीता-प्रबन्ध' पर शिक्षा-शिविर।

२४, २५ सितम्बर को बेंगलोर में युवा शिविर लगेगा। ३५ व्यक्तियों के इस शिविर में १६ से ३० वर्ष के युवाओं को आमन्त्रण है। पूरी जानकारी के लिए श्रीअरविन्द भवन, ११०, गंगाधर चेट्टी रोड (उलसूर लेक) बेंगलोर ५६००४३ से सीधा पत्र-व्यवहार करें।

www.saice.org/sanskirit पर लॉग ऑन करके स्वयं संस्कृत सीखने का रसास्वादन लें। यह कार्यक्रम आप निःशुल्क डाउनलोड कर सकते हैं।

श्रीअरविन्द कम्प्लेक्स ट्रस्ट (र.), श्रीअरविन्द मार्ग, जे. पी. नगर, फर्स्ट फेज़, बेंगलोर ५६००७८ में एक मैनेजर की सख्त जरूरत है। इच्छुक व्यक्ति इस पते पर सीधा पत्र-व्यवहार करें—

SRI AUROBINDO COMPLEX TRUST (R)
Sri Aurobindo Marg, J. P. Nagar, First Phase
BANGALORE-560078

सूचना

पुरोधा और अग्निशिखा के लिए शुल्क भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखिये—

१. मनीऑर्डर-फॉर्म टाइप करके न भेजें। यह फॉर्म पर छपी लकीरों के बीच ऐसा घपला जाता है कि पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है। हाथ से लिखना ठीक है।

२. तमिलनाडु में हिन्दी पढ़नेवाले, विशेषतः डाक-विभाग में हिन्दी जाननेवाले बहुत कम हैं। अतः मनीऑर्डर-फॉर्म या पत्र का पता अंग्रेजी में ही लिखें।

३. मनीऑर्डर-फॉर्म के सम्पर्क-स्थान पर यह जरूर लिखें:

(क) यह धन किसलिए, किस पत्रिका के लिए और कितने समय के लिए भेजा जा रहा है।

(ख) अपना नाम व पूरा पता पिनकोड सहित साफ-साफ पढ़े जा सकनेवाले बड़े अक्षरों में (अंग्रेजी में) लिखें।

(ग) अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

४. पता बदल जाये तो उसकी सूचना तुरन्त दें। अन्यथा पत्रिकाएं लौट-लौट आती हैं।

५. मनीऑर्डर या डी. डी. या चैक पुरोधा एवं अग्निशिखा के नाम ही भेजें, आश्रम के नाम नहीं।

६. पत्रिका के लिफाफे पर आपके पते के ऊपर आपकी ग्राहक-संख्या और शुल्क समाप्त होने की तारीख लिखी रहती है।

७. पत्रिका प्राप्त न होने की सूचना एक मास प्रतीक्षा के बाद अपने डाकखाने से जांच-पड़ताल कर हमें तुरन्त सूचित करें। देर से सूचना प्राप्त होने पर कई बार वह अंक भेजना सम्भव नहीं होता।

८. धैर्य से लिखें, अक्षर स्पष्ट हों यह जरूरी है।

पुरोधा हर महीने की १० तथा ११ तारीख को भेजी जाती है।
अग्निशिखा हर महीने की २५ तथा २६ तारीख को भेजी जाती है।

जुलाई 2005

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
 केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
 पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com

E OF
STITUTE
G U.P.
ग संस्थान

क्षण संस्था

म

न, मयुरा

से संबद्ध

संस्था।

य जीवन-

तम ज्ञान-

न शिक्षक,

नवनवरी से

जपेयी

गनाचार्य

स्कूल,

श)

स)

म



34
1

अग्निशिखा

249404 (U.A.)
249404

310105

अखिल भारतीय पत्रिका

अगस्त २००५

विषय-सूची

सन्देश

‘सम्पादकीय’ : तुभ्यम् एव समर्प्यते
दैनन्दिनी

श्रीमां
अनुबेन

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क

नीरदवरण

१५ अगस्त—वह सत्य जिसका यह प्रतीक है

१५ अगस्त १९२३—श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर हुई वार्ता

१५ अगस्त १९२४—श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर हुई वार्ता

१५ अगस्त १९२४ के बारे में पुराणीजी के संस्मरण

१५ अगस्त १९२५—श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर हुई वार्ता

१५ अगस्त १९२६ के श्रीअरविन्द के वक्तव्य का एक अंश
मन और अतिमानस

अतिमानसिक अवतरण के लिए वैश्व परिस्थितियां

“श्रीअरविन्द” के नाम के बारे में

सोसायटी समाचार

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ

अतिमानसिक अभिव्यक्ति (इसका स्वागत होगा)

वानस्पतिक नाम—*Scadoxus multiflorus*

प्रचलित अंग्रेजी नाम—*Blood lily*

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वान्ने प्रति जागृहि

सन्देश

श्रीअरविन्द धरती पर अतिमानसिक जगत् की घोषणा करने आये थे और उन्होंने इस अभिव्यक्ति की घोषणा ही नहीं की बल्कि अंशतः अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और अपने उदाहरण से दिखलाया कि उसे अभिव्यक्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिये। हम सर्वोत्तम चीज यही कर सकते हैं कि उन्होंने जो कुछ बतलाया है उसका अध्ययन करें और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें।

यह चीज जीवन को उसका असली अर्थ देती है और हमें सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय पाने में सहायता देगी।

हम नूतन सृष्टि के लिए जियें तो युवा और प्रगतिशील होंगे हुए अधिकाधिक बलवान् बनेंगे।

—श्रीमां

‘सम्पादकीय’ :

तुभ्यम् एव समर्प्यते

इस समय सारे संसार में दोहरी क्रियाएं चल रही हैं। कहीं भारत में बहुत कुछ सुधारने के प्रयत्न किये जा रहे हैं, तो कहीं उसी भारत में भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच रहा है। ऐसी प्रक्रियाएं सारे संसार में चल रही हैं। इसका कारण श्रीअरविन्द की दृष्टि में यह है कि एक युग की सन्ध्या और नये युग की उषा के सन्धि-काल में इस तरह की जटिल परिस्थितियां उपस्थित होना अनिवार्य है। श्रीकृष्ण की मृत्यु का वर्णन करते हुए ‘अन्धा युग’ में श्री धर्मवीर भारती ने इस सन्धि का सचोट वर्णन यून किया है :

“जिस क्षण प्रभु ने प्रस्थान किया
द्वापर युग बीत गया उस क्षण
प्रभुहीन धरा पर आस्थाहत
कलियुग ने रक्खा प्रथम चरण
वह और भयंकर लगाने लगा भयंकर वन”

तो हम भी उसी युग-सन्धि-वेला को भुगत रहे हैं। श्रीअरविन्द का कहना है कि गीता में श्रीकृष्ण ने बताया था कि मनुष्य जीवन के चक्रव्यूह से तभी मुक्त हो पाता है जब वह “योगस्थः कुरु कर्माणि” —यानी सब कर्म भगवान् के साथ एक होकर उन्हें समर्पित होकर कर पाये। तभी चक्रव्यूह हमें छोड़ पायेगा। हमारे पूर्वज कुछ अंश में इस ऐक्य को प्राप्त कर सचमुच जीवन-मुक्त हो पाये थे, किन्तु वे धे सीप में मोती के समान।

अब जिस मन को हम अपनी सबसे उच्च स्थिति मानते हैं उसके ऊपर ‘अतिमानस’ स्तर पर मानवजाति के पहुंचने का समय आ गया

अगस्त २००५

माताजी और श्रीअरविन्द ने देखा था कि इस समय 'अतिमानस' का अवतरण वैसे ही अनिवार्य है जैसे क्रम-विकास की प्रक्रिया में प्रभु से मनुष्य बनने के लिए 'मन' का अवतरण अनिवार्य था।

इस समय हम पहले की भांति इक्के-दुक्कों में भागवत ऐक्य से तन्तुष्ट न रह पायेंगे। संसार की आजकल जो बुरी स्थिति है उसका मुख्य कारण यह है कि हम प्रगति नहीं करते इसीलिए नाना प्रकार के चक्रव्यूह हमारे आगे आकर हमें प्रगति करने के लिए बाधित करते हैं। श्रीअरविन्द कहते हैं कि समस्त समाज को दिव्यता की ओर बढ़ना पड़ेगा, तब वह समाज ऐसा होगा जो प्रभु में निवास करेगा, स्वार्थ और अहम् से मुक्त होगा, सब प्रकार के अन्ध-विश्वास, पक्षपात और द्वेष जैसे सब आवेगों से मुक्त होगा।

आगे वे कहते हैं कि हम तरुण भारत से आशा करते हैं कि वह नयी उमंग से इस नये लक्ष्य को अपनाने में समर्थ होगा।

सचमुच, अगर इस अतिमानसिक स्थिति तक पहुंचना है तो हमें समाज के कर्णधारों को यह समझाना होगा कि वे बालकों को, युवकों को ऐसी शिक्षा दें जिसके द्वारा बचपन से ही वे धीरे-धीरे अपने-आपको समझें, निरपेक्ष रहें, बीच राह में भटकने की जगह अपने लक्ष्य, दिव्य लक्ष्य की ओर चलते चले जायें। अतिमानस के अवतरण से मनुष्य केवल ध्यान ही न करेगा बल्कि अपने सारे क्रिया-कलाप भगवान् से तादात्म्य स्थापित करके करेगा, फिर चाहे वह शिक्षा हो, कला हो, शारीरिक अध्यवसाय हो, धन-प्राप्ति हो या नाटक या नृत्य हो। अतिमानस पृथ्वी के किसी भी कार्य का त्याग नहीं करेगा, उसमें ऋषि का भी समावेश होगा और विज्ञान हो या यू० एन० ओ० का कार्य हो, विदेश-नीति और व्यापार कुछ भी क्यों न हो। अगर इस तरह इन सब क्रिया-कलापों को समाज "योगस्थः कुरु कर्माणि" मन्त्र से कर पायेगा तो झूठ, भ्रष्टाचार, फरेब स्वतः अदृश्य हो जायेंगे।

यह सब सोचकर हमें, और विशेषकर हमारे शिक्षाविदों को तोता-रटन्त पद्धति को एकदम छुट्टी दे देनी चाहिए और ऐसी शिक्षा को अपनाना या खोजना चाहिए जिसमें बच्चों को, युवकों को अपने स्वतन्त्र ढंग से सोचना पड़े।

इस युग-सन्ध्या में ही, अतिमानसिक शक्ति की सहायता से हम रूपान्तर की ओर बढ़ सकते हैं। भूतकाल में जिस तरह भारत ने व्यक्तिगत आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन ढूँढ़ा था उसी तरह अब भारत आध्यात्मिक जीवन समाज के लिए स्थापित करेगा, ऐसी आशा है।

वैसे कई जगह शिक्षा के नये-नये प्रयोग हो रहे हैं और भारत का उज्ज्वल भावी मानों मुस्कुरा रहा है।

हमें केवल यही कहना है—त्वदीयं वस्तु तुभ्यम् एव समर्प्यते—तेरा तुझको अर्पण।

कितना सरल लगता है, है न !

—अनुवेन

*
* *

दो चीजें हैं जो विरोधी शक्तियों को अस्थायी रूप में भी मन और प्राण पर विजय पाने में असम्भव बना देती हैं—पहली चीज है सम्पूर्ण प्रेम, भक्ति और विश्वास जिसे कोई हिला नहीं सकता। दूसरी चीज है प्राण और मन में स्थिरता और समता जो आन्तरिक स्वभाव का आधारभूत चरित्र बन जाती है। सुझाव फिर भी आ सकते हैं, बाहर की ओर चीजें गलत या उल्टी हो सकती हैं, लेकिन सत्ता फिर भी अभेद्य रहती है। इन दोनों में से कोई भी चीज अपने-आपमें काफी हो सकती है और जैसे-जैसे वे बढ़ती हैं उसी अनुपात में आन्तरिक जीवन में विरोधी शक्तियों का अस्तित्व न्यून और न्यूनतर तथ्य हो जाता है, भले वे बाहरी वातावरण में बनी रहें।

—श्रीअरविन्द

दैनन्दिनी

अगस्त

१. यह जानना कि हम क्यों जीते हैं : भगवान् की खोज और उनके साथ सचेतन ऐक्य।
एकमात्र इसी उपलब्धि पर एकाग्र होने की अभीप्सा करना। सभी परिस्थितियों को इस लक्ष्य तक पहुंचने के साधन में रूपान्तरित करना जानना।
२. प्रभो, मेरे अन्दर तुम्हें जानने की तीव्र इच्छा जागे। मैं अपना जीवन तुम्हारी सेवा के लिए अर्पित करने की अभीप्सा करती हूं।
३. भगवान् की सहायता हमेशा सच्ची अभीप्सा को उत्तर देती है।
४. हर एक पहले अपने लिए जिम्मेदार है; और अगर तुम औरों की सहायता करने की अभीप्सा रखते हो तो तुम जैसा होना चाहिये उसका उदाहरण बनकर ही सबसे अधिक प्रभावकारी ढंग से उन्हें सहायता दे सकते हो।
५. भागवत कृपा हमेशा ही है जो अद्भुत रूप से उन सबके लिए प्रभावकारी है जो सच्चे और निष्कपट हैं।
६. भगवान् के बिना हम सीमित, असमर्थ और अवश सत्ताएं हैं, भगवान् के साथ, अगर हम अपने-आपको पूरी तरह से उन्हें सौंप दें, तो सब कुछ सम्भव है और तब हमारी प्रगति अन्तहीन होती है।
७. तुम्हें अपने अध्यवसाय में सच्चा होना चाहिए; तब तुम आज जो चीजें नहीं कर सकतीं उन्हें नियमित और आग्रहपूर्ण प्रयासों के बाद एक दिन कर सकोगी।
८. शान्त और सुखी जीवन के लिए, प्रेम करने के आनन्द के

- लिए प्रेम करना सबसे अच्छी स्थिति है। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी चीजों के अन्दर भगवान् से प्रेम करना।
९. सुखी तथा सफल जीवन के लिए सच्चाई, नम्रता, अध्यवसाय और प्रगति के लिए कभी न बुझनेवाली प्यास जरूरी हैं। सबसे बढ़कर यह कि तुम्हें विश्वास हो कि प्रगति की सम्भावना असीम है। प्रगति यौवन है, तुम सौ वर्ष की उम्र में भी युवक हो सकते हो।
१०. सदा सीखना, बौद्धिक नहीं, मनोवैज्ञानिक रूप से, स्वभाव में प्रगति करना, अपने अन्दर गुण पैदा करना और दोष ठीक करना ताकि हर चीज हमें अज्ञान और अक्षमता से मुक्त करने के लिए अवसर हो सके—तब जीवन बहुत अधिक रुचिकर और जीने योग्य बन जाता है।
११. पूर्ण विश्वास और कृतज्ञता के साथ अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण करने से ही कठिनाइयों पर विजय मिलेगी।
१२. हर एक के लिए पहली आवश्यकता है उसका अपना रूपान्तर, और जगत् की सहायता करने का सबसे अच्छा तरीका है अपने-आप भगवान् को उपलब्ध करना।
१३. हमारी सत्ता की गहराइयों में, चिन्तन की नीरवता में, एक ज्योतिर्मयी शक्ति हमारी चेतना में एक विशाल और ज्योतिर्मयी शान्ति की बाढ़ ले आती है जो सभी तुच्छ प्रतिक्रियाओं पर अभिभूत होती है और हमें भगवान् के साथ ऐक्य के लिए तैयार करती है—जो वैयक्तिक जीवन का एकमात्र प्रयोजन है। अतः, जीवन का प्रयोजन और उद्देश्य दुःख और संघर्ष नहीं बल्कि एक सर्वशक्तिमान् और सुखी उपलब्धि है।
१४. पथ पर मनुष्य जो पहली चीज सीखता है वह यह है कि देने का आनन्द पाने के आनन्द से कहीं अधिक बढ़कर है।

अगस्त २००५

१५. परम सुख है भगवान् का सच्चा सेवक बनने में।
अपने-आपको ऐसी चीजों से दूर रखना जो तुम्हें भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण करने से रोकती हैं।
१६. लक्ष्य का होना पर्याप्त नहीं है। हमेशा अपनी सभी गतिविधियों के मूल में जाने की कोशिश करते हुए लक्ष्य को पाने का संकल्प होना चाहिये।
१७. जब सारी सत्ता, अपने सभी भागों और सभी क्रियाओं में समस्त सच्चाई के साथ भगवान् से कह सके :
“तुम जो चाहो, तुम जो चाहो।”
तब तुम सच्ची निष्ठा के मार्ग पर होते हो।
१८. धरती पर जीवन तत्त्वतः प्रगति का क्षेत्र है, लेकिन जो प्रगति करनी है उसके लिए जीवन कितना संक्षिप्त है !
१९. प्रभो ! हम अनुनय करते हैं कि हमारे अन्दर कोई भी चीज तुम्हारी उपस्थिति को अस्वीकार न करे और हम वही बन सकें जो तुम हमें बनाना चाहते हो।
वर दो कि हमारे अन्दर सब कुछ तुम्हारी इच्छा का अनुमोदन करे।
२०. प्रभो, वर दो कि हम जान सकें कि तुम ही हमारा जीवन हो, हमारी चेतना और हमारी सत्ता हो, और तुम्हारे बिना सब कुछ भ्रान्ति है।
२१. अमरता की तैयारी के लिए शरीर की चेतना को अपने-आपको पहले शाश्वत चेतना के साथ एकात्म करना चाहिये।
२२. हमेशा और हर स्थिति में वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं, यही परम पावन शान्ति का रस लेने का एकमात्र तरीका है।
२३. फूल अपनी सुगन्धित प्रार्थना और अभीप्सा को आकाश की ओर उठाते हैं।

२४. फूल प्रकृति की आराधना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं।
२५. फूलों के द्वारा प्रकृति अपने-आपको अधिक-से-अधिक सामञ्जस्यमय रूप में प्रकट करती है।
२६. फूलों के साथ प्रेम अपने चैत्य को पाने और उसके साथ मिलने के लिए मूल्यवान् सहायता है।
२७. जीवन को एक फूल की तरह खिलना चाहिये जो अपने-आपको भगवान् के अर्पित करता है।
२८. उदार हृदय हमेशा पुराने दुर्व्यवहारों को भूल जाता है और दुबारा सामञ्जस्य लाने के लिए तैयार रहता है।
२९. सतत और निष्कपट अभीप्सा तथा केवल भगवान् की ओर मुड़ने की इच्छा ही चैत्य को सामने लाने के एकमात्र उत्तम तरीके हैं। (श्रीअरविन्द)
३०. हमारा लक्ष्य है अपनी सत्ता की पूर्णता को उपलब्ध करना और उसे मानव-पशु से दिव्य-मानव में परिवर्तित करना।
३१. कोई महत्त्वाकांक्षा न रखो, कभी किसी चीज पर कोई दावा न करो, लेकिन हर क्षण वह बनने की कोशिश करो जो तुम अधिक-से-अधिक हो सकते हो।

*
* *

स्वतन्त्र होने के लिए, कारागार में से निकलना ही होगा। और यह कारागार अहं है—पृथक् व्यक्तित्व की यह भावना। मुक्त होने के लिए व्यक्ति को चेतन और समग्र रूप में सर्वोच्च सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करना होगा, और इस तादात्म्य के द्वारा अपने अहं की सीमाओं को तोड़ना होगा, और अपने-आपको वैश्व रूप देकर अहं के अस्तित्व को ही समाप्त कर देना होगा, चाहे चेतना का व्यक्ति-रूप बना भी रहे।

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क

महान् क्षण

पहला सम्पर्क

(‘श्रीअरविन्द के साथ बारह वर्ष’ के बाद अग्निशिखा के इस अंक से हम एक नया स्तम्भ शुरू कर रहे हैं—माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क (Memorable Contacts with the Mother)। नीरद दा के साथ श्रीमां का यह सम्पर्क सचमुच अद्भुत है।—सं.)

जनवरी १९३० का पहला सप्ताह था।

दोपहर के लगभग तीन बजे मैं दिलीप कुमार रॉय के घर पहुंचा। उन्होंने कहा, “ओह, तुम आ गये! चलो चलते हैं।” अपनी छत के बागीचे से एक गुलाब काटते हुए वे बोले, “यह गुलाब माताजी को अर्पित करना।” जब हम आश्रम पहुंचे, तब आजकल जिसे ‘रीडिंग रूम’ कहते हैं वहां रुक कर उन्होंने मुझसे कहा, “यहां प्रतीक्षा करो।” मेरा हृदय धराहट में तेजी से धड़क रहा था मानों मेरी परीक्षा होने जा रही हो। कमरे के बीच एक शानदार कुर्सी ने क्षणभर के लिए मेरा ध्यान खींचा। थोड़ी देर में माताजी ने नलिनी, अमृत और दिलीप के साथ प्रवेश किया। वे कुर्सी पर बैठ गयीं, दूसरे लोग उनके पास खड़े रहे। मैं इस दृश्य से आश्चर्य-मुग्ध, स्तब्ध खड़ा रहा। वह क्या ‘काल्पनिक झलक’ थी या वास्तविकता? मैंने ऐसे दृश्य के जैसा कभी कुछ नहीं देखा था। उनका गौर वर्ण कोमल रंग की साड़ी से सुशोभित हो रहा था और सिर साड़ी से ढका हुआ था और साड़ी को सिर पर यथावत् रखने के लिए कसीदा किया हुआ एक छोटा-सा सुन्दर ‘हेड बैंड’ लगा हुआ था। इस रूप को देखकर मुझे दुर्गा-पूजा के उत्सव में देवी या चित्रों में देखी देवियों की याद हो आयी। माताजी मुस्कुरा रही थीं और उनकी कृपा की सुगन्ध

फैल रही थी। 'माता' पुस्तक में श्रीअरविन्द ने महालक्ष्मी के स्मित का जो वर्णन किया है उसी स्मित को मैं देख रहा था। माताजी ने मुझे अपने मुस्कानों के झरने में नहला दिया। उनकी स्नेहिल दृष्टि ने मेरे हृदय को द्रवित कर दिया। उनके सामने मैं संकोचशील और अवाक् खड़ा रह गया। उनके आसपास खड़े लोगों की उपस्थिति से मैं और भी संकोच में पड़ गया और वे इस मधुर शान्त दृश्य का मज़ा ले रहे थे। कई मिनट ऐसे ही गुजर गये, फिर मैंने माताजी के हाथ में गुलाब अर्पण किया और उनके चरणों में प्रणाम किया जिन पर सोने के पायल सुशोभित हो रहे थे। माताजी ने झुककर मुझे आशीर्वाद दिया। खड़ा हुआ तो वही जादुई आकाश से चन्द्रकिरणों-सी मनमोहक मुस्कान मुझे प्राप्त हुई। कुछ देर बाद उन्होंने दूसरों से कहा, "वह बहुत लजीला है।"

उनको बताया गया था कि मैंने मेडिकल डिग्री प्राप्त की है।

माताजी ने मुझसे मृदु स्वर में पूछा, "तुम कब जाओगे और 'प्रेक्टिस' कहां करना चाहते हो?" तब मेरी सकंठ में आयी बन्द आवाज खुली और मैंने उत्तर दिया कि मैं अपने शहर में जाकर बस जाऊंगा। यह उत्तर मैंने तत्काल दे दिया था क्योंकि इस विषय में मैंने सोचा ही न था। वे सहमत हुईं और बोलीं, "हां, यह अच्छा होगा।" मैंने फिर से प्रणाम किया और हम चले आये। घर जाते समय मैं उस आनन्ददायक दिव्य दर्शन से मन्त्रमुग्ध-सा समाधि की-सी अवस्था में ही लिप्त रहा। माताजी का वह भव्य दृष्टिपात और वह उज्ज्वल स्मित, जिसमें हल्की-सी विनोद की आभा थी, उसमें ऐसा अवर्णनीय माधुर्य था कि मैं कल्पना न कर पाया कि मेरे जैसे एकदम से अजनबी युवक को इतना विरल आशीर्वाद कैसे प्राप्त हुआ! वह आशीर्वाद मानवीय होते हुए भी कितना दिव्य था!

बाद में हम देखेंगे कि काफी भटकने के बाद मुझे कैसे अपनी मातृभूमि की ओर लौटना पड़ा। इस तरह मैंने उसी योजना को कार्यान्वित किया जिसके लिए माताजी ने अनुमति दी थी।

अगस्त २००५

यह अद्वितीय साक्षात्कार कैसे हो पाया? खैर, बहुत-से अप्रत्याशित आश्चर्य हमें आ घेरते हैं जो हमें अपनी बाह्य भौतिक दृष्टि में अनोखे देखते हैं। वे सब प्रकृति की लीक का अतिक्रमण करते हुए लगते हैं। सचमुच जीवन अज्ञात समुद्र में जल-यात्रा करता है। यह तथ्य उन लोगों के लिए विशेष रूप से सच्चा होता है जिनकी नियति आध्यात्मिक जीवन को अपनाने की होती है। कम-से-कम मेरे जीवन में तो ऐसा ही हुआ। जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो पाता हूँ कि बिना किसी पूर्व योजना के मेरे जीवन में जो कई निर्णयात्मक मोड़ आये उन्हें मैं तर्क द्वारा किसी को न समझा पाऊंगा। और फिर भी, जब मैं अपने जीवन की असंगत घटनाओं को एक माला में गूँथता हूँ तो पाता हूँ कि उनकी परिणति अनिवार्य और पूर्व-निर्धारित थी।

मैं ऐसी एक-दो घटनाओं का वर्णन करूंगा जिन्हें समझाना वैसे सम्भव नहीं है। एक है, मेरी भतीजी के साथ विदेश जाकर 'मेडिकल कॉलेज' में प्रवेश करना, जब कि सचमुच मेरी इच्छा कानून का अध्ययन करने की थी, वह शुद्ध रूप से निर्भीक साहसिक चुनाव था क्योंकि मैंने कॉलेज में जान-बूझ कर साइन्स को छोड़ कर अन्य विषय चुने थे। 'मेडिकल प्रैक्टिस' में मृत या जीवित शरीरों को काटना मुझे एकदम नापसन्द था। लोग मेरे इस 'मेडिकल चुनाव' को मेरी कच्ची उम्र और कानून के छः साल के लम्बे समय के अध्ययन के लिए धन की कमी के कारण 'डॉन कूइऑत'^१ का अव्यावहारिक व दुःसाहसभरा महत्वाकांक्षी विचार मान बैठे। मैं कृतसंकल्प था कि विदेश जाकर ही रहूंगा। फिर यूरोप में हमलोग दिलीप रॉय से मिले—और इस मुलाकात ने मेरे भाग्य पर इस अन्तिम संन्यास के लिए अपनी मोहर लगा दी—इस तरह यह था मेरे लिए एक और लाल बुझक्कड़ झपट्टा!

^१ Don quixote विश्व-विख्यात इतालवी उपन्यास का मुख्य पात्र।

अप्रत्याशित रूप से मेरी भतीजी और मैं दिलीप कुमार से पेरिस में मिले। श्रीअरविन्द के साथ उनके प्रसिद्ध साक्षात्कार के बाद वे घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे थे। वे हमारे साथ एडिनबर्ग में कुछ दिन रहे और उन्होंने हमें माताजी, श्रीअरविन्द और आश्रम की झांकी दी। मेरी भतीजी, जो थोड़ी आदर्शवादी थी, उसने जब आश्रम के रमणीय जीवन का वर्णन सुना तो उस ओर आकर्षित होती गयी जब कि मेरी आंखों के सामने हड्डियों के ढाँचों और सूखे चेहरेवाले व्यक्तियों के मुखड़े घूम गये और मुझे धुंधली आत्मा की खोज के बदले स्थूल तत्त्व की खोज की राह पकड़ना अधिक प्रिय लगा। मेरा भौतिक पटल अभेद्य था—बहुत वर्ष बाद श्रीअरविन्द यानी गुरु ने भी कहा था “बहुत ज्यादा मोटा”। मेरी भतीजी की उर्वर भावुक मिट्टी में एक बीज बोया गया और देखते-देखते वह इतनी जल्दी अंकुरित हुआ कि भारत जाते ही वह आश्रम देखने पहुँच गयी। दिलीप कुमार, जिन्होंने आश्रम को अपना स्थायी निवास बना लिया था, मेरी भतीजी का स्वागत करने बड़े प्यार से आगे आये। उन्हें आशा थी कि वह आश्रम में रहने के लिए आ जायेगी। दिलीप कुमार के घर में माताजी से कई बार साक्षात्कार का सौभाग्य मेरी भतीजी को प्राप्त हुआ। और वह माताजी के दिव्य सौन्दर्य के जादू से मन्त्रमुग्ध हो गयी। उसने मुझे जो चिट्ठी लिखी उसमें अपनी विरल अनुभूति का भावोद्दीप्त विवरण किया था और अपने जीवन में आये एकदम से नये मोड़ का भी उल्लेख किया था। साथ ही उसने मुझसे आग्रह किया कि जब मैं भारत लौटूँ तब आश्रम देखने अवश्य आऊँ।

डिग्री लेकर मैं हठात् पॉण्डिचेरी आ गया और दिलीप कुमार के सामने उपस्थित हो गया। उन दिनों के फैशन के अनुसार यूरोपीय वेशभूषा, हाथ में छड़ी लिए किन्तु सिर बिना हैट के—यह था मेरा रूप। एक क्षण के लिए वे मेरी ओर आश्चर्य से मुँह बाये देखते रहे। अन्त में जब पहचान पाये, तो बोल उठे, “अरे तुम हो! मैं कभी कल्पना न

कर... अ
उन्होंने मा
माताजी ने
नहीं थी। मे
दी और दू
में परेशान
मेरी समझ
प्रय को क
मेरे सामने
मुझे आध्य
रुचि ही थ
जीवन चा
जाने से प
कर लूँ। मे
कल्पना त
ऊपरी भा
का अस्ति
वह दृश्य
चल पड़ा
जिसने मु
चलें।”

मेरा
तरह हुआ

अगस्त २००५

कर... आओ, आओ, बैठो।" वे हमेशा की तरह मिलनसार लगे। उन्होंने माताजी के साथ मेरे साक्षात्कार की व्यवस्था भी कर दी; हालांकि माताजी ने तब टिप्पणी की थी कि मैंने अपने आने की सूचना उन्हें दी नहीं थी। मेरे पास धोती नहीं थी, दिलीप कुमार ने अपनी एक धोती मुझे दी और दूसरे दिन उनके घर दोपहर को ठीक समय पर आने को कहा। मैं परेशान हो रहा था और कई मेडिकल परीक्षाएं पास करने के बावजूद मेरी समझ में आ नहीं रहा था कि यह नयी परीक्षा कैसे दे पाऊंगा। मेरे भय को कम करने के लिए मेरी भतीजी ने माताजी का बड़ा कृपालु चित्र मेरे सामने खींचा। इन सब बातों के बावजूद मैं अशान्त ही रहा क्योंकि मुझे आध्यात्मिकता का ककहरा भी न आता था। और न ही उसके लिए रुचि ही थी। मैंने सोचा, मान लो माताजी मुझसे पूछें, "तुम आध्यात्मिक जीवन चाहते हो?" मैं क्या उत्तर दूंगा? मैंने सोचा, साक्षात्कार के लिए जाने से पहले स्नान कर लूं। मेरा मन करने लगा कि थोड़ी प्रार्थना भी कर लूं। मैं जैसे ही बैठा, मेरी आंखें मुंद गयीं और तब जो हुआ उसकी कल्पना तक मेडिकल साइन्स न कर पायेगी। मैंने देखा कि मेरे शरीर का ऊपरी भाग कुछ क्षणों के लिए अधर में लटक रहा है और निचले भाग का अस्तित्व ही नहीं है। भयभीत बच्चे की तरह मैंने आंखें खोल दीं और वह दृश्य अदृश्य हो गया! होटल से मैं चौंधियाया-सा, आश्रम की ओर चल पड़ा। दिलीप दा ने अपनी स्नेहिल मुस्कान से मेरा स्वागत किया जिसने मुझे प्रकृतिस्थ होने में सहायता दी। उन्होंने कहा, "चलो, हम चलें।"

मेरा माताजी के साथ साक्षात्कार हर्षोन्माद के वातावरण में इस तरह हुआ—

"उनकी दृष्टि, उनकी मुस्कान ने
जगा दिया पार्थिव-तत्त्व में भी दिव्य भाव,
और उनके तीव्र आनन्द ने मानवों के जीवन में

उंडेल दिया एक अलौकिक सौन्दर्य ...।”

आज मैं समझ पाता हूं कि मुझे अपने आधे शरीर के अधर में लटकने की विचित्र अनुभूति क्यों हुई थी। माताजी ने शायद मेरी ग्रहणशीलता को जांचने के लिए मेरे ऊपर किसी दिव्य शक्ति का प्रयोग किया हो। जब साक्षात्कार के समय उन्होंने देखा कि मेरा आधार बुरा नहीं है तब वे प्रसन्न हो गयीं। उस दिव्य शक्ति के प्रयोग की यह व्याख्या मैं अपने-आपको दे रहा हूं, शायद दिव्य क्रिया में अधिक कारण हों जिन्हें मैं पकड़ न पाया होऊं। हो सकता है कि वह क्रिया एक तरह की दीक्षा ही हो।

दूसरे दिन शाम को जब मैं कलकत्ता के लिए निकल रहा था, दिलीप दा मुझे विदा देने के लिए आ गये। जैसे ही उन्होंने मुझे “पूस पूस” (रिक्शा का पहला रूप) में बिठाया और लो! एक और आश्चर्य, एक और अद्वितीय आनन्द प्रकट हुआ। मैंने जहां कहीं भी दृष्टि घुमायी, माताजी का प्रफुल्ल मुख और मुस्कुराती आंखें देखीं। मैं रोमाञ्चित, पुलकित हो उठा। स्टेशन पहुंचा और ट्रेन चल पड़ी, तब तक उनका चेहरा मेरी आंखों के आगे तैरता रहा। एक क्षण को भी उसने मुझे छोड़ा नहीं। आनन्द के अतिरेक का भार इतना ज्यादा था कि मैं कुछ झुंझला कर बोल उठा, “ओह, यह मुझे कब छोड़ेगा?” और वह उल्लासदायक चित्र धीरे-धीरे दूर चला गया और विलीन होने लगा। “मर्त्यता शाश्वत के स्पर्श को सह नहीं पाती।” उसका स्थान ले लिया ट्रेन के शोर-शराबे ने, उसकी धड़धड़ाहट और मुसाफिरों की बकबक ने और साथ ही था सुबह का सामान्य पार्थिव प्रकाश। जब मैं आश्रम में फिर से आया और यहीं बस गया तभी मैंने समझा कि दिव्य उपस्थिति को भगाने में मैं कितना मूर्ख था जो मेरे लिए दिव्य कृपा का चिह्न बन कर आयी थी।

—नीरदवरण

१५ अगस्त १९२३—श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर हुई वार्ता

(श्री अम्बालाल पुराणी^१ की स्मृति पर आधारित)

श्रीअरविन्द ने कहा : पहले हम इस दिन को, मेरे भौतिक जन्मदिन को “प्राणिक” ढंग से मनाया करते थे। उसमें आन्तरिक सत्य का बीज तो होता था किन्तु अभिव्यक्ति प्राणिक ही हुआ करती थी। अब मैं चाहता हूँ कि अगर यह दिन मनाया जाये तो वह उस सत्य के साथ मेल खाता हुआ हो जिसका यह प्रतीक है।

तुम सब उस अतिमानसिक सत्य के बारे में जानते हो जिसे हमारे जीवन में उतरना है। आज के दिन वह सत्य प्रतीक-रूप लेता है, लेकिन उसके नीचे आने में बहुत-सी बाधाएँ हैं। पहले हैं मन और मानसिक भाव जो ऊपर से आते हुए सत्य को पकड़ कर अपने ही उद्देश्य के लिए उस सत्य का उपयोग करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, प्राण या जीवनी-शक्ति को लो जो इस उच्चतर शक्ति को पकड़ कर उसे अशुद्ध क्रियाओं में उंडेलना चाहते हैं। जो सत्य उतर रहा है वह मानसिक नहीं, अतिमानसिक है। उसके भली-भाँति काम कर सकने के लिए जरूरी है कि सभी निचली शक्तियाँ अतिमानस-

^१ अम्बालाल पुराणी (१८९४-१९६५) : श्रीअरविन्द से प्रेरित युवा अम्बालाल ‘इण्डियन नैशनल मूवमेंट’ के नेता बने। इन्होंने युवा-वर्ग के उत्थान के लिए जो आन्दोलन चलाया वह सारे गुजरात में फैल गया। १९१८ में वे श्रीअरविन्द आश्रम पॉण्डिचेरी आये और श्रीअरविन्द द्वारा यह आश्वासन मिलने पर कि भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा, वे १९२३ से आश्रम में आकर बस गये।

भावापन्न हो जायें। निचली शक्तियां इस उच्चतर सत्य का उपयोग अपनी सामान्य निम्नतर गतिविधियों की तुष्टि के लिए करना चाहती हैं। जब मनुष्य जीवन के सुखों में लगा होता है या अपना जीवन अपने स्वार्थों को पूरा करने की तलाश में लगाये रखता है तो सचमुच उसमें और उसके द्वारा निम्नतर वैश्व शक्तियां ही सुख भोगती हैं।

यह उच्चतर शक्ति अपनी पूरी शुद्धि में काम कर सके इसके लिए जरूरी है कि आदमी ऊपर की महान् शक्ति की ओर खुल सके, अपने-आपको उसे सौंप सके और जो कुछ उच्चतर सत्य के रास्ते में बाधा-स्वरूप आता है उसे हटा सके। समर्पण की क्षमता इन्हीं तीन चीजों पर निर्भर करती है।

मैं पिछले कई वर्षों से इसी काम में लगा हूं कि इन अड़चनों का सामना करके इन्हें हटाया जाये, रास्ता साफ और तैयार किया जाये ताकि काम तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा कठिन न रहे। जहां तक मेरी मदद का सवाल है यह पूरी तरह निर्भर है तुम्हारी ग्रहणशक्ति पर, इस बात पर कि तुम कहां तक सहायता को ले सकते हो। लोगों का ख्याल है कि आज हर साधक को एक नयी अनुभूति होगी। यह निर्भर है सत्य को अपने अन्दर ले सकने की तुम्हारी क्षमता पर। वास्तविक आध्यात्मिक समर्पण कोई और ही चीज है, लेकिन अगर तुममें से किसी ने जरा-सी मात्रा में उसकी हल्की-सी छाया भी पाली तो १५ अगस्त का उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

१५ अगस्त १९२४—श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर हुई वार्ता

(श्रीअरविन्द सवेरे ९.१५ बजे बाहर आये और दोबारा बाहर निकले शाम के ४ बजे। वे करीब ३०-३५ मिनट तक बोले। बोलने से पहले वे करीब १०-१५ मिनट तक शान्त रहे। उनकी वार्ता का सार श्री अम्बालाल पुराणी ने लिपिबद्ध कर लिया, वही प्रस्तुत है।)

उन्होंने कहा, यह कुछ रिवाज-सा हो गया है कि आज के दिन मैं कुछ बोलूँ, मैं 'नीरव चेतना' द्वारा कुछ कहना अधिक पसन्द करूँगा क्योंकि जहाँ वाणी मन को सम्बोधित करती है वहीं 'नीरव चेतना' गहराई तक जा पहुँचती है। हम सब मिलकर सामान्यतः प्रचलित योगों से भिन्न योग का अभ्यास कर रहे हैं। प्राचीन पद्धति के अनुसार हमें बुद्धि, भाव, इच्छा में से किसी को चुनना चाहिये या पुरुष और प्रकृति, सचेतन आत्मा और प्रकृति के बीच भेद करना चाहिये। इस तरह हम अपने मन, भावमय सत्ता, इच्छा या व्यष्टिगत पुरुष के परे ज्ञान की अनन्तता, सर्व-प्रेममय, सर्व-सुन्दर परम पुरुष या अनन्त निराकार निर्वैयक्तिक इच्छा या नीरव ब्रह्मन् तक जा पहुँचेंगे।

हमारे योग का लक्ष्य ज्ञान, इच्छा या आनन्द की निर्वैयक्तिक अनन्तता की तलाश नहीं है। वह परम सत्य की उपलब्धि चाहता है, एक अनन्त ज्ञान चाहता है जो मानव ज्ञान की सीमित अनन्तता के परे है, एक अनन्त शक्ति की खोज में है जो हमारी व्यक्तिगत इच्छा का स्रोत है और एक ऐसे आनन्द की टोह में है जिसे भावों की उपरितलीय गतियां पकड़ नहीं सकतीं।

हम जिस परम सत्ता तक पहुँचना चाहते हैं वह कोई निर्वैयक्तिक अनन्तता नहीं है, वह है दिव्य व्यक्तित्व और उसे पाने के लिए हमें

अपने सच्चे व्यक्तित्व को जानना और पाना चाहिये। तुम्हें अपने आन्तरिक सत्ता को पहचानना चाहिये। यह व्यक्तित्व आन्तरिक मन, आन्तरिक प्राण और आन्तरिक भौतिक सत्ता या उसकी चेतना नहीं है, जैसा कि बहुत से मान बैठते हैं, बल्कि यह है तुम्हारी सच्ची सत्ता जिसका उच्चतम के साथ सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य धीरे-धीरे प्रकृति में विकसित होता है और हर एक को अपने दिव्य व्यक्तित्व को जानना चाहिये—और वह है अतिमानस। हर एक सारतत्त्व में भगवान् के साथ एक है परन्तु अपने स्वभाव और प्रकृति में परम पुरुष की आंशिक अभिव्यक्ति है।

चूंकि हमारे योग का यह उद्देश्य है अतः हम जीवन की ओर पलटकर उसे बदलना चाहते हैं। पुराने योग जीवन को रूपान्तरित करने में असफल रहे क्योंकि वे मन के परे नहीं गये। वे मानसिक अनुभूतियों को ले बैठते थे और जब उन्हें जीवन पर लागू करना चाहते थे तो बंधे हुए सूत्र या नियम में बदल देते थे। उदाहरण के लिए, अनन्त की मानसिक अनुभूति या वैश्व प्रेम के सिद्धान्त को लागू करना।

अतः, हमें अपनी चेतना के सभी स्तरों पर सचेतन होना चाहिये और उच्चतर प्रकाश, शक्ति और आनन्द को नीचे उतार लाना चाहिये ताकि वे जीवन के एकदम बाहरी ब्योरों पर भी शासन कर सकें। हमें अपने-आपको अलग-थलग करके प्रकृति में होनेवाली सभी चीजों पर नजर डालनी चाहिये, कोई छोटी-से-छोटी गति, एकदम से बाहरी चीज भी हमारी दृष्टि से बच न पाये। यह प्रक्रिया मानसिक और प्राणिक स्तरों पर अपेक्षाकृत सरल है लेकिन चैत्य-प्राण और भौतिक स्तर पर अज्ञान की शक्तियों का राज्य होता है; वे अपनी बातों को शाश्वत विधान मानकर उन पर डटी रहती हैं। वे उच्चतर प्रकाश के पथ में बाधा देती और उनके आगे अपना झण्डा बुलन्द रखती हैं।

अगस्त २००५

वही पर अन्धकार की शक्तियां बार-बार सत्ता को ढंक लेती हैं और तब भी जब भौतिक-प्राण का उद्घाटन होता है, अज्ञान के तत्त्व भौतिक सत्ता के निचले स्तरों से ऊपर उठ आते हैं। उनके साथ निबटना बड़े धीरज का काम है। भौतिक-प्राण और भौतिक सत्ताएं उच्चतर विधान को स्वीकार नहीं करतीं और अपनी बात पर डटी रहती हैं। वे बुद्धि का उपयोग करके अपनी बातों का औचित्य सिद्ध करती हैं और इस तरह भिन्न-भिन्न छद्मवेशों में आकर साधक को गमने की कोशिश करती हैं।

साधारणतः प्राणिक सत्ता बहुत अधीर होती है और भौतिक प्राण और भौतिक स्तरों पर झटपट चीजें कर डालना चाहती है, लेकिन इसकी बड़ी उग्र प्रतिक्रियाएं होती हैं, इसीलिए मानसिक और प्राणिक सत्ताओं को उच्चतर शक्तियों को पकड़ने की जगह अपने-आपको उनके आगे समर्पित कर देना चाहिये। हमें आंशिक रूपान्तर पर सन्तुष्ट होकर नहीं बैठ जाना है। हमें उच्चतर शक्ति को भौतिक स्तर तक उतारना है और उसके द्वारा जीवन की अत्यन्त ब्योरेवाली चीजों पर शासन करना है। मन उन पर शासन नहीं कर सकता। हमें उच्चतर प्रकाश, शक्ति और आनन्द को नीचे लाना है ताकि वे हमारी वर्तमान प्रकृति का रूपान्तर करें। इसके लिए सत्ता के हर अंग में, शुद्ध, अमिश्रित सच्चाई होनी चाहिये जो स्पष्ट रूप से देख सके कि सत्ता के हर भाग में क्या हो रहा है और जो सत्य और केवल सत्य की ही मांग करती हो।

प्रकाश के नीचे उतरकर जीवन के ब्योरे की छोटी-से-छोटी चीज पर शासन करने की दूसरी शर्त यह है कि व्यक्ति अतिमानस में स्थित अपने दिव्य व्यक्तित्व के बारे में सचेतन हो।

कई बार साधकों में अनुभूतियों से ही सन्तुष्ट हो जाने की वृत्ति होती है। तुम्हें केवल अनुभूतियों से सन्तुष्ट न हो जाना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यहां हम सब एक ही उद्देश्य को चरितार्थ करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, अतः हमारे अन्दर एक तरह की एकता-सी पैदा हो गयी है जिससे हम एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं या एक दूसरे के लिए बाधक भी हो सकते हैं।

सत्ता के रूपान्तर की शर्तें हैं अपने-आपको उच्चतर प्रकाश की ओर खोलना और सम्पूर्ण भाव से समर्पण करना। इससे रूपान्तर आता है, अतः, यदि सम्पूर्ण तात्त्विक निष्कपटता हो, प्रकाश की ओर उद्घाटन और समर्पण हो और सभी स्तरों पर धीरे-धीरे चेतना का विकास हो तो तुम इस योग के आदर्श साधक बन सकते हो।

१५ अगस्त १९२४ के बारे में पुराणीजी के संस्मरण

कौन है जो इस दिवस का वर्णन कर सकता है, कल्पना के रंग, काव्यमयी उपमाओं और बहुसंख्यक विशेषणों से कोई लाभ न होगा। बस इतना कहना पर्याप्त है, “वह १५ अगस्त का दिवस था।” और कोई दूसरा दिन आध्यात्मिक क्रिया के गाम्भीर्य और तीव्रता में इस दिवस के साथ होड़ नहीं लगा सकता और न ही सम्वेदनाओं की बाढ़ और उस वातावरण के सामने कोई दिन टिक सकता है जिसमें यहां का प्रत्येक व्यक्ति नहा रहा था।

प्रभु का अपने शिष्यों के साथ सभी सम्भव सम्बन्धों को ग्रहण करने, उन्हें प्रत्यक्ष और जीवन्त बनाने के लिए यह दिवस परम चिह्न है। प्रत्येक शिष्य उन्हें अपना मानता है और प्रभु हर एक को अपना मानते हैं। हर एक यह मानता है कि प्रभु उससे सबसे अधिक प्रेम

अगस्त २००५

करते हैं और यह सच है कि वे हर एक से सबसे अधिक प्यार करते हैं। यह अनुभूति कोई भ्रान्ति या कोई प्रवञ्चनकारी आत्म-सम्मोहन नहीं, एकदम से वास्तविक है। व्यक्ति परम सत्य के जिस सहज, गतिशील विधान का अंग बन जाता है वह है प्रेम—भागवत प्रेम।

सभी आश्रमवासियों में समर्पण के आनन्द का उफान उठ रहा है—समर्पण के परमानन्द की चिनगारी सबको अभिभूत कर रही है। सब कुछ त्याग दिया, प्रत्येक वस्तु समर्पित कर दी, इस तरह आदमी कितना उन्मुक्त अनुभव करता है! कितना हल्का और भारमुक्त अनुभव करता है! कोई है जिसने तुम्हारे समस्त भार को ले लिया है, वह परम प्रभु की एक शक्ति है। तुम उस पर निश्चित रूप से भरोसा रख सकते हो। तुम्हें केवल अपने तुच्छ स्व को त्यागना है, बाकी उनका कार्य है, इसके बाद तुम्हें कोई चिन्ता, कोई व्यग्रता नहीं होती! कोई प्रयास नहीं—केवल स्नेह-भरा समर्पण! कितना आसान!

प्रत्येक चेहरा समर्पण के आनन्द से दमक रहा है। हर एक प्रसन्न है और वे साधारणतः ज्ञान के अवतार दीखते हैं, लेकिन आज वे भिन्न हैं। आज वे मूर्तिमान प्रेम हैं। यह रहे महान् कवि और परम प्रेम के अवतार...!

प्रश्न है क्या मांगा जाये? प्रेम या आशीर्वाद! या फिर हमें प्रेम और आशीर्वाद दोनों के लिए प्रार्थना करनी चाहिये और अपने जैसे अयोग्य व्यक्तियों को स्वीकारने के लिए कृतकृत्य होना चाहिये? शाश्वत की देहली पर खड़ी अन्तरात्मा ने जब उनकी स्वप्निल और प्रेममयी आंखें देखीं तो क्या वह हमेशा के लिए सम्मोहित न हो गयी! भागवत प्रेम का अवर्णनीय रहस्य यहां प्रत्यक्ष अनुभूति बन गया था। भला कौन इस तथ्य की व्याख्या कर सकता है? तथ्य है तथ्य और अनुभव अनुभव, उसकी कोई व्याख्या सम्भव नहीं।

“मुझे उन्हें क्या देना चाहिये?” यह मन का प्रश्न है। “मुझे क्या

मांगना चाहिये?" यह हृदय का प्रश्न है। दोनों ही उत्तर देना अस्वीकार करते हैं और दोनों ही प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। मन अपने अर्पण की तुच्छता का अनुभव करता है और मौन है। हृदय अपनी भिक्षा-वृत्ति के कारण लज्जा का अनुभव करता है और यह भी अनुभव करता है कि उसके अहं को चोट लगी है। इस सुखद उलझन को भला कौन सुलझा सकता है?

लेकिन यह सब दर्शन से पहले था। जब व्यक्ति सचमुच उनके सम्मुख खड़ा होता है, समस्त उत्सुकता, समस्त अहंकार, सभी विचार, सभी प्रश्न, सभी दृढ़ निश्चय भागवत तीव्र प्रवाह में बह जाते हैं।

वे परम प्रेम के सशरीर अवतार! कितनी पारदर्शकता! परम प्रभु के हृदय में भी संवेगों का समुद्र ठाठें मार रहा है। हमारा हृदय पिघल कर उनके चरणों पर जा गिरा है, अनजाने उसने स्वयं को समर्पित कर दिया है, यहां किस भाषा की आवश्यकता है। केवल एक ही भाषा का यहां स्थान है—शरीर और उसके अर्पण की भाषा, समर्पण की क्रिया में शरीर के साष्टांग प्रणाम की भाषा, हृदय के स्पन्दन और नेत्रों के अश्रु-प्रवाह की भाषा। देवत्वगर्भित कितनी शान्ति विराजमान है! इस अनुभूति का कितना सौन्दर्य है!

हर एक समता रखने की कोशिश कर रहा है। हर एक अचञ्चल है और शान्त रहने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन आज मनुष्य जाति की सारी सीमाएं भागवत प्रेम की बाढ़ में बह गयी हैं। अन्तरात्मा की अपनी समता बनी है, लेकिन समस्त सत्ता में हलचल मची है क्योंकि अज्ञात जलधाराएं उसमें हिलोरें ले रही हैं। ज्ञान ताक पर रख दिया गया है और हर जगह प्रेम की बाढ़ आ गयी है। आज अन्तरात्मा को भागवत विजय की वह सुनिश्चिति प्राप्त हुई है जो आज तक कभी न मिली थी।

सभी भोजनालय में एकत्र हैं और आनन्द में सराबोर, आनन्द में

अगस्त २००५

रहा रहे हैं। हर एक प्रसन्न है—परम प्रसन्न—पूर्ण आनन्द में है! आज परमानन्द का साम्राज्य उतरा है। हे शिल्पी! कितना भव्य शिल्प है। प्रत्येक के लिए ऐसे आनन्द का पारावार, जो हर एक में भर कर उफन पड़ता है।

चार बजे, सभी रोज के स्थान, बरामदे में बैठे हैं। आशा से भरपूर, सभी शान्त हैं; बस इधर-उधर, कुछ फुसफुसाहट। मन नीरवता के साथ यही दोहरा रहा है, “वे कब आयेंगे? वे आ जायें।” लो सवा चार बज गये—दरवाजे के पीछे वही पुरानी परिचित लेकिन फिर भी नयी ‘खट्’ की आवाज! धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है : गुरु बाहर चरण धरते हैं, उनके पीछे-पीछे श्रीमां लाल पाड़ की सफेद मोतिया जैसे रंग की साड़ी में सुशोभित दीख रही हैं। वे अपनी उसी बड़ी जापानी कुर्सी पर विराजमान हो गये। माताजी उनकी दाहिनी ओर छोटे-से स्टूल पर बैठ गयीं। कुछ देर के लिए—करीब पांच मिनट के लिए पूर्ण निश्चल-नीरवता छायी रही।

उसके बाद उन्होंने हर एक पर पृथक् नजर डाली। क्षण निश्चल-नीरवता में घुल रहे थे। एक बार फिर सबके अन्दर संवेग की लहर दौड़ गयी और सभी फिर से भागवत संवेग के समुद्र में डूबे गये। ओह, कितना अद्भुत हो अगर सम्पूर्ण शाश्वतता इसी अनुभूति में बहती चले! काल, बिचारा काल, मनुष्य उसके प्रवाह को दोषी ठहराते हैं; लेकिन समय के प्रवाह में क्या दोष है भला? अगर इतने प्रेम और इतने भागवत आनन्द की क्रीड़ा हो सकती है तो बिचारे काल को भी बह लेने दो और अपनी शाश्वतता पा लेने दो। संसार को भागवत बनने दो! इसके साथ-साथ एक दूसरी शक्तिशाली अभीप्सा जो ऊपर उठी वह यह थी : “प्रकट करने की आवश्यकता नहीं;—सम्पूर्ण शाश्वतता को इस नीरव-निश्चलता में बह जाने दो!”

१५ अगस्त १९२५—श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर हुई वार्ता

(पुराणीजी की स्मृति पर आधारित)

समय—शाम, साढ़े चार बजे

हमारे योग का लक्ष्य है अतिमानसिक सत्ता की, अतिमानसिक जगत् और अतिमानसिक प्रकृति की खोज और उनकी अपने जीवन में अभिव्यक्ति। लेकिन हमें अपने-आपको कुछ ऐसी सामान्य भूलों से बचाये रखना चाहिये जो प्रायः हुआ करती हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि कुछ सिद्धियां, जैसे अणिमा, गरिमा, भौतिक क्रिया-कलाप पर अधिकार, शरीर को नीरोग करने की क्षमता—ये चीजें अतिमानस-भावापन्न शरीर के घटक हैं। कई बार कई ऐसे लोग ये शक्तियां पा लेते हैं जो जाने-अजाने अपने-आपको अन्तस्तलीय सत्ता की ओर खोल देते हैं जहां ये शक्तियां पायी जाती हैं। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं जहां ये शक्तियां ऐसे लोगों में पायी जाती हैं जिन्हें अतिमानस या योग के बारे में कुछ भी पता नहीं होता।

कुछ लोगों का ख्याल है कि इस योग के लिए भूतकाल में अनगिनत बार प्रयास किया जा चुका है, कि बहुत बार ज्योति का अवतरण भी हुआ है और वह बार-बार आकर लौट गयी है। यह बात ठीक नहीं मालूम होती। मुझे लगता है कि अभी तक अतिमानसिक शरीर को नीचे नहीं उतारा गया है, अन्यथा वह बना रहता। इसलिए हमें अपने प्रयास को तुच्छ समझकर उसकी उपलब्धि के मार्ग में बाधाएं न डालनी चाहियें।

अभी समय नहीं आया है कि यह बतलाया जा सके कि अन्त में रूपान्तर क्या रूप लेगा। पुराने योगियों ने जो कर दिखाया था वह

अगस्त २०

मुख्य रूप र
या। वह प्र
द्वारा भौति
हम यहां ज
का उसके
साधनाओं
करना नहीं

फिर
एकमेव चे
पर उसकी
प्रभाव से
हमें इसे उ
हक नहीं
को रूपान

एक
प्रयास है।
मालूम हो
सत्ताएं य

से अतिम
तैत्ति
अतिमान

कही गयी
(विज्ञान)

जाता है।
अवतरण

लेवि
सम्भव है

अगस्त २००५

मुख्य रूप से शारीरिक क्रिया-कलाप पर प्राण के नियन्त्रण का परिणाम था। वह प्राणिक सिद्धि हमारा उद्देश्य नहीं है—जिससे प्राणिक शक्ति द्वारा भौतिक द्रव्य और उसकी क्रियाओं पर अधिकार पाया जा सके। हम यहां जो पाने की कोशिश कर रहे हैं वह है हमारी समग्र सत्ता का उसके सभी स्तरों और अभिव्यक्तियों में पूर्ण रूपान्तर। पुरानी साधनाओं का लक्ष्य भौतिक सत्ता पर विजय पाना या उसका रूपान्तर करना नहीं था। उन्होंने उस पर कोई सीधी पकड़ नहीं पायी थी।

फिर यह विचार है कि चूंकि हर चीज एक है इसलिए हमें एकमेव चेतना को प्राप्त करना और अपनी सत्ता के विभिन्न स्तरों पर उसकी कुछ अनुभूतियां प्राप्त करनी हैं। यह वेदान्ती विचारों के प्रभाव से आनेवाली भूल है। यह सच है कि चेतना एक ही है और हमें इसे उपलब्ध करना है, परन्तु हमें बस इतनी-सी उपलब्धि पाकर तृप्त नहीं जाना है, जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा, हमें सारी सत्ता को रूपान्तरित करना है।

एक विचार यह है कि हमारा योग सचेतन विकास के लिए एक प्रयास है। यहां आत्मा जड़-भौतिक में अन्तर्लीन है और उसके अधीन मालूम होती है। क्रम-विकास की क्रिया द्वारा प्राणिक और मानसिक सत्ताएं यहां जीवन में प्रकट हुई हैं। हमारा प्रयास यह है कि मन में से अतिमानस को प्रकट करें।

तैत्तिरीय उपनिषद् में भौतिक के प्राण में, मन में विज्ञान यानी अतिमानस में और फिर आनन्दमयी चेतना में उठाये जाने की बात कही गयी है। एक और उपनिषद् का कहना है कि जो मनुष्य अतिमानस (विज्ञान) को प्राप्त करता है वह “सूर्य के द्वार” से बाहर निकल जाता है। अतिमानस (विज्ञान) तक पहुंचकर उसके जीवन में सचेतन अवतरण की बात कहीं नहीं आती।

लेकिन इस प्रक्रिया को प्रतिविकास (Involution) मानना भी सम्भव है—अभिव्यक्त सत्ता का अतिमानस की सत्य-चेतना में उतरना

जो पूर्णता के साथ मन में, वहां से प्राण में और फिर भौतिक सत्ता में उतरता है।

अपनी साधना में हम यह भी देखते हैं कि आरोहण की एक गति है, लेकिन वही सब कुछ नहीं है, हमें केवल आरोहण से ही सन्तुष्ट होकर न बैठ रहना चाहिये। हमें सचेतन रूप से फिर से उतरकर अतिमानसिक ज्योति, सत्य सामञ्जस्य को नीचे उतारना है ताकि वे हमारी प्रकृति—मन, प्राण और शरीर—पर शासन करें और उसे रूपान्तरित करें। इस भांति निचली शक्तियों का सत्य में आरोहण होता है जिसमें से आत्मा भौतिक में उतरती है और सारी प्रकृति में सत्य अभिव्यक्त होता है।

यह काम सबके बस का नहीं है। लोग सोचते हैं कि हर एक यह योग कर सकता है, लेकिन यह आंशिक सत्य है। सबको यह योग करने की पुकार नहीं हुई है। यह कहा जा सकता है कि सब लोगों में यह योग करने की छिपी हुई क्षमता है, लेकिन उससे उन्हें इस योग के लिए एक हद तक तैयारी करने में सहायता मिलती है। विस्तृत मानसिक फैलाव, प्राणिक प्रकृति की निम्नतर वृत्तियों को अस्वीकार करने का कठिन, दुष्कर और लम्बा काम और उससे भी अधिक कठिन भौतिक सत्ता में परिवर्तन लाना—ये ऐसी चीजें हैं जिनके लिए हर एक कोशिश नहीं कर सकता। हम चाहते हैं कि पहले अपनी सारी सत्ता को अतिमानसिक प्रकृति में बदल दें। लेकिन यहीं पर इति नहीं हो जाती, हमें उस शक्ति को नीचे बुलाकर बाहरी जीवन पर लगाना और वहां भी सत्य और सामञ्जस्य को स्थापित करना है। मैं तुम्हें बतला चुका हूं कि अभी वह समय नहीं आया है कि यह कहा जा सके कि अन्तिम रूपान्तर का स्वरूप कैसा होगा। जब समय आयेगा तो वह अपने-आपको प्रकट करेगा। तुमसे बस यही मांग की जाती है कि अपने-आपको सत्य के प्रति अधिकाधिक खोलो। बाकी सब परम ईश्वर की इच्छा के अनुसार होगा।

१५ अगस्त १९२६ के

श्रीअरविन्द के वक्तव्य का एक अंश

... तुम सिद्धान्त रूप से जानते हो कि वह लक्ष्य—योग—क्या है। वह है धरती पर साधारण मनुष्य को सन्तुष्ट करनेवाली चेतना, शक्ति, सत्य, सद्बस्तु से भिन्न चेतना, शक्ति, सत्य के प्रकाश और दिव्य सद्बस्तु को उतार कर लाना जो पार्थिव चेतना को ऊंचा उठाने और यहां की हर चीज का रूपान्तर करने के लिए नियत है।

यह तबतक नहीं हो सकता जबतक कि ऊपर से निर्णय न हो, और यह तबतक भी नहीं हो सकता जबतक कि स्वयं पार्थिव चेतना अपने किन्हीं अंशों में, उन लोगों में से कुछ में, जो यहां निचले स्तर पर निवास करते हैं, उसे ग्रहण करने के लिए तैयार न हो। एक बार यह चेतना, यह शक्ति उतर आये तो वह चिरकाल के लिए उन लोगों के लिए बनी रहेगी जो उसे पाने के लिए इच्छुक और योग्य हैं।

लेकिन हमने इस दिन को एक विशेष महत्त्व दिया है और अगर हम उस सत्य में निवास करें जिसका यह प्रतीक है तो यह उचित होगा। हम इस दिन को व्यक्तिगत और सामान्य प्रगति की एक भूमिका के रूप में मान सकते हैं। इस दिन को उत्सर्ग, आत्म-परीक्षा और भविष्य की प्रगति के लिए तैयारी का दिन और सम्भव हो तो ऐसी विशेष शक्ति के स्वागत का दिन बना सकते हैं जो प्रगति के काम को आगे बढ़ायेगी।

यह काम हर एक व्यक्तिगत रूप से कर सकता है अगर वह इस दिन सच्ची मनोवृत्ति अपनाए और उचित स्थिति में रहे। ... असल में हम लोग ही इस दिन को निर्णायक बना सकते हैं। और हम लोग ही इसकी पूर्ति में सहायक हो सकते हैं।

पहले से ही आत्मोत्सर्ग होना चाहिये, अपने अन्दर भूत पर नजर

डालनी चाहिये कि हम कहां तक पहुंचे हैं; हमारे अन्दर कौन-सी चीज तैयार है, कौन-सी चीज नहीं बदली जिसे बदलना बाकी है, कौन-सी चीज एक जटिल रूपान्तर के लिए पीछे खड़ी प्रतीक्षा कर रही है; अभी तक कौन-सी चीज प्रतिरोध कर रही है और कौन-सी चीज अभी तक अंधेरे में है। अभीप्सा होनी चाहिये, हम जिस परिवर्तन को जरूरी मानते हैं उसे सिद्ध करने के लिए शक्ति का नीचे आह्वान होना चाहिये।

अगर हम इस दिन अपने को इधर-उधर बिखेरते फिरें तो हम कुछ नहीं कर सकते। उसकी जगह होनी चाहिये तीव्र एकाग्रता ताकि आन्तरिक सत्ता तैयार होकर प्रकाश को ग्रहण करने के लिए ऊपर की ओर मुड़े। हम जिस अनुपात में बाहरी रूप देनेवाली गति को स्वीकार करते हैं, हम उच्चतर क्रिया में बाधा डालते हैं और भीतरी परिवर्तन के लिए जरूरी ऊर्जा का अपव्यय करते हैं। साधारण दिन के क्रिया-कलाप के अतिरिक्त जो कुछ किया जाये वह या तो इस गति के अंग के रूप में या फिर इस तरह किया जाये जैसे वह सत्ता की बाहरी सीमा के बाहर है और भीतरी गतिविधि को अस्तव्यस्त नहीं कर सकता और दिन की सभी चीजों का उपयोग प्रगति के लिये किया जाये।...

मन और अतिमानस

(१५ अगस्त १९२५ की शाम को हुआ वार्तालाप—पुराणीजी की स्मृति पर आधारित)

शिष्य—क्या मन से अतिमानस की ओर संक्रमण अपने स्वभाव में उस संक्रमण से अधिक तात्त्विक और उग्र है जो अतिमानस से और अधिक ऊंचे स्तरों की ओर होता है?

अगस्त २००५

श्रीअरविन्द—तुम्हारा इससे मतलब क्या है? क्या तुम यह जानना चाहते हो कि क्या वह इतना ही निर्णायक कदम होगा जितना अज्ञान से ज्ञान की ओर?

शिष्य—जी।

श्रीअरविन्द—देखो, मन विभाजन के आधार पर काम करता है। वह चीजों को हमेशा टुकड़े-टुकड़े करके लेता है, एक समय में एक पहलू और उसे लेकर वह इस तरह काम करता है मानों वही पूर्ण हो। यह आधार ही गलत है।

अतिमानस ऐक्य है और उस ऐक्य के आधार पर ही वह विभाजन को जानता है। वह भगवान् की ओर ले जानेवाली निकटतम भूमिका है। हां, वह मन में भी काम कर रहा है। लेकिन मन में तुम सत्य को आंशिक रूप में खोजते और पाते हो। मन ज्ञान के लिए प्रयास है, स्वयं ज्ञान नहीं। मन केवल चित्रित करता है, प्राप्त नहीं कर सकता। वह सत्य को पूरी तरह प्रकट नहीं कर सकता।

अतिमानस प्राणिक स्तर पर भी काम करता है। वहां उसकी क्रिया सहजवृत्ति के रूप में यथार्थ किन्तु गुप्त क्रिया के रूप में रहती है जो अतिमानस के निकटतम है। लेकिन अतिमानस एकदम भिन्न है। तुम कह सकते हो कि वह कोई स्वचालित चीज है, लेकिन यान्त्रिक नहीं। तुम कह सकते हो कि वह “अपने-आप सक्रिय” सत्य है। एक बार तुम अतिमानस को पा लो तो, अगर तुम चाहो तो “सूर्य के द्वार” से होकर निकल सकते हो। अगर तुम उससे ऊपर जाओ तो एक ऐसे लोक में पहुंच सकते हो जहां किसी सूर्य की जरूरत नहीं होती। लेकिन अगर तुम अतिमानस को नीचे ला सको तो यह तुम्हारे लिए अधिक सम्भव और सरल हो जाता है। उसके बाद सत्ता का यह खिलना, स्वाभाविक और सरल विकास ही होता है, लेकिन यहां सारा संघर्ष मन, प्राण और शरीर में ही होता है।

तुम अतिमानस को पा गये हो इसका एक चिह्न यह है कि तुम्हें विचार करने या सोचने की—जैसा कि हम समझते हैं—कोई जरूरत नहीं रहती। अतिमानस में सोचने की जरूरत नहीं रहती। इसका यह मतलब नहीं है कि वहां कोई विचार नहीं रहता या सब कुछ कोरा हो कोरा रहता है। वहां कोई स्वयम्भू चीज होती है जो कार्य करती है।

शिष्य—कैसे?

श्रीअरविन्द—“कैसे” यह तुम समझ नहीं पाओगे।

शिष्य—लेकिन जब कोई विचार ही न हो तो मन कैसे काम करता है?

श्रीअरविन्द—मन में तुम एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक सोचते हो, फिर वहां से किसी और बिन्दु पर चले जाते हो, ऐसे ही चलता रहता है। तब तुम उन सबको इकट्ठा करके कार्य-कारण के नाते में जोड़ देते हो। अब मान लो कि ये सारे सैकड़ों विचार एक साथ उठें, अपने सभी ब्योरों को एक सेकेण्ड से भी कम समय में प्रकट करें, तो तुम इनकी कल्पना कर सकते हो? यह है अतिमानसिक विचार।

शिष्य—मैं इसकी कल्पना कर सकता हूं।

श्रीअरविन्द—हां, तुम कल्पना कर सकते हो, लेकिन जबतक तुम्हें अनुभव न हो, तुम उसका ठीक भाव नहीं पा सकते।

शिष्य—क्या आप अतिमानस के किसी और पहलू की बात बता सकेंगे?

श्रीअरविन्द—कोई और पहलू? यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम इस तरह मन द्वारा समझ सको।

शिष्य—फिर भी हमें इससे कुछ तो सहायता मिलेगी ही।

श्रीअरविन्द—उदाहरण के लिए, युगपत् क्रियाशीलता और विश्राम, क्या तुम इसकी कल्पना कर सकते हो?

शिष्य—क्या यह सच है कि सभी मानसिक क्षमताओं के साथ

अगस्त २००५

मैं खानेवाली क्षमताएं अतिमानस में भी होती हैं?

श्रीअरविन्द—यह बात मैंने 'आर्य' में लिखी है। मैंने जब 'आर्य' लिखा था तो मैं सीमा-प्रदेश पर था। अब मैं वही बात नहीं कहूंगा। हर एक को उस भूमिका में से गुजरना पड़ता है, यह सच है कि तर्क-बुद्धि से मिलती-जुलती दिव्य मेधा है; और तुम कह सकते हो कि जो दिव्य मेधा की तरह काम करती है वह अतिमानस की क्रिया से आती है, लेकिन यह है बिलकुल भिन्न ही चीज। मैं बात मन की भाषा में कह रहा हूं। मैं केवल छाया दे सकता हूं, यह सच्ची चीज नहीं है। उदाहरण के लिए, तर्क-बुद्धि कार्य-कारण का पता लगाती और उन्हें जोड़ती है जब कि दिव्य मेधा सबको उचित सम्बन्ध में रखती है। और भी चीजें हैं जिन्हें मन की भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

शिष्य—उदाहरण के लिए?

श्रीअरविन्द—विरोधी तत्त्वों में समाधान—उदाहरण के लिए, पूर्ण नीरवता और पूर्ण अभिव्यञ्जना, क्या तुम इसे मन की भाषा में व्यक्त कर सकते हो?

शिष्य—जब अतिमानस उतर आयेगा तो वह अपनी ही भाषा विकसित करेगा?

श्रीअरविन्द—वहां भाषा की जरूरत ही नहीं होती। मान लो तुम्हें अतिमानस मिल गया है और मुझे भी मिल गया है तो हमें भाषा की जरूरत ही न होगी।

शिष्य—तो क्या तब हम सब चुपचाप बैठे रहेंगे सारे समय?

श्रीअरविन्द—तुम्हारे लिए तो यह भयंकर चीज़ होगी न? (हंसी)...

शिष्य—शायद 'क' को भय है कि तब वह कोई प्रश्न न पूछ सकेगा।

और एक शिष्य—उपनिषद् में याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं, ज्यादा प्रश्न न करो नहीं तो तुम्हारा सिर गिर जायेगा।

शिष्य—सिर गिर जाये तो एक आशीर्वाद होगा।

शिष्य—भौतिक स्तर की विजय प्राप्त हो जाये तो क्या इसका यह मतलब होगा कि उन सब लोगों में भी विरोधी शक्तियों की पराजय जो योग की ओर खुले नहीं हैं?

श्रीअरविन्द—तुम घूम-फिरकर वही मानवजाति का प्रश्न ले आते हो। यानी तुम जानना चाहते हो कि क्या इस विजय का अर्थ विश्वविजय होगा। जरा ठहरो, पहले उसे भौतिक स्तर पर स्थापित तो होने दो फिर देखेंगे....।

अतिमानसिक अवतरण के लिए वैश्व परिस्थितियां

(१५ अगस्त १९२५ की शाम को हुआ वार्तालाप, पुराणीजी की स्मृति पर आधारित)

शिष्य ('क्ष' की तरफ से)—क्या आज पहले की अपेक्षा अतिमानसिक अवतरण के लिए परिस्थितियां अधिक अनुकूल हैं? यदि हां तो कैसे?

श्रीअरविन्द—सबसे पहले तो, भौतिक जगत् का ज्ञान इतना बढ़ गया है कि वह अपनी सीमाएं तोड़ने की-सी स्थिति में हो रहा है।

दूसरे, सारे जगत् में बाहरी और भीतरी मन, बाहरी और भीतरी प्राण, बाहरी और भीतरी भौतिक के परदों को फाड़ने की कोशिश की जा रही है। मनुष्य अधिक 'चैत्य' बन रहे हैं।

अगस्त २००५

तीसरे, प्राण भौतिक पर इस तरह कब्ज़ा करने की कोशिश करता है जैसी उसने पहले कभी नहीं की। यह एक निश्चित चिह्न है कि जब कभी उच्चतर सत्य नीचे आने की कोशिश करता है तो वह विरोधी प्राणिक शक्ति को धरती पर उछालता है और भांति-भांति की असामान्य प्राणिक अभिव्यक्तियां दिखलायी देती हैं; जैसे पागल होनेवालों की संख्या बढ़ जाती है, भूकम्प बढ़ जाते हैं इत्यादि। साथ ही, रेल, तार, हवाई जहाज आदि आधुनिक विज्ञान की खोजों के कारण जगत् में ज्यादा एकत्व आ रहा है। यह एकत्व उच्चतम शक्ति के अवतरण के लिए एक शर्त है और यही हमारी कठिनाई भी है। चौथे, ऐसे लोगों की संख्या में वृद्धि जिनका बड़ी संख्या में लोगों पर जबर्दस्त प्राणिक प्रभाव है।

ये कुछ ऐसी निशानियां हैं जिनसे लगता है आज वैश्व परिस्थिति शायद ज्यादा तैयार है। हां, हम पिछले प्रयासों की परिस्थितियों के बारे में कुछ भी नहीं जानते, लेकिन जहां तक हम देख सकते हैं ये परिस्थितियां हमारे प्रयास को उचित ठहराती हैं।

शिष्य—क्या आप यह मानते हैं कि वैश्व शक्तियों का ज्ञान योग का आवश्यक अंग है?

श्रीअरविन्द—हां, क्योंकि तुम्हें ऐसी वैश्व शक्तियों से काम पड़ता है—खासकर विरोधी शक्तियों से—जो अपना प्रभाव डालती हैं, और साथ ही तुम्हें उन्हें भी जानना चाहिये जो सहायता करती हैं। जब तुम व्यक्तिगत साधना कर रहे होते हो तब भी ये वैश्व शक्तियां अपना अनुभव कराती हैं। हां, जैसे-जैसे तुम विकसित होते जाते हो, वैसे-वैसे उनका रूप पूरी तरह बदलता जाता है। इन वैश्व शक्तियों की गतिविधि निचले स्तरों पर शुरू नहीं होती। वह ज्यादा ऊंचाई पर शुरू होती है। यह सच है कि सभी निश्चय ऊपर लिये जाते हैं लेकिन उनका जिन स्तरों से सम्बन्ध होता है उनका पता नहीं लगने दिया जाता। बीच में

एक परदा आ जाता है, और हर लोक को अपने निश्चय आप करने की छूट दी जाती है। संघर्ष में लगी शक्तियों को यह छूट दी जाती है कि वे अपना फैसला आप करें। जब निर्णायक मोड़ आ जाता है तब उच्चतम निर्णय की जानकारी दी जाती है; तुम कम ज्ञान को पाने को कोशिश करके ज्यादा बड़े ज्ञान के विकास में सहायता दे सकते हो।

शिष्य—इसमें साधकों की क्या जिम्मेदारी है?

श्रीअरविन्द—तुम एकाग्र अभीप्सा द्वारा इस प्रयास में सहायता कर सकते हो। तुम्हें इस आदर्श को पूरा करने के रास्ते में आनेवाली हर बाधा का डटकर सामना करना चाहिये। लेकिन यह करने को जगह अगर तुम विरोधी शक्तियों के सुझाव सहते चले जाओ और उनके मन्त्र जपते रहो जो तुमसे तथा औरों से कहते हैं कि यह सम्भव नहीं है, तो तुम उनकी सहायता करोगे।

“श्रीअरविन्द” के नाम के बारे में

३० नवम्बर १९६१

प्यारी छोटी बहन, माताजी ने तुम्हारी लिखी वह चिट्ठी मुझे दिखलायी जिसमें तुमने “श्री” शब्द के बारे में लिखा है जो तुम्हें परेशान कर रहा है। श्रीमां चाहती हैं कि इस बारे में मैं अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करूँ। हाँ, तो मैं खरा और स्पष्टवादी होऊँगा। यह मानना एकदम से गलत है कि श्री केवल एक सम्मानसूचक उपसर्ग है जिसे हम अरविन्द नाम के आगे लगाते हैं। ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। यहां श्री का अर्थ महाशय, श्रीमान् इत्यादि बिल्कुल नहीं है। यहां श्री नाम का ही हिस्सा है। श्रीअरविन्द एक और अविभाज्य शब्द है। यही वह अन्तिम

अगस्त २००५

रूप है जिसे स्वयं श्रीअरविन्द ने अपने नाम को दिया। और मैं तुमसे कह सकता हूँ कि इस रूप में मान्त्रिक प्रभाव है। श्री शब्द का उच्चारण अन्य कई भारतीय या यूरो-अमरीकन अक्षर से अधिक कठिन नहीं है और मेरे ख्याल से यह लाभप्रद नहीं है कि हम किसी सामान्य यूरोपियन या अमरीकन की इस दलील के बहाने निचले स्तर पर उतर आयें कि सचमुच नाम अरविन्द है और श्री सम्मानसूचक उपसर्ग है, और यह कि यही ठीक है और दूसरों को भी हमारे मत को मानना चाहिये। मुझे भय है, यह एकदम से निरर्थक भ्रम है, बल्कि हमें तो प्रयास यह करना चाहिये कि सामान्य जनता को ऊपर उठायें और सत्य के साथ उसका साक्षात्कार करायें।

श्रीमां ने तुम्हें लिखा मेरा यह प्रबोधन देख लिया और वे इससे पूरी तरह सहमत हैं।

क्षमा करना, शायद मेरी चिट्ठी का लहजा कुछ पैना हो गया। मैं हूँ, तुम्हारा बहुत प्यारा बड़ा भाई—

नलिनीकान्त गुप्त

(‘शृण्वन्तु’ फरवरी ८१ से साभार)

सोसायटी समाचार

१५ अगस्त २००५—श्रीअरविन्द का १३३ वां जन्मदिन मनाया जायेगा। इस अवसर पर सोसायटी के बीच ऑफिस में ये दो कार्यक्रम भी होंगे—

१. श्रीअरविन्द सोसायटी की वार्षिक सभा, १२, १३ तथा १४ अगस्त को होगी।

२. श्रीअरविन्द के गीता-प्रबन्ध (Essays on the Gita) पर डॉ. एम. बी. नडकर्णी जी का शिक्षा-शिविर १७ से २६ अगस्त तक लगेगा।

सवरे ९ से १० फिर १०.३० से ११.४५ तक। सभी का स्वागत है।
 बैंगलोर (कर्णाटक) २४ तथा २५ सितम्बर को श्रीअरविन्द सोसायटी,
 श्रीअरविन्द भवन, ११० गंगाधर चेट्टी रोड, (उलसूर लेक), बैंगलोर
 -५६००४२ में युवा शिविर लगेगा। १६ से ३० वर्ष के जो नवयुवक
 इसमें भाग लेना चाहें वे उपर्युक्त पते पर श्री एम. एम. भट्टाचार्य जी
 के नाम पत्र लिखकर पूरी जानकारी हासिल कर लें। दूरभाष-संख्या
 है—(०८०) २५५५९८८५ शिविर निःशुल्क है।

अन्नामलय यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी आश्रम आये—

तमिलनाडु की अन्नामलय यूनिवर्सिटी ने योग के विद्यार्थियों के
 लिए अपने पाठ्यक्रम में श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के सर्वांगीण योग
 को सम्मिलित कर लिया है। करीब १३० विद्यार्थी अपने डिप्लोमा के
 सिलसिले में आश्रम आये थे।

केन्द्रों तथा शाखाओं के समाचार

नडिआद (गुजरात) शाखा ने २९ मार्च, श्रीअरविन्द के देहावशेष
 पधराये जाने की वर्षगांठ मनायी।

धार (मध्यप्रदेश) ने ११ अप्रैल को श्रीअरविन्द के देहावशेष
 पधराये जाने की दूसरी जयन्ती मनायी। इस उपलक्ष्य में इस शाखा ने
 स्वाध्याय-शिविर का भी आयोजन किया।

पुद्दुकोट्ट (तमिलनाडु) केन्द्र ने १५ मई को अपनी चौथी जयन्ती
 मनायी। वहां श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के विषय में एक 'क्विज' कार्यक्रम
 भी हुआ।

पोरबंदर (गुजरात) में २१ तथा २२ मई को पोरबंदर की युवा-
 समिति ने दो दिवसीय युवा-शिविर लगाया जिसमें करीब ७५ युवाओं
 ने भाग लिया। इसमें ध्यान, आसन, व्यायाम, भाषण इत्यादि के साथ-
 साथ युवकों ने 'वन्दे मातरम्' गान भी सीखा।

वडोदरा (गुजरात) में आश्रमवासी श्री मोहनभाई मिस्त्री ने १२

अगस्त २००५

तथा १३ अप्रैल को भजन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। ५ से १० वर्ष के बच्चों के लिए २१ अप्रैल से १ मई तक एक शिविर भी लगा जिसमें ८० बच्चों ने भाग लिया।

उज्जैन-केन्द्र से प्रकाशित निम्नांकित हिन्दी पुस्तकें इस पते पर उपलब्ध हैं—श्रीअरविन्द सोसायटी सेण्टर, C-2/13, M.I.G., ऋषि नगर, उज्जैन-४५६०१० :

१. अमृत कुम्भ : श्रीअरविन्द वचनामृत—संकलनकर्ता हरिभाई पंचाल, अनुवादक प्रेमशंकर भट्ट, रु. १०/-

२. चलो, चलें भगवान् से मिलने—लेखिका ज्योतिबेन थानकी, अनुवादिका अमिता भट्ट, रु. ३०/-

३. मृत्यु को परम का स्पर्श—लेखिका ज्योतिबेन थानकी, अनुवादक प्रेमशंकर भट्ट, रु. ३५/-

अन्य केन्द्रों द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें :

४. दैनिक जीवन में साधना—लेखिका ज्योतिबेन थानकी, अनुवादिका नीताबेन पण्डित, रु. ५/-

५. दिव्यता की तेजोमय किरण : द्युमान्—लेखिका ज्योतिबेन थानकी, अनुवादक प्रेमशंकर भट्ट, रु. २०/-

रतलाम (म० प्र०) में श्रीअरविन्द सोसायटी के अन्तर्गत एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय 'श्रीमातृविद्या' चल रहा है। २९ मार्च २००५ को छात्राओं के लिए "मातृ करुणा छात्रालय" का उद्घाटन भी हुआ। सर्व सुविधायुक्त यह छात्रालय जुलाई २००५ से आरम्भ हो रहा है। इस होस्टल के वार्डन के पद हेतु आवेदन-पत्र आमन्त्रित हैं। कृपया इस पते पर सीधा पत्र-व्यवहार करें—

श्रीअरविन्द सोसायटी

सेक्रेटरी ऑरो आश्रम, सैलाना रोड

रतलाम-३९३५०

सूचना

पुरोधा और अग्निशिखा के लिए शुल्क भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखिये —

१. मनीऑर्डर-फॉर्म टाइप करके न भेजें। यह फॉर्म पर छपी लकीरों के बीच ऐसा घपला जाता है कि पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है। हाथ से लिखना ठीक है।

२. तमिलनाडु में हिन्दी पढ़नेवाले, विशेषतः डाक-विभाग में हिन्दी जाननेवाले बहुत कम हैं। अतः मनीऑर्डर-फॉर्म या पत्र का पता अंग्रेजी में ही लिखें।

३. मनीऑर्डर-फॉर्म के सम्पर्क-स्थान पर यह जरूर लिखें:

(क) यह धन किसलिए, किस पत्रिका के लिए और कितने समय के लिए भेजा जा रहा है।

(ख) अपना नाम व पूरा पता पिनकोड सहित साफ-साफ पढ़े जा सकनेवाले बड़े अक्षरों में (अंग्रेजी में) लिखें।

(ग) अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

४. पता बदल जाये तो उसकी सूचना तुरन्त दें। अन्यथा पत्रिकाएं लौट-लौट आती हैं।

५. मनीऑर्डर या डी. डी. या चैक पुरोधा एवं अग्निशिखा के नाम ही भेजें, आश्रम के नाम नहीं।

६. पत्रिका के लिफाफे पर आपके पते के ऊपर आपकी ग्राहक-संख्या और शुल्क समाप्त होने की तारीख लिखी रहती है।

७. पत्रिका प्राप्त न होने की सूचना एक मास प्रतीक्षा के बाद अपने डाकखाने से जांच-पड़ताल कर हमें तुरन्त सूचित करें। देर से सूचना प्राप्त होने पर कई बार वह अंक भेजना सम्भव नहीं होता।

८. धैर्य से लिखें, अक्षर स्पष्ट हों यह जरूरी है।

पुरोधा हर महीने की १० तथा ११ तारीख को भेजी जाती है।
अग्निशिखा हर महीने की २५ तथा २६ तारीख को भेजी जाती है।

अगस्त २००५

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
 केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
 पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com
 CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

अग्निशिखा

36
—
2



Central
Gurukul Kangri University
Haridwar-240404 (U.A.)
134910

अखिल भारतीय पत्रिका

सितम्बर २००५

‘सम्पादकीय’ :

सच्चा प्रेम

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

हम इस श्लोक से बहुत परिचित हैं और मानते हैं कि गुरु ही हैं साक्षात् प्रभु। वे ही हैं प्रतिष्ठा, सम्मान, पूजा-अर्चना के अधिदेव, किन्तु गुरु का एक ऐसा रूप भी हमारे सामने है जिसमें मां का माधुर्य और वात्सल्य भी हमें अभिभूत करता है।

उसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह चिट्ठी है जो एक साधक ने श्रीमां को लिखी थी :

“प्रिय माताजी,

मैं जानता हूँ कि आपका प्रेम और आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि मेरे प्रति आप इतनी कृपालु और सदय न रहतीं तो अच्छा होता। कारण यह है कि मेरे स्वभाव में ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण मैं आपसे यह कहने का साहस नहीं कर पाता कि मैं न आपको और न आपके योग को स्वीकार कर पाता हूँ। इसके अभाव में शिष्य बनने का अर्थ क्या हुआ?”

माताजी का उत्तर देखें : “मैं गुरु के रूप में प्रेम और आशीर्वाद नहीं देती हूँ। मैं किसी भी तरह के बदले की आशा किये बिना एक मां की तरह तुम्हें प्रेम और आशीर्वाद देती हूँ।”

यह चिट्ठी एक साधिका ने लिखी है—

“माताजी,

‘समर्पण’ शब्द का अर्थ मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पाती। आपको अधिक समर्पित होने के लिए मुझे क्या करना चाहिये?”

सितम्बर २००५

३

श्रीअरविन्द ने उत्तर दिया, "जिस तरह तुम माताजी के लिए काम करती हो, सब कुछ उनके लिए करती हो, वह आन्तरिक समर्पण है। सामान्यतः मन और प्राण अपने ही लिए, अपनी इस इच्छा, उस मांग के पीछे भागते रहते हैं और अगर वह सब उन्हें प्राप्त न हो तो असन्तोष और अपूर्णता महसूस करते हैं। इसके विपरीत जब वे अपने-आपको समर्पित कर देते हैं तो उनके सारे उत्पात समाप्त हो जाते हैं। तब माताजी उनके लिए जो भी करें उसे वे स्वीकार कर लेते हैं—वे कोई मांग नहीं करते; पूर्ण रूप से माताजी पर निर्भर रहते हैं, केवल उनका संकल्प पूर्ण करने के लिए जीवित रहते हैं, अपनी इच्छाओं के लिए नहीं। ऐसा हो तब उनकी पुरानी आदतों, इच्छाओं से मुक्त हुए उनके मन और प्राण माताजी की उपस्थिति से, माताजी की इच्छा-शक्ति से माताजी के कार्य के प्रति भर उठते हैं—यही उनके जीवन का एकमात्र ध्येय बन जाता है।"

श्रीअरविन्द ने किसी और की चिट्ठी के उत्तर में यह कहा था, "तुम माताजी के बालक हो और मां का अपने बच्चों के लिए प्रेम असीम होता है और वे अपने बच्चों के स्वभाव के दोषों को धैर्य से सह लेती हैं। माताजी के सच्चे बच्चे बनने की कोशिश करो, वह सच्चा बालक तुम्हारे अन्दर बैठा है, लेकिन तुम्हारा मन बेकार की छोटी-छोटी बातों में उलझा रहता है और उनको लेकर बहुत ज्यादा गड़बड़ करता रहता है। माताजी को केवल स्वप्न में देखना काफी नहीं है बल्कि सारे समय उन्हें अपने साथ, अपने अन्दर देखने और अनुभव करने का प्रयास करो। तब तुम अपने ऊपर नियन्त्रण रख पाओगे और बदलते जाओगे; क्योंकि जब वे तुम्हारे साथ रहेंगी तो यह सब वे आसानी से कर देंगी।" और एक चिट्ठी में वे कहते हैं, "अपने-आपको पूरा-पूरा दे देना साधना का रहस्य है, मांग करना या

किसी चीज को पाने का आग्रह करने का कोई अर्थ नहीं है। तुम अपने-आपको जितना अधिक माताजी को देते जाओगे, उतनी अधिक तुम्हारी ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जायेगी। लेकिन उसके लिए तुम्हारी अधीरता और विद्रोह को विलीन होना होगा। 'मैं कुछ नहीं पा रहा हूं,' 'मुझे सहायता नहीं मिल रही' तथा प्रेम न पाने का भाव, यहां से चले जाने, जीवन का त्याग या आध्यात्मिकता के लिए प्रयास छोड़ देने के इन सभी सुझावों को तुम्हें एकदम से त्याग देना चाहिये।"

माताजी ने एक बार कहा था, "एक क्षण के लिए भी जो मैं सम्पर्क में आता है, उसके योगक्षेम के लिए मैं अपने-आपको जिम्मेदार मानती हूं। और बात सच है। श्रीअरविन्द ने एक बार लिखा था, 'हमेशा ऐसे व्यवहार करो मानों माताजी तुम्हें देख रही हैं, क्योंकि वे हमेशा तुम्हारे सामने उपस्थित रहती हैं।"

मुझे अचानक एक सज्जन की बात याद आ गयी जो श्रीअरविन्द के इस वाक्य का पूरी तरह समर्थन करते हैं।

कपिल नामक सज्जन कौतुहलवश आश्रम देखने आये। उन्होंने माताजी के दर्शन भी किये, कुछ दिनों के बाद वे चले गये। एक-दो वर्ष के अन्तराल में वे कुछ दिन रहकर चले जाते। उनके व्यवहार से ऐसा लग नहीं रहा था कि वे भक्त बन गये हैं। कई वर्ष बीत गये। एक दिन उनकी पत्नी का फोन आया, "कपिल को असाध्य बीमारी लग गयी है। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। वे कहते हैं कि मुझे आश्रम जाना है। वही एक स्थान है जहां मैं बहुत सुखी रहा हूं। तू मुझे वहीं ले चल।"

पति-पत्नी दोनों आये। तीन दिन रहकर चले गये। लगभग एक महीने के बाद कपिल के बच्चों का पत्र आया कि उनके पिता का देहान्त हो गया है। वे माताजी का आशीर्वाद-पुष्प हमेशा अपने साथ रखते थे। जब उनका अन्तिम समय आया तो वे पत्नी से कहने लगे,

तू मुझे
तो य
और
क्या

सितम्बर

१. भाष
- सद्व
२. आ
- पर
३. तुम
- ज
- औ
४. सु
- है
५. दुब
६. तुम
- अ
७. सि
८. तु
- स
९. पू

सितम्बर २००५

"तू मुझे जाने दे। माताजी मेरे पास आयी हैं।"
तो यह है श्रीअरविन्द के उस वाक्य का प्रमाण।
और यही है सच्चा और दिव्य प्रेम!
क्या हम उसके लिए प्रयास करेंगे?

—अनुबेन

दैनन्दिनी

-131527

सितम्बर

- भाषा का मूल्य उसी हद तक है जहाँ तक वह तुम्हें परम सद्बस्तु के सम्पर्क में ला सके।
- आत्मविकास और आध्यात्मिक अभीप्सा मनुष्य को अपने कर्म पर अधिकार करने योग्य बनाते हैं।
- तुम्हें कोई विधान छोड़ने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक तुम ज्यादा अच्छे और ज्यादा ऊंचे विधान को जानने और उसका अनुसरण करने के योग्य न हो जाओ।
- सुस्ती में एक दुर्भावना होती है, प्रयास करने से इन्कार होता है।
- दुर्बलता आदमी को सुस्त बनाती है।
- तुम बाहरी रूप से जो कुछ सीखते हो वह उच्चतर ज्ञान की ओर अपने-आपको उठाने की ओर एक कदम है।
- स्थिर अभीप्सा द्वारा ही तुम सीख सकते हो।
- तुम्हें केवल बौद्धिक रूप से ही नहीं, मनोवैज्ञानिक रीति से भी सीखना चाहिये।
- पूर्ण मुक्ति, पूर्ण सच्चाई, प्रेम और सत्य पर निर्भर करते हैं।

१०. सत्य के बिना सच्ची स्वाधीनता नहीं होती।
११. स्वाधीनता का अर्थ अपनी कामनाओं का अनुसरण नहीं इसके विपरीत, उनसे मुक्ति है।
१२. एकमात्र सच्ची स्वाधीनता वही है जो भगवान् के साथ ऐक्य से प्राप्त होती है।
१३. सच्ची स्वाधीनता एक ऊपर उठती हुई क्रिया है जो निम्न वृत्तियों के आगे नहीं झुकती।
१४. सच्ची स्वाधीनता भागवत अभिव्यक्ति है।
१५. जब तक हम झूठ बोलते रहेंगे, हम सुखकर भविष्य को अपने आपसे दूर ठेलते जायेंगे।
१६. यह कहने की जरूरत नहीं है कि जो सत्य के लिए अभीप्सा करते हैं उन्हें झूठ बोलने से बचना चाहिये।
१७. जीवन में से गुजरने का एकमात्र मार्ग—प्रेम और मुस्कान।
१८. परम जीवन को छोड़कर और कोई जीवन नहीं है।
१९. जीने-योग्य जीवन बस एक ही है, वही जीवन जो भगवान् के साथ ऐक्य के लिए समर्पित हो।
२०. हमारे जीवन पर सत्य के लिए प्रेम और प्रकाश के लिए प्यास का शासन होना चाहिये।
२१. व्यक्तिगत जीवन का आधारभूत कारण है भगवान् को खोजने का आनन्द और उनके साथ ऐक्य।
२२. धरती पर जीवन तत्त्वतः प्रगति का क्षेत्र है।
२३. प्रकाश, अन्तहीन प्रकाश, यहां अंधेरे का स्थान नहीं है।
२४. वह सबसे प्रेम करता है, वह सबको चलाता है, सब उसीके हैं। सब वही हैं।
२५. शाश्वत के साथ एक होकर, उसकी अनन्तता में जियो।
२६. हर बुराई सन्तुलन के अभाव से आती है।

सितम्बर २००५

अतः हम हमेशा, हर स्थिति में अपना सन्तुलन सावधानी के साथ बनाये रखें।

२७. हमें काम दिये गये हैं, हम केवल उपकरण हैं। हम जो बनाते हैं उसमें कुछ भी हमारा अपना नहीं है।
२८. जीवन के उन सभी रूपों को जो परिवर्तन नहीं सह सकते, लुप्त हो जाना चाहिये। जो उसे सह सकते हैं वे सब बच रहेंगे और आत्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे।
२९. खोज का और जन्म का कहीं कोई अन्त नहीं है। जो जीवन अपने लक्ष्य को पा लेता है वह और बड़े लक्ष्यों की मांग करता है। जब तक कि वह अपने-आपको न पा ले, वह रुक नहीं सकता।
३०. एक प्रकाश है जो हमें पथ दिखाता है, एक शक्ति है जो हमारी सहायता करती है।

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क

दीक्षा

जो कुछ घटा जनवरी १९३० के पहले सप्ताह में घटा। फरवरी में मेरी भतीजी और मैं दर्शन के लिए आश्रम आये और एक महीने तक रहे। प्रेरणा मेरी भतीजी की थी और मेरे विचार से आश्रम में रहकर वह मुझसे अधिक प्रसन्न थी। मैं तबतक आश्रम के वातावरण से अप्रभावित ही था। आश्रम की जीवन-चर्या एकदम भिन्न थी। वहां दीक्षित शिष्यों की गोपनीय-सी दिनचर्या थी जिसमें बिना किसी तैयारी

के मैं टपक पड़ा था। आश्रम के समारोहों में हम भाग लेते थे और वहां के अनुशासन का पूरा पालन करते थे। कभी जलपान करने बाजार न जाते, हालांकि कभी दिन में या रात को भी भूख लग आती थी। तबतक मुझे चाय की लत न लगी थी। आश्रम का सहज सौन्दर्य, पवित्रता और वातावरण की शान्ति और साधकों का समर्पण आत्मा के लिए उच्चतम अभीप्सा का प्रतीक बन गये थे। इन सबने मुझे गहराई से छू लिया था। साधकों के लिए माताजी और श्रीअरविन्द पृथ्वी पर उच्चतम दिव्यता के अवतार थे।

दिन में ऐसे दो अवसर होते थे जब साधक माताजी से सामूहिक रूप से मिल पाते थे, एक, वे सवेरे उन्हें प्रणाम करने जाते थे और दूसरा, शाम को जब माताजी सबको सूप देती थीं।^१ दोनों समय सम्पर्क मौन हुआ करता था। सूप-वितरण अपने ढंग का अनोखा अवसर था। चूँकि अमल किरण के वार्तालाप की पुस्तक 'लाइट एंड लाफ्टर' और नारायण प्रसाद की पुस्तक 'लाइफ इन श्रीअरविन्द आश्रम' में इस अवसर का स्मरणीय वृत्तान्त दिया गया है, अतः मैं केवल मेरे साथ जो कुछ हुआ उसी की बात करूंगा। सूप-वितरण आजकल जिसे स्वागत-कक्ष कहते हैं उसमें रात को आठ बजे शुरू होता था और दो घण्टों तक चलता रहता। आश्रमवासी करीब एक सौ थे और वे कमरे में बैठते थे जब कि हम बाहर से आये हुए दर्शनार्थियों को कमरे के बाहर बरामदे में बैठना पड़ता था जहां से माताजी को देख पाना हमारे लिए कठिन होता—हमें सामने बैठे लोगों के कन्धों के ऊपर से झांकना पड़ता था। फिर भी मुझे बाहर

^१ गुरु ने इसका अर्थ यूं समझाया था :

सूप देना इसलिए शुरू हुआ था ताकि साधक और माताजी के बीच भौतिक चेतना में आदान-प्रदान होने के कारण साधक लाभान्वित हो सकें।

सितम्बर २००५

बैठना ज्यादा पसन्द था क्योंकि धुंधले कमरे में अगरबत्ती के धूँएँ और रहस्यमय वातावरण में दो घण्टों तक बैठे रहना मेरी अनभ्यस्त प्रकृति के लिए केवल नींद का प्रलोभन ही हो पाता। कुछ समय बाद हम कमरे के अन्दर बैठने का अवसर दिया गया और तब हम माताजी को अच्छी तरह देख पाते थे। तब हमने उनकी विविध भाँगीमाँगे देखीं—कभी समाधिस्थ, कभी जागृत, कभी मुस्कुराती हुई या गम्भीर और कभी अन्तरस्थ स्थिति में सूप उंडेलते हुए उनके हाथ का हल्का-सा कम्पन भी देखा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बारी की प्रतीक्षा देर तक करनी पड़ती और मेरे लिए तो यह सुदीर्घ प्रतीक्षा होती। चूँकि ध्यान करने की मेरी आदत न थी, इसलिए मुझे ऊँघ से बचने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता और तब भी कभी-कभी मुझे अनुपस्थित माना जाता। कभी ऐसा हो जाता तो मेरी भतीजी, जो पूरी तरह जागृत रहती थी, मुझे सचेत कर देती।

हम ऐसा महसूस करते थे मानों किसी “पैगम्बरी गुफा” में प्रवेश कर रहे हैं या किसी प्राचीन यूनानी मन्दिर में आ गये हैं जहाँ “एल्यूजीनियन” रहस्यमयी क्रियाएँ की जाती थीं जिसकी अधिष्ठात्री देवी थीं माताजी। अमल ने मुझे सुनाया था—“मेरी भी ठीक यही राय बनी थी। मैंने माताजी को भी अपनी राय सुनायी और मैंने अधिष्ठात्री देवी के लिए ‘पुरानी’ शब्द का प्रयोग किया। दुर्भाग्यवश उस शब्द का अर्थ फरासीसी भाषा में वृद्ध होता है और माताजी थोड़ा चौंक गयी थीं।” सूप के समय माताजी अपने स्थान पर आकर बैठतीं, आँखें मूंद कर अपने हाथ सामने फैला देतीं और उनके हाथ सूप के बरतन तक श्रीअरविन्द की शक्ति को पहुँचाते थे। उसके बाद माताजी आँखें खोल कर सूप-वितरण शुरू करतीं। कई लोग उस समय माताजी की पुकार के उत्तर में श्रीअरविन्द के हाथ माताजी के हाथों पर फैले हुए देखते थे। माताजी तक पहुँचने में मेरी बारी काफी

देर से आती तो प्रतीक्षा का कुछ समय मैं ध्यान-निद्रा में बिताता और कुछ समय माताजी के बदलते भावों को देखता रहता। मैं किसी ठोस अनुभूति का आश्वासन नहीं पाता। और न मैं यह कह सकता हूँ कि जब मैं उनके सामने जाता था तब उन्हें मेरी उपस्थिति का पता होता था या नहीं किन्तु यह निश्चित था कि वे निरन्तर अवैयक्तिक माधुर्य मूर्ति लगतीं। केवल एक ही बार, और मुझे अभी तक याद है, जब मैं सूप लेने गया तो उनकी दृष्टि कुछ पूछती-सी लगी, किन्तु मैं ताड़ न पाया। उन दिनों मुझे एक फोड़ा हुआ था—“धन्य फोड़ा!” जो दुख रहा था। क्या मेरे चेहरे पर दुःख की छाया दिख रही थी? लेकिन उनका ध्यान खींचने के लिए यह बहुत ही नगण्य बात होगी! आज मैं जानता हूँ कि हमारी कुशल-क्षेम की कोई भी बात हो—चाहे वह शारीरिक हो या और कुछ हो—माताजी के लिए अति नगण्य कुछ भी न था।

सूप का समारोह हो जाने के बाद हमारी आंखों के सामने एक शानदार दृश्य उपस्थित हो जाता। माताजी आंगन को पार कर अपने कमरे की ओर जातीं, जो आंगन आज तो अलग ही रूप में दीखता है। माताजी के आगे दो साधक एक दीया और दूसरा धूपदानी लिये चलते, कुछ उनके पीछे-पीछे चलते और हम बाकी लोग उन्हें गम्भीर मौन गति से प्रायः भाव-समाधि में चलते हुए देखने के लिए दोनों तरफ खड़े रहते। उनका मुख देदीप्यमान सम्मोहक अर्धस्मित लिए, निस्तब्ध वातावरण को एक अतिभौतिक परिवेश से भर देता था। अंग्रेज कवि यीट्स के साथ हम इस पंक्ति को दोहरा सकते हैं, “अपनी राह पर विचरता हुआ अनन्त सौन्दर्य।”

—नीरदवरण

१५ अगस्त—वह सत्य जिसका यह प्रतीक है

(भाग २)

१५ अगस्त १९४५

विजय आ गयी है, तेरी विजय हे नाथ, जिसके लिए हम तुझे अनन्त धन्यवाद देते हैं।

लेकिन अब हमारी तीव्र प्रार्थना तेरी ओर उठती है। तेरी शक्ति द्वारा और तेरी शक्ति से ही विजयी लोगों ने विजय पायी है। वर दे कि वे अपनी सफलता में इसे भूल न जायें और उन्होंने तेरे आगे संकट की तीव्र व्यथा के समय जो प्रतिज्ञाएं की हैं उन्हें वे भूल न जायें। उन्होंने युद्ध करने के लिए तेरा नाम लिया है, वर दे कि वे शान्ति स्थापित करते समय तेरी कृपा को भूल न जायें।

*

आह्वान

१५ अगस्त, १९४७

हे हमारी मां, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननी, तूने कभी, अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहांतक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ न छोड़ा। हे मां, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल

क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में हो खड़े हों और अध्यात्म-मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजाति को दिखा सकें।

*

१५ अगस्त, १९५० का सन्देश

हमारी साधना अब एक ऐसे स्तर पर पहुँच गयी है जहाँ हम अधिकतर अवचेतना और अचेतना पर भी काम कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप भौतिक नियतिवाद का पल्ला भारी हो गया है और मार्ग की कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं, इनका सामना अधिक साहस और दृढ़ता के साथ करना चाहिये।

बहरहाल, जो भी हो, तुम जो भी करो, भय को अपने ऊपर आक्रमण न करने दो। उसके जरा से स्पर्श पर भी सक्रिय हो जाओ और सहायता के लिए पुकारो।

तुम्हें यह सीखना होगा कि अपने-आपको शरीर के साथ एक न समझो, शरीर के साथ एक छोटे बच्चे का-सा व्यवहार करो जिसे यह विश्वास दिलाने की जरूरत है कि उसे डरना न चाहिये।

भय हमारे शत्रुओं में सबसे बड़ा है और यहाँ हमें उसपर अन्तिम रूप से विजय पानी ही चाहिये।

—श्रीमान्

सितम्बर २००५

घोषणा

१५ अगस्त, १९५४

मैं इस दिन के साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषा की अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूँ; वह है भारतीय नागरिक बनने की अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारत आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अन्तःकरण का देश है। मैंने निश्चय किया था कि ज्यों ही भारत स्वतन्त्र होगा मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूंगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहीं पॉण्डिचेरी के आश्रम के प्रति अपने भारी उत्तरदायित्व के कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब कि मैं अपने विषय में यह घोषणा कर सकती हूँ।

लेकिन, श्रीअरविन्द के आदर्श के अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्व में है, न कि विभाजन में। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिए दूसरी को छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है। इसलिए मैं आशा करती हूँ कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनाने की बूट रहेगी, यानी, भारतीय हो जाने पर भी मैं फ्रेंच बनी रहूंगी।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ, अपनी इच्छा और रुचि से मैं भारतीय हूँ। मेरी चेतना में इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है, इसके विपरीत, वे एक-दूसरे से भली प्रकार मेल खाती हैं और एक-दूसरे की पूरक हैं। मैं यह भी जानती हूँ कि मैं दोनों देशों की समान रूप से सेवा कर सकती हूँ, क्योंकि मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्द की महान् शिक्षाओं को मूर्त रूप देना और उन्होंने अपनी शिक्षाओं में यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधता के द्वारा इस भूमि पर 'भागवत एकत्व' को अभिव्यक्त करने के लिए उनका अस्तित्व है।

—श्रीमां

दर्शन-दिवसों के बारे में श्रीमां का वक्तव्य

(१५ अगस्त १९५६ के वार्तालाप का अंश)

प्यारी मां, हम दर्शन-दिनों^१ पर एक अलग-सा वातावरण क्यों अनुभव करते हैं? हमें इन दिनों पर कैसे आचरण करना चाहिये?

अलग? तुम यही पूछ रहे हो न! ... यह कम या अधिक अन्धकार-पूर्ण और विजातीय तत्त्वों का आक्रमण होता है, वे, सम्भवतः, शुभेच्छा के साथ आ सकते हैं, पर वे प्रायः पूर्ण अज्ञान ले आते हैं और उसे सम्पूर्ण रूप से यहां वातावरण में फैक देते हैं; और फिर स्वभावतः ही, यदि कोई जरा भी उस ओर खुला होता है जो कि हो रहा होता है, वह इस परिवर्द्धित अज्ञान के बोझ के नीचे अपने को कुचला हुआ अनुभव करता है।

मेरा मतलब यह नहीं है कि यहां कोई अज्ञान नहीं है! पर फिर भी, मात्रा थोड़ी भिन्न है। यहां, बिलकुल वैसी ही, एक प्रकार की चेतना के परिचालन निरन्तर, दिन-रात, दृश्य रूप में, अदृश्य रूप में हो रहे हैं; और कोई इसे चाहे या न चाहे, सब चीजों के बावजूद मनुष्य इसे अपने अन्दर ग्रहण करता है और कुछ काल के बाद वह कार्य करती है।

जब थोड़े-से लोग आते हैं तो कुछ चीज बदलती है, पर वह

^१ दर्शन-दिनों पर दर्शनार्थियों और शिष्यों को श्रीमां (और पहले श्रीअरविन्द) के सामने से एक-एक करके गुजरने दिया जाता था ताकि उनकी आध्यात्मिक सहायता सीधे प्राप्त कर सकें। १५ अगस्त, श्रीअरविन्द का जन्म-दिवस, वर्ष के चार दर्शनों में से एक दर्शन-दिवस है। इस वर्ष (१९५६) विशेषकर दर्शनार्थियों की संख्या बहुत बढ़ी थी।

सितम्बर २००५

परिवर्तन इतना अधिक नहीं होता जिससे कि कोई दुःख अनुभव हो; परन्तु जब इस प्रकार की भीड़ आती है, एकाएक टूट पड़ती है, तब समूचा स्तर तुरत नीचे गिर जाता है, और यदि मनुष्य अपने अन्दर घुस जाने में तथा अपने मस्तक को इन डुबानेवाली तरंगों से, अज्ञान की इस गर्क करनेवाली बाढ़ से ऊपर बनाये रखने में समर्थ न हो, यदि कोई अपना सिर इससे ऊपर न उठा सके तो, हां, वह बहुत बेचैनी अनुभव करता है।

नहीं, माताजी, वह आनन्द का वातावरण होता है!

तुम्हारे लिए वह आनन्द का वातावरण होता है!

जी हां, माताजी।

तब वह बिलकुल व्यक्तिगत बात है, मेरे बच्चे! यह विशुद्ध रूप में कोई व्यक्तिगत चीज है। और तुम्हें उसे बनाये रखने में सक्षम होना चाहिये।

वह अनुभव इसलिए आता है कि उस समय तुम्हारे अन्दर स्मृतियां जाग्रत होती हैं, एक प्रकार की एकाग्रता आती है। शायद जिसे तुम आनन्द कहते हो वह कोई प्राणिक हर्ष हो सकता है, क्या तुम ऐसा नहीं समझते? क्या वह एक प्रकार की उत्तेजना की स्थिति नहीं होती? तुम यह आनन्द कब अनुभव करते हो?

आज, दर्शन के बाद।

मैं समझती हूं कि यह वही चीज है जो उन लोगों के साथ होती है जो

अपने जन्मदिन पर अधिक ग्रहणशील होते हैं अथवा जिन्हें अपना ग्रहणशीलता जगाने के लिए किसी विशेष घटना को याद करने को जरूरत होती है।

उन दिनों जब श्रीअरविन्द दर्शन दिया करते थे, दर्शन देने से पहले, सर्वदा ही कुछ शक्तियों की या उस विशिष्ट अनुभूति को एकाग्रता या घनीकरण होता था जिसे वे लोगों को देना चाहते थे। और इसलिए प्रत्येक दर्शन एक पग आगे बढ़ना था; प्रत्येक बार कोई चीज जुड़ जाती थी। परन्तु यह उस समय होता था जब दर्शनार्थियों की संख्या बहुत सीमित होती थी। यह सब दूसरे ढंग से व्यवस्थित होता था; और यह आवश्यक तैयारी का एक अंग था।

परन्तु यह विशिष्ट एकाग्रता, अब, अन्य समयों पर होती है, न कि विशेषतः दर्शन-दिनों पर। और ऐसा पहले से कहीं अधिक बार होता है दूसरे प्रकार के अवसरों पर, अन्य परिस्थितियों के अधीन। यह क्रिया बहुत अधिक तेज हो गयी है, गति बढ़ गयी है; अवस्थाएं एक के बाद एक बहुत तीव्रता से आ रही हैं। और सम्भवतः उनका अनुसरण करना अधिक कठिन हो गया है; बहरहाल, यदि कोई अनुसरण करने की परवाह नहीं करता तो वह पहले की अपेक्षा अधिक जल्दी पीछे छूट जाता है; उसे लगता है कि उसे देर हो गयी है अथवा वह छोड़ दिया गया है। अब सारी चीजें शीघ्रता के साथ बदल रही हैं।

और मुझे कहना ही होगा इन दर्शन-दिवसों का, लोगों की इस सब भीड़ के बावजूद, आन्तरिक (अर्थात् आश्रम के लिए, आन्तरिक) प्रगति की दृष्टि से उतना अधिक लाभ नहीं होता जितना कि बाहर की ओर फैलाव के लिए होता है। इन दिवसों की उपयोगिता कुछ भिन्न प्रकार की है; यह उपयोगिता सर्वोपरि, अधिक दूर तक जाने के लिए, एक विशालतर क्षेत्र अधिगत करने तथा अधिक सुदूर बिन्दुओं

सितम्बर २००५

तक पहुंचने के लिए है। परन्तु एकाग्रता कम हो जाती है—और एक बड़ी भीड़ की यही असुविधा होती है, जो थी तो हमेशा से ही, पर जो इन विगत वर्षों में प्रारम्भ की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गयी है। प्रारम्भ में ऐसी भीड़ नहीं होती थी; और सम्भवतः भीड़ भी थोड़ी भिन्न प्रकार की होती थी।

अतएव जिस हर्ष की बात तुम कर रहे थे वह एक प्रकार की उत्तेजना अथवा एक अधिक तीव्र या अधिक सक्रिय जीवन का अनुभव होगा; परन्तु वह यथार्थ में कोई महत्तर 'उपस्थिति' नहीं है। मनुष्य सम्भवतः अपने-आपको एक अधिक ग्रहणशील स्थिति में ला देता है जिसमें वह अधिक ग्रहण करता है, पर वहां 'उपस्थिति' की कोई घनता नहीं होती (जहांतक कि मैं जानती हूं)।

इसलिए तुम्हें स्वयं अपने अन्दर ही उसका कारण खोजना होगा और इस हर्ष को बनाये रखने का उपाय भी।

परन्तु मां, आप प्रत्येक दर्शन-दिवस पर जो सन्देश दिया करती हैं उसका क्या अर्थ होता है? उदाहरणार्थ, आज आपने उस फूल का चित्र दिया है जिसका आध्यात्मिक अर्थ है अतिमानसिक अभिव्यक्ति।

हां, जैसा कि मैंने अभी कहा है, यह सन्देश हजारों प्रतियों के द्वारा सारे संसार में फैल जाता है। यह उस वस्तु का बाह्यीकरण है, यह प्रभाव को फैलाने का, सन्देश को फैलाने का, दूर-दूर तक पहुंचाने का एक तरीका है। दर्शन-सन्देश में कही गयी प्रत्येक चीज पहले से सुचिन्तित, प्रमाणित और परीक्षित होती है। और दर्शन-दिवस को वह दी जाती है। पहले परीक्षण किया जाता है, फिर उसे सार्वजनिक रूप से घोषित किया जाता है। पहली क्रिया होती है व्यक्तिगत विकास

की; दर्शनोत्सवों पर वह चीज सर्वत्र फैल जाती है।

श्रीअरविन्द ने सर्वदा ही दो गतियों की चर्चा की है : व्यक्ति का निर्माण ताकि वह व्यक्तिगत रूप से लक्ष्य तक पहुंचने में समर्थ हो, और जगत् की तैयारी... प्रगति, ऐसा कह सकते हैं कि, समष्टि की अवस्था के द्वारा न तो एकदम पीछे रोक ली जाती है, न ही उससे सहायता पाती है, पर वह (स्थिति) दोनों के बीच एक प्रकार का सन्तुलन उत्पन्न करती है। वैयक्तिक गति सर्वदा ही बहुत अधिक तीव्र और अधिक पैनी होती है; वह बहुत आगे, बहुत गहराई में और अधिक तेजी से जाती है। समष्टिगत गति एक प्रकार की नींव बनती है जो एक साथ ही नियन्त्रित करने और अवलम्ब देने का कार्य करती है। और वास्तव में इन दोनों गतियों के बीच सन्तुलन रहना आवश्यक है। अतएव, मनुष्य जितने ही अधिक वेग से व्यक्तिगत रूप से आगे बढ़ता है, उतना ही अधिक इस समष्टिगत आधार को फैलाने और सुदृढ़ बनाने का प्रयास आवश्यक होता है।

श्रीअरविन्द का जन्म—“शाश्वत” जन्म

(श्रीमां के वचन)

१४ अगस्त, १९५७

आज शाम को प्रश्नों का उत्तर देने के स्थान पर मैं चाहती हूं कि हम श्रीअरविन्द की स्मृति में ध्यान करें, इस पर ध्यान करें कि उस स्मृति को अपने अन्दर जीवन्त कैसे बनाये रखा जाये और उस कृतज्ञता को भी, जो हमारे अन्दर उस सबके लिए होनी चाहिये जो उन्होंने किया और अब भी अपनी सदा ज्योतिर्मयी, सजीव और सक्रिय चेतना में इस महान् दिव्य चरितार्थता के लिए कर रहे हैं। वे पृथ्वी पर इस दिव्य चरितार्थता की केवल घोषणा करने ही नहीं, बल्कि उसे संसिद्ध

करने भी
कल
जन्म है।

आज
सम्बन्ध
जन्मदिव
इसका स
रहस्यमय
से हो ज
व्यक्ति उ
मैं तुम्हें
शब्दों क
सरल अ
जिस ज
वह

एक-दूस
जवतक
सब अध
मैं, पक
हमारे प
होकर ए
के द्वारा

सितम्बर २००५

करने भी आये थे और वे इसे सिद्ध करने में लगे हुए हैं।

कल उनका जन्मदिन है, यह विश्व के इतिहास में एक शाश्वत जन्म है।

*

४ सितम्बर १९५७ को श्रीमां ने कहा :

आज किसी ने मुझसे एक प्रश्न पूछा है। यह मेरे उन शब्दों से सम्बन्ध रखता है जो मैंने तुमसे १४ अगस्त को, श्रीअरविन्द के जन्मदिवस के पहले कहे थे। यह प्रश्न मुझे रोचक प्रतीत हुआ क्योंकि इसका सम्बन्ध उन वाक्यों में से एक के साथ है जो जरा गूढ़ या रहस्यमय होते हैं और सरलीकरण के कारण अनेकार्थक या अस्पष्ट-से हो जाते हैं। जानबूझकर ही उन्हें ऐसा रखा गया था ताकि प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी चेतना के स्तर के अनुसार समझ सके। यह बात मैं तुम्हें पहले कई बार बता चुकी हूँ कि यह सम्भव है कि ठीक उन्हीं शब्दों को विभिन्न स्तरों पर समझा जाये। इन शब्दों को जानबूझकर सरल और जानबूझकर ही अस्पष्ट रखा गया था ताकि उन्हें अर्थ की जिस जटिलता को व्यक्त करना था उसके वाहक बन सकें।

वह अर्थ विभिन्न स्तरों पर थोड़ा-थोड़ा भिन्न होता है परन्तु वह एक-दूसरे का पूरक होता है और वह तबतक सचमुच पूर्ण नहीं होता जबतक उसे एक साथ सब स्तरों पर न समझा जाये। सच्ची समझ सब अर्थों की एक साथ समझ है, उसमें सभी अर्थ एक साथ दृष्टि में, पकड़ में, समझ में आ जाते हैं। पर उन्हें व्यक्त करने के लिए, हमारे पास जो भाषा है वह बहुत अक्षम है, हमें चीजों को विवश होकर एक के बाद एक करके, बहुत-से शब्दों और अनेक व्याख्याओं के द्वारा कहना पड़ता है...। मैं भी अब वही करने जा रही हूँ!

यह प्रश्न उन शब्दों से सम्बन्धित है जो मैंने श्रीअरविन्द के जन्म के बारे में कहे थे (ये उनके जन्मदिन से पहले कहे गये थे)। मैं उसका एक “सनातन जन्म” के रूप में वर्णन किया था। मुझसे पूछा गया है कि “सनातन” से मेरा क्या अभिप्राय है।

स्वभावतः, यदि इन शब्दों को अक्षरशः लिया जाये तो एक “सनातन जन्म” का कुछ विशेष अर्थ नहीं बनता। पर मैं तुम्हें अभी बताऊंगी कि कैसे इसकी एक भौतिक व्याख्या या अर्थ, एक मानसिक अर्थ, एक चैत्य अर्थ और एक आध्यात्मिक अर्थ हो सकता है—और वास्तव में है भी।

भौतिक रूप में, इसका अर्थ यह है कि इस जन्म के परिणाम तबतक रहेंगे जबतक स्वयं पृथ्वी रहेगी। श्रीअरविन्द के जन्म के परिणाम पृथ्वी के सम्पूर्ण अस्तित्वकाल में अनुभव होते रहेंगे। अतः मैंने इसे कुछ कवित्वपूर्ण ढंग से “सनातन” कहा है।

मानसिक रूप में, यह एक ऐसा जन्म है जिसकी स्मृति सनातन काल तक बनी रहेगी। आगे युगों तक श्रीअरविन्द का जन्म और उसके प्रभाव स्मरण किये जायेंगे।

चैत्य रूप में यह एक ऐसा जन्म है जिसकी पुनरावृत्ति विश्व के इतिहास में शाश्वत रूप से युग-युग तक होती रहेगी। यह एक ऐसा प्रादुर्भाव है जो पृथ्वी के इतिहास में, युग-युग में, समय-समय पर होता है, अर्थात् यह जन्म स्वयं अपने-आपको नये-नये रूपों में बार-बार दुहराता है और शायद प्रत्येक बार कुछ अधिक बड़ी चीज—अधिक सिद्ध और अधिक पूर्ण चीज—अपने साथ लाता है, परन्तु यह पार्थिव शरीर में अवतरित होने, अभिव्यक्त होने, जन्म लेने की वही क्रिया होती है।

और अन्त में, विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से, यह कहा जा सकता है कि यह जन्म पृथ्वी पर “सनातन” का जन्म है। क्योंकि प्रत्येक

सितम्बर २००५

बार जब अवतार भौतिक रूप ग्रहण करते हैं तो यह पृथ्वी पर स्वयं "सनातन" का जन्म होता है।

यह सब बात, दो शब्दों में आ गयी है : "सनातन जन्म"।

तो, अपनी बात पूरी करते हुए अन्त में, मैं तुम्हें एक सलाह देती हूँ—भविष्य में, अपने-आपसे यह कहने से पहले : "लो, इसका भला क्या अर्थ है, मुझे तो कुछ समझ में नहीं आया, शायद ठीक से अभिव्यक्त नहीं किया गया," तुम अपने-आपसे यह कह सकते हो : "सम्भवतः मैं उस स्तर पर नहीं हूँ जहां मैं इसे समझ सकूँ," और तब शब्दों के पीछे केवल शब्दों को नहीं, बल्कि किसी और चीज को खोजने की कोशिश करो। यह लो!

मैं सोचती हूँ हमारे ध्यान के लिए यह एक अच्छा विषय है।

१५ अगस्त, १९५८ का श्रीमां का वक्तव्य

चूँकि आज श्रीअरविन्द का जन्मदिन है, मैंने सोचा कि 'धम्मपद' पढ़ने की जगह कुछ और पढ़ूँ जिसमें तुम्हें रस आये और जो तुम्हें यह दिखाये कि श्रीअरविन्द ने देवताओं के साथ हमारे सम्बन्ध का निरूपण कैसे किया है।

तुम जानते ही हो, जानते हो न, कि भारत में विशेषकर, देवताओं की अनगिनत श्रेणियाँ हैं, सब विभिन्न स्तरों पर हैं, कुछ मनुष्य के बहुत पास, दूसरी 'परम' के बहुत समीप, और बहुत-सी मध्यवर्ती।

जो मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ उसे तुम अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे यदि मैं पौराणिक देवताओं का उल्लेख करूँ (वैसे देवता जैसे हमने उस दिन फिल्म के चित्रपट पर देखे थे), और जो, मैं कहूँगी कि कई बातों में मनुष्य से बदतर हैं (!) यद्यपि शक्ति के हिसाब से वे अनन्तगुना महान् हैं।

अधिमानस के देवता हैं जो पृथ्वी के महान् स्रष्टा हैं—अभीतक।
वेदों के देवता हैं जिनका उल्लेख ऋषियों ने हमतक आनेवाली हर
चीज में किया है। और हैं अतिमानस के देवता जो पृथ्वी पर अभिव्यक्त
होनेवाले हैं, यद्यपि अपने स्तर पर वे शाश्वत काल से विद्यमान हैं।

यहां श्रीअरविन्द विशेषकर वैदिक देवताओं के बारे में कह रहे
हैं, पर अनन्य भाव से नहीं, न ही बिलकुल निश्चित रूप से। कुछ
भी हो, ये देवता पौराणिक देवताओं की अपेक्षा अधिक महान् हैं।
श्रीअरविन्द ने जो कहा है वह यों है : संक्षेप में यह एक प्रार्थना
है :

विस्तृत होओ मेरे अन्दर, हे वरुण,
शक्तिशाली बनो मेरे अन्दर, हे इन्द्र,
हे सूर्य, प्रदीप्त होओ और भास्वर बनो,
हे चन्द्र, शोभा-सुषमा और मधुरिमा से भर उठो।
उग्र और भयंकर बनो, हे रुद्र,
प्रचण्ड और वेगवान् बनो, हे मरुत्,
बलवान् और साहसी होओ, हे अर्यमा,
विलासी और सुखदायी होओ, हे भग,
कोमल, कृपालु, प्रेमिल और अनुरागी बनो, हे मित्र,
उज्ज्वल और उद्भासक होओ, हे उषा,
हे निशे, भव्य और उर्वर बनो,
हे जीवन, परिपूर्ण, प्रस्तुत और प्रफुल्ल होओ,
हे मृत्यु, एक सौध से दूसरे सौध तक मुझे ले चलो।
इन सबको एक लय-ताल में बांध दो, हे ब्रह्मणस्पति।
मैं इन देवताओं का दास न बनूं, हे काली!

तो, श्रीअरविन्द काली को बड़ी मुक्तिदायिनी शक्ति मानते हैं जो

सितम्बर २००५

तुम्हें लगन के साथ प्रगति करने की ओर प्रवृत्त करती हैं और तुम्हारे अन्दर ऐसा कोई बन्धन नहीं छोड़ती जो तुम्हें प्रगति करने से रोकें।

मेरा ख्याल है कि ध्यान के लिए यह अच्छा विषय होगा।

*

श्रीअरविन्द काली को सबसे अधिक महत्त्व क्यों देते हैं?

जिन गुणों का ये देवता प्रतिनिधित्व करते हैं या जिनके ये प्रतीक हैं उन सबको प्राप्त करना आवश्यक और अच्छा है। इसीलिए श्रीअरविन्द उनका आवाहन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी प्रकृति को अपने अधीन कर लें। किन्तु, जो परात्पर भगवान् के साथ संयुक्त होना चाहता है, जो सर्वोच्च प्राप्ति के लिए अभीप्सा करता है, उसके लिए यह काफी नहीं हो सकता। इसीलिए अन्त में वे काली का आवाहन करते हैं ताकि वे उन्हें इन देवताओं के परे जाने की शक्ति दें।

क्योंकि, काली विश्व-माता का एक अत्यधिक शक्तिशाली पक्ष हैं। इनके द्वारा सृष्टि सभी देवताओं की शक्ति से इनकी शक्ति अधिक महान् है। अतएव इनसे युक्त होने का अर्थ है सभी देवताओं की समष्टि से अधिक विस्तृत, पूर्ण और शक्तिशाली होना। इसीलिए श्रीअरविन्द काली के साथ एकत्व को सबसे ऊपर और परे स्थान देते हैं।

२-२-१९६१

—श्रीमां

“सबसे सुन्दर १५ अगस्त (१९६२) का दिवस”

(श्रीअरविन्द के नब्बेवें जन्मदिवस १५ अगस्त १९६२ को हुए सामूहिक ध्यान के बारे में श्रीमां ने एक साधक से यह कहा था।)

मेरे बच्चे, पन्द्रह तारीख को दस बजे हमने यहां ध्यान किया। पौने दस बजे मैं यहां मेज के पास एकदम शान्त बैठी थी। और फिर ... मैं यह नहीं कह सकती कि श्रीअरविन्द आये, क्योंकि वे तो हमेशा ही यहां उपस्थित रहते हैं, लेकिन उस समय वे विशेष रूप में अभिव्यक्त हुए... सूक्ष्म भौतिक में, वे ठोस रूप में इतने विशाल बन गये कि आलथी-पालथी में विराजमान वे सारे आंगन में समा गये—यहांतक कि आंगन से भी कुछ बाहर निकल गये! वे सचमुच पूरे आंगन के ऊपर घिरे हुए थे, यानी, कि जो लोग आंगन में बैठकर ध्यान कर रहे थे, वे छिप नहीं गये बल्कि सब उनके नीचे बैठे दिखायी दे रहे थे। वे सबके ऊपर अधर में इस तरह बैठे थे (उन व्यक्तियों के सिरों पर नहीं!) और मैं (मैं यहीं थी) उनकी उपस्थिति की रगड़ को सूक्ष्म भौतिक में अनुभव कर रही थी—पूरी तरह से भौतिक घर्षण! और मैंने उन्हें देखा, मैंने उन्हें यहां बैठे हुए देखा—बहुत ही लम्बे, और शरीर पूर्ण रूप से अनुपातमय था, और फिर वे धीमे, बहुत धीमे नीचे उतरने लगे (इस अवतरण से ही घर्षण हो रहा था), वे सचमुच बहुत आहिस्ता-आहिस्ता उतर रहे थे ताकि वहां बैठे लोगों को किसी भी तरह का कोई धक्का न लगे। फिर वे यहां आंगन में प्रतिष्ठित हो गये, आधे घण्टे से कुछ अधिक समय तक वे यहीं विराजमान रहे, पूरी तरह से शान्त और निश्चल, लेकिन वे सभी व्यक्तियों पर पूर्ण रूप से एकाग्र थे—वे सभी उनके अन्दर थे।

मैं यहां मुस्कराती हुई, करीब... करीब सचमुच हंसती हुई—सी

सितम्बर २००५

बैठी थी; तुम उन्हें यहां इस तरह, चारों तरफ अनुभव कर सकते थे (श्रीमां अपने सारे शरीर का स्पर्श करती हैं)—सब जगह। और कितनी शान्ति छाई हुई थी! कितनी शान्ति, कितना बल, कितनी शक्ति...। और था शाश्वतता, विशालता तथा निरपेक्षता का भाव। एक तरह की निरपेक्षता का भाव मानों सब उसमें नहा रहे हों और लोग शाश्वतता में निवास कर रहे हों।

वह अनुभूति सचमुच सम्मोहक थी। सचमुच जो इसका अनुभव न कर पाया वह मन्दबुद्धि ही निकला।

मैं यह नहीं कह सकती कि वहां बहुत सारे मन्दबुद्धि नहीं बैठे थे। मुझे पता नहीं (हंसी), मैंने इस अवतरण के बारे में उनकी राय नहीं पूछी!

और बाद में, ऐसा नहीं हुआ कि वे एकाएक चले गये : वे धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता गये, मानों कोई चीज भाप बनकर उड़ जा रही हो; फिर चीजें अपनी सामान्य गति में वापिस लौट आयीं—इधर-उधर एकाग्रचित्त लोग बैठे थे, विभिन्न गतिविधियां चल रही थीं...।

मेरे ख्याल से कुछ लोगों ने इसका अनुभव जरूर किया होगा—शायद वे इसे पूरी तरह से समझ नहीं पाये क्योंकि उनमें अन्तर्दर्शन जैसी चीज नहीं है, लेकिन उन्हें ऐसा अनुभव हुआ होगा मानों वे उनके अन्दर उतर रहे हों। क्योंकि दोपहर को जब सब कुछ अपनी सामान्य अवस्था में लौट आया, (निस्सन्देह वे हमेशा यहां उपस्थित रहते हैं, लेकिन उस तरीके से नहीं! वे हमेशा यहां रहते हैं) तब वातावरण में मानों पछतावे की लहर अपना निशान छोड़ गयी, कोई ऐसी चीज जो कह रही थी, “ओह, यह सुन्दर चीज समाप्त हो गयी! ओह, १५ अगस्त का दिन चला जा रहा है, इस सुन्दर चीज का अन्त हो रहा है।” लेकिन वह चीज, जैसा कि मैंने वर्णन किया... ठोस वस्तु से भी अधिक ठोस थी, मुझे पता नहीं कि मैं इसे कैसे

समझाऊं, कैसे अभिव्यक्त करूं... उसमें एक तरह की निरपेक्षता का भाव था।

मैंने उन्हें बहुत बार उनके अतिमानसिक प्रकाश में देखा है; वे बहुधा यहां आये हैं (जब मैं बालकनी-दर्शन के लिए जाती थी तब वे आते थे; कभी-कभी वे समाधि के ऊपर होते थे; वे प्रायः यहां आते हैं) लेकिन... इस बार पहली बात तो यह थी कि अनुपात में वे विशाल थे—वे ज़मीन पर बैठे थे, ओह सचमुच! मैं तुमसे कह रही हूं, वे आंगन के बाहर तक विराजमान थे! और उन्होंने अपने-आपको इस तरह अभिव्यक्त किया कि हम भौतिक रूप से उनका अनुभव कर सकते थे। और वातावरण में कितना विश्वास था, कितना हर्ष था, कितनी निश्चिति थी; सब चीजों के अन्दर ऐसा विश्वास था, इतना दृढ़ निश्चय था मानों सब कुछ उपलब्ध हो चुका है। चीजों को चरितार्थ करने का न कोई सन्ताप था, न ही किसी भी तरह का कोई तनाव था।

यह अनुभूति करीब पौन घण्टे तक चली। उसके बाद चीजें अपनी सामान्य अवस्था में लौट आयीं।

(मौन)

अब तक जितने पन्द्रह अगस्त के दिवस आये हैं उनमें यह सबसे सुन्दर दिवस था।

ऐसा वातावरण पौन घण्टे तक बना रहा।

(मौन)

एक बात : (उन्होंने मुझे बताया नहीं था कि वे ऐसा करने जा रहे हैं!) जब मुझे सूचना मिली कि लोग आधे घण्टे के ध्यान के लिए एकत्र हो रहे हैं तो तुरन्त मेरे अन्दर किसी चीज ने कहा : "बहुत

सितम्बर २००५

बढ़िया।" अतः मैंने ध्यान के लिए सारी व्यवस्था करवा दी, और पौने दस बजे मैं मेज़ के पास बैठ गयी—फिर सब आरम्भ हुआ। इस चीज़ को आकार लेने में पांच मिनट लगे। ओह! तब मैं समझी। उन्होंने हमें बहुत ही सुन्दर उपहार दिया।

उनका समस्त माधुर्य, उनका समस्त वैभव और उनकी समस्त शक्ति तथा उनकी समस्त शान्ति यहां उपस्थित थे—जब वे सशरीर थे उससे कहीं अधिक प्रबल तथा स्पष्ट रूप में!

मुझे हमेशा ऐसी अनुभूति हुआ करती थी—उनके कमरे में हमेशा ऐसा ही वातावरण बना रहता है और जब कभी मैं उनसे सूक्ष्म रूप में मिलती थी, मुझे हमेशा इसी तरह के संवेदन प्राप्त होते थे। और कार्य करते समय भी, सारे समय, मुझे ऐसा ही लगता था मानों वे मेरे पीछे खड़े हैं, सारा काम कर रहे हैं। लेकिन यह अनुभूति कहीं अधिक प्रबल थी। बहुत अधिक शक्तिशाली। मानों... तुम उस अनुभूति के भंवर में फंस गये और उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है! वह इस तरह की थी—कोई निरपेक्ष चीज़ थी।

—श्रीमां

श्रीअरविन्द का दिवस

(१५ अगस्त १९६७ पर श्रीमां का कथन)

मैं अपने आसन पर बैठ गयी, समय प्रायः हो गया था, शायद आधा मिनट हो, और अचानक, बिना किसी तैयारी के, यूं ही, हथौड़े की चोट के समान : ऐसा प्रभावकारी अवतरण हुआ—पूरी तरह से स्थिर—किसी ऐसी वस्तु का... मानों उसी समय श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा (क्योंकि व्याख्या अनुभूति के साथ-साथ आयी : यह एक अन्तर्दर्शन था जो अन्तर्दर्शन न था, यह इतने समग्र रूप में ठोस था)

और शब्द थे : “स्वर्णिम शान्ति”। कितनी जोरदार ! और फिर वह अनुभूति हटी नहीं। पूरे आधे घण्टे तक नहीं हटी। यह नयी चीज है जिसे मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। मैं यह नहीं कह सकती ... वह देखी गयी, लेकिन वह वस्तुपरक अन्तर्दर्शन की तरह नहीं थी। और सहज रूप से दूसरों ने मुझसे कहा कि जिस क्षण वे ध्यान के लिए बैठे (राशिभूत अवतरण का संकेत) कोई चीज महान् शक्ति के साथ नीचे उतरी जो पूरी तरह से स्थिर थी, और ऐसी शान्ति का अनुभव हुआ जिसका उन्होंने कभी अपने जीवन में अनुभव नहीं किया था।

स्वर्णिम शान्ति। और यह सच है, उसने स्वर्णिम अतिमानसिक प्रकाश का भाव जगाया। लेकिन वह... एक शान्ति थी ! देखो, ठोस थी, अव्यवस्था और क्रिया-कलाप का निषेध नहीं, नहीं : ठोस, ठोस शान्ति थी। मैं रुकना नहीं चाहती थी। समय हो चुका था, फिर भी मैं दो-तीन मिनट रही। जब मैं रुकी तो वह अनुभूति जा चुकी थी। और इसने मेरे शरीर में बहुत बड़ा अन्तर कर दिया—स्वयं शरीर में इतना बड़ा अन्तर आ गया कि जब वह चली गयी तो मैंने बहुत बेचैनी का अनुभव किया। मुझे अपना सन्तुलन वापस लाने में आधा मिनट लगा।

वह आयी और चली गयी। वह ध्यान के लिए आयी और फिर वह चली गयी। आधे घण्टे से ज्यादा, पैंतीस मिनट तक रही।

शाम को, बालकनी^१ में भीड़ थी। मेरे ख्याल से यह हमारे यहाँ की सबसे बड़ी भीड़ थी, मैं जहांतक देख सकती थी भीड़ फैली थी।

^१ १५ अगस्त, श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर, माताजी अपने ऊपर के कमरे की बालकनी पर पांच-दस मिनट खड़ी होकर नीचे सड़क पर खड़े लोगों को दर्शन दिया करती थीं।

सितम्बर २००५

मुझके लोगों से खचाखच भरी थीं। तब मैं बाहर आयी और जैसे ही मैं बाहर निकली तो इस भीड़ से ऐसी चीज उठी जो एक अभ्यर्थना, एक प्रार्थना, और जगत्, विशेष रूप से यह देश जिस अवस्था में है उसके विरोध के बीच की चीज थी। यह चीज लहरों में उठी। मैंने उसकी ओर देखा—वह बहुत ही अनुरोधपूर्ण थी—और फिर मैंने अपने-आपसे कहा : “यह मेरा दिन नहीं है, यह तो श्रीअरविन्द का दिन है।” और मैं यूँ चली गयी (हटने का संकेत) और मैंने श्रीअरविन्द को आगे कर दिया। और जब वे आगे आये तो सामने खड़े होकर उन्होंने बस इतना ही कहा, बस यही कहा : “परम प्रभु सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।” (माताजी हंसती हैं) तुरन्त मैं मुस्कुराने लगी (मैं हंसी नहीं, बल्कि मुस्कुराने लगी) और वही सुवह वाली शान्ति उतर आयी।

तो लो।

“परम प्रभु सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।” अपने पूर्णतया विनोद-भाव के साथ, और तुरन्त सब कुछ स्थिर हो जाता है।

१५ अगस्त, १९१३ के अमृत^१ के संस्मरण

श्रीअरविन्द ‘माताकोयल स्ट्रीट’, जो आज ‘मिशन स्ट्रीट’ के नाम से जानी जाती है, में छह महीनों तक खपरैल की छतवाले एक मकान में रहे। आज वह मकान एकदम बदल गया है, वह जगह भी पहचानी नहीं जाती। इस मकान में मैंने श्रीअरविन्द के दर्शन किये थे। यहीं

^१ के. अमृत (जन्म १८९५) १८ साल की उम्र में १९१३ में श्रीअरविन्द से मिले। १९१९ में अपनी पढ़ाई समाप्त करने के बाद वे आश्रम में आकर बस गये। उनका देहान्त १९६९ में हुआ।

मुझे श्रीअरविन्द को दूर से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

जब श्रीअरविन्द इस मकान में रहते थे उन दिनों मैं रोज शाम को रामस्वामी आर्यंगर से समुद्र के किनारे मिला करता था। धीरे-धीरे हमारे बीच मैत्री की डोर मज़बूत होने लगी और परिणाम यह निकला कि वे मुझे अपने घर पर आने का निमन्त्रण देने लगे। बृहस्पतिवार और इतवार को हमारे विद्यालय की छुट्टी हुआ करती थी। ये दो दिन मैं श्रीअरविन्द के घर में आर्यंगर से मिल सकता था। शाम चार से पांच तक हम दोनों वहीं आर्यंगर के कमरे में बैठ कर आपस में बातें किया करते। पांच बजे के बाद हम समुद्र-तट पर जाकर और दोस्तों से मिलते। इन दिनों हमारी दोस्ती सचमुच गाढ़ी हो गयी।

आर्यंगर के साथ दोस्ती के कारण मुझे श्रीअरविन्द का घर अपना घर-सा लगने लगा। इसी कारण मुझे आर्यंगर के कमरे में जाने में कोई झिझक होती न ही कोई संकोच; वे घर में होते या न होते, मैं वहां चला जाता। लेकिन मैं कभी इतना साहस न जुटा पाया कि उनके घर के अलावा और कहीं जाता। मुझे यह अभद्रता लगती।

आर्यंगर के साथ जैसे-जैसे दोस्ती गहराने लगी मैं श्रीअरविन्द के मकान में रहनेवाले और लोगों से भी परिचित होने लगा। उनके नाम हैं—नलिनीकान्त गुप्त, विजय कुमार नाग—जिनका तमिल में नाम बन गया विजयकान्तन। ब्रिटिश सरकार के चंगुल से बचने के लिए उन्होंने अपना छद्मनाम बंकिम चन्द्र बसाक रख लिया था। उसी तरह सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती पॉण्डिचेरीवालों के लिए थे “सकरा”। सुरेन्द्रनाथ बोस अपने सच्चे नाम से जाने जाते थे। बाद में नगेन्द्रनाथ नाग और बीरेन राय भी श्रीअरविन्द के घर पर रहने आ गये थे।

नगेन्द्रनाथ को क्षयरोग हो गया था। कभी-कभी जब मैं आर्यंगर के साथ उनके कमरे के बाहर बरामदे में बैठा बातें करता रहता, मैं श्रीअरविन्द को घर के पिछवाड़े से निकल कर सामने के बड़े हॉल

सितम्बर २००५

में आते हुए देखता। वे वहीं रोगी की चटाई पर बैठ जाते, उनसे कुछ पूछते और अपने कमरे में लौट जाते। मैं बहुत भाग्यशाली था कि इस तरह कई बार उनके दर्शन कर पाया—यद्यपि यह दर्शन दूर से ही होता था। श्रीअरविन्द की मुख-मुद्रा, चाल से लगता था कि वे जिस काम के लिए आये हैं पूरी तरह से उसी में डूबे हुए हैं। वे इधर-उधर कहीं नजर नहीं डालते थे। और फिर भी, मैंने सुना था कि उनकी नजर से कोई चीज़ नहीं चूकती थी।

इस दौरान मैंने आयंगर से दो-एक बार कहा भी कि वे मुझे श्रीअरविन्द से मिलवा दें, लेकिन ऐसा लगा मानों उन्होंने मेरी बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया।

श्रीअरविन्द का जन्मदिन करीब आ रहा था—१५ अगस्त १९१३। मैंने आयंगर से एक बार फिर कहा कि वे मुझे श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर उनके पास ले जायें। वे खुशी-खुशी मान गये। मैं खुशी से फूला न समाया।

१५ अगस्त को आयंगर ने मुझसे शाम के साढ़े चार बजे आने के लिए कहा। मैं कुछ पहले ही पहुंच गया। सभी अतिथि एक-एक करके आ रहे थे। पांच, सवा पांच तक सब आ गये। शायद सूरज ढलने में घण्टा भर बाकी होगा—कमरे के अन्दर की रोशनी से मैंने यह अन्दाज़ लगाया।

घर के सामने के हिस्से में बीस-पच्चीस लोगों के खाने के लिए केले के पत्ते बिछे थे, मानों विवाह का भोज हो।

जहां तक मुझे याद है, जैसे ही कमरे के दरवाजे को अन्दर से बन्द कर दिया गया कि श्रीअरविन्द ने दूसरी तरफ से हॉल के अन्दर प्रवेश किया और एक तरफ खड़े हो गये। किसी ने उनके गले में गुलाबों की माला पहना दी। सभी की तालियों की गड़गड़ाहट से कमरा गूंज उठा। श्रीअरविन्द अंग्रेजी में कुछ बोले। इस सबकी मुझे

धुंधली याद है। मेरे ख्याल से स्मृति की इस धुंधलाहट का कारण हर्षातिरेक रहा होगा या फिर इस विशेष अवसर पर मेरे मन में हो रही व्याकुलता।

केले के पत्तों के सामने हम सब सामूहिक भोज के लिए बैठ गये। मैं अतिथियों में से एक था। हर्ष और आनन्द-भरी आंखों के साथ मैं श्रीअरविन्द को देखे चला जा रहा था—वे केले की हर पत्तल के सामने खड़े होकर, वहां बैठे व्यक्ति को अपनी मधुर मुस्कान से आप्लावित कर धीमे-धीमे आगे बढ़ रहे थे—इस तरह वे हर एक के सामने से गुजरे। उनके पीछे चलनेवाला व्यक्ति साथ-साथ खाना परोसता जा रहा था—कितनी मिठाइयां थीं, कितने व्यञ्जन थे!

आंगन में पानी से भरा एक बड़ा बर्तन रखा था और उसके पास ही था लोटा। हमने खाना खाकर, वहां हाथ धोये और फिर हम वहीं बैठकर बातें करने लगे। तबतक श्रीअरविन्द घर के अन्दरूनी हिस्से के बरामदे में एक कुर्सी पर जाकर विराजमान हो गये मानों किसी का इन्तज़ार कर रहे हों। सूर्यास्त हो चुका था। कमरे की रोशनी मद्धिम हो गयी थी। घर के हर हिस्से में लालटेनें जला दी गयी थीं। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे करके अतिथि जाने लगे।

मैं तो वहीं बैठा रहा। मुझे पता नहीं था कि मैं क्या करूं। जैसे ही सारे अतिथि चले गये आयंगर मेरे पास आये, उन्होंने मुझसे भारती, श्रीनिवासाचारी, वी. वी. एस. अय्यर जैसे बड़े-बड़े लोगों के नाम गिनाकर कहा कि ये लोग श्रीअरविन्द को प्रणाम करने आनेवाले हैं। अगर मैं उनके चले जाने तक प्रतीक्षा कर सकूं तो उसके बाद बस पांच-छह घरवाले ही बचे रहेंगे। आयंगर के मन में यह बात घूम रही थी कि उस समय वे मुझे श्रीअरविन्द के पास ले जायेंगे। लेकिन उसके लिए श्रीअरविन्द की अनुमति की आवश्यकता थी। उन्होंने मुझसे अपने मन की बात कही। मैंने तुरन्त हामी भर ली।

सितम्बर २००५

मन ही मन खूब खुश हुआ। लेकिन शायद सात-सवा सात बज गये थे और मेरे अन्दर हल्का-सा भय जागा—‘इस देर का कारण पूछने पर घर में क्या जवाब दूंगा?’ लेकिन इतने बड़े सौभाग्य के सामने मैंने भय की उस छाया को पीछे खदेड़ दिया।

आयंगर ने एक बार फिर मुझसे पूछा, “क्या तुम भारती वगैरह के साथ श्रीअरविन्द से मिलना चाहोगे या बाद में घरवालों के साथ?” मैं कोई जवाब न दे पाया। क्या भारती इत्यादि के साथ या घरवालों के साथ मिलने से कोई फर्क पड़ेगा? श्रीअरविन्द तो वही समान श्रीअरविन्द ही रहेंगे! मैं पल भर के लिए असमञ्जस में पड़ गया फिर एकाएक मैंने उत्तर दिया—“घरवालों के साथ मिलूंगा।” “तब तुम्हें थोड़ी और प्रतीक्षा करनी होगी”—यह कहकर आयंगर वहां से चले गये।

मुझे आठ बजे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। जाते समय जब भारती, श्रीनिवासाचारी तथा अय्यर की नजर मुझ पर पड़ी तो उन्होंने मुझे धूर कर देखा। (वे मुझे पहचानते तो थे ही) उन्होंने यह आशा नहीं की थी कि मैं श्रीअरविन्द के घर पर इतनी रात को होऊंगा। उनके चेहरों के हाव-भाव से ही मैं ताड़ गया कि ये मन ही मन सोच रहे हैं—“क्या यह यहां का सहवासी बन गया?”

करीब सवा आठ बजे आयंगर ने आकर मुझसे कहा—“तुम श्रीअरविन्द के सामने से गुजर कर उनके दर्शन कर सकते हो। हाथ जोड़े रखना, लेकिन बातचीत बिलकुल नहीं। उनकी दाहिनी तरफ से आकर उनके सामने पल भर के लिए हाथ जोड़े खड़े रहना, फिर चुपचाप वहां से निकल कर अपने घर वापिस चले जाना।” आयंगर का प्रत्येक शब्द मेरे मन में खुद गया।

जैसे ही मुझे अन्दर बुलाया गया मैं उठा और सीधा श्रीअरविन्द की ओर बढ़ा। ऊपर छत से एक लालटेन लटक रही थी जो कमरे

के अन्धकार को कुछ हद तक भगाने में सफल हुई थी। श्रीअरविन्द की प्रदक्षिणा-सी कर मैं उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। श्रीअरविन्द की आंखों का प्रकाश लालटेन की रोशनी से कहीं ज्यादा प्रखर था। जैसे ही उन्होंने मेरी ओर देखा, चुटकी में मेरे अन्दर की सारी उदासी, अंधेरा और निराशा छूमन्तर हो गये। श्रीअरविन्द की वह लावण्यमयी मूर्ति मेरे हृदय के गर्भगृह में मानों प्रतिष्ठित हो गयी। मैं किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो गया, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। मैं उनके पीछे गया, दोबारा सामने आया, उन्हें फिर से मैंने प्रणाम किया। मैं एकदम असमञ्जस में था कि वहां खड़ा रहूं या चला जाऊं ! श्रीअरविन्द ने अपने कर-कमलों से वहां खड़े लोगों में से किसी को इशारा किया। मुझे दोबारा मिठाई दी गयी। मुझे अन्दर यह अनुभूति हुई कि उन्होंने मुझे स्वीकार कर लिया है, लेकिन मैं सचमुच कुछ जानता नहीं था। आनन्द और भावातिरेक में डूबा हुआ मैं श्रीअरविन्द के घर से निकल कर अपने घर की ओर चल पड़ा।
—के. अमृत

श्रीमां के कुछ सन्देश

(‘आकाशवाणी’, तिरुचिरापल्ली से प्रसारित १५ अगस्त १९६४ का सन्देश)

श्रीअरविन्द धरती के आध्यात्मिक इतिहास में जिस चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं, वह कोई शिक्षा नहीं है, न ही वह कोई अन्तः-प्रकाश है; वह सीधी परम पुरुष से आनेवाली एक महान् क्रिया है।

*

(श्रीअरविन्द की स्मृति में छपनेवाले डाक-टिकट के वितरण के समय दिया गया सन्देश)

सितम्बर २००५

वे धरती से यह कहने आये हैं कि वह अपने प्रकाशमय भविष्य के लिए तैयारी करे।

*

(पॉण्डिचेरी वानोली निलयम (आकाशवाणी) से प्रसारित सन्देश)
आज श्रीअरविन्द के शताब्दी-वर्ष का पहला दिन है। यद्यपि उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया है, फिर भी वे हमारे साथ हैं—जीवित और सक्रिय।

श्रीअरविन्द भविष्य के हैं, वे भविष्य के सन्देशवाहक हैं। वे अब भी हमें 'भागवत संकल्प' द्वारा निर्मित उज्ज्वल भविष्य को जल्दी चरितार्थ करने के लिए जिस राह का अनुसरण करना चाहिये वह दिखलाते हैं।

जो मानवजाति की प्रगति और भारत की ज्योतिर्मयी नियति के लिए सहयोग देना चाहते हैं, उन सबको सूक्ष्मदर्शी अभीप्सा और ज्योतिर्मय कार्य के लिए मिलकर काम करना चाहिये।

१५ अगस्त १९७२ : श्रीअरविन्द की जन्म-शताब्दी

श्रीअरविन्द परम पुरुष के यहां से धरती पर आये थे ताकि एक नयी जाति और एक नये जगत्—'अतिमानसिक'—की घोषणा करें।

आओ, हम पूरी सचाई और उत्सुकता के साथ उसके लिए तैयारी करें।

१५ अगस्त, १९७२

*

मनुष्य बीते कल की सृष्टि है।

श्रीअरविन्द आगामी कल की सृष्टि—अतिमानसिक सत्ता के

आने—की घोषणा करने आये थे।

*

१५ अगस्त १९७२

उनकी शताब्दी के अवसर पर हम श्रीअरविन्द को सर्वोत्तम श्रद्धांजलि यही दे सकते हैं कि हमारे अन्दर प्रगति के लिए प्यास हो और हम अपनी सारी सत्ता को उस 'भागवत प्रभाव' के प्रति खोल दें जिसके पृथ्वी पर, श्रीअरविन्द 'सन्देशवाहक' हैं।

१५ अगस्त, १९७२

—श्रीमां

सोसायटी समाचार

१५ अगस्त २००५—दर्शन-दिवस के अवसर पर श्रीमां का यह सन्देश बंटा :

श्रीअरविन्द भविष्य के हैं: वे भविष्य के सन्देशवाहक हैं। वे अब भी हमें भागवत संकल्प द्वारा निर्मित उज्ज्वल भविष्य को जल्दी चरितार्थ करने के लिए जिस राह का अनुसरण करना चाहिये वह दिखलाते हैं।

वे सब जो मानवजाति की प्रगति और भारत की ज्योतिर्मयी नियति के लिए सहयोग देना चाहते हैं, उन सबको सूक्ष्मदर्शी अभीप्सा में, ज्योतिर्मय कार्य के लिए मिलकर काम करना चाहिये।

श्रीअरविन्द सोसायटी की वार्षिक जनरल मीटिंग २२ अक्तूबर २००५ को कलकत्ते में उसके रजिस्टर्ड दफ्तर में होगी। मीटिंग की विस्तृत सूचना इस अंक के पृ. ३८ पर छपी है।

सितम्बर २००५

अखिल भारत शैक्षिक कैम्प तथा वर्कशॉप—२००५

यह कैम्प बीच ऑफिस में २० से २७ मई तक लगा। इसमें ५० ने भाग लिया। इच्छुक व्यक्तियों के लिए कैम्प की अवधि दो दिनों के लिए बढ़ा दी गयी थी ताकि वे सर्वांगीण शिक्षा के कुछ पहलुओं को गहरे में देख सकें।

नये भारत और नयी दुनिया के लिए नयी शिक्षा नामक सभा की बैठक ९ तथा १० मई को बीच ऑफिस में हुई। Sri Aurobindo Foundation for Integral Education and Research (SAFIER) नामक श्रीअरविन्द सोसायटी की संस्था श्रीअरविन्द के विभिन्न ग्रन्थों और कार्यों को सर्वत्र फैलाने के प्रयास में सराहनीय कार्य कर रही है।

७ जून २००५ को चेन्नई शाखा ने श्रीमां के ग्रन्थों का पूरा सेट एम. ओ. पी. वैष्णव कॉलेज (लड़कियों का) को उपहार-स्वरूप दिया। कॉलेज की प्रधानाध्यापिका प्रो. निर्मला प्रसाद ने १७ खण्डों को ग्रहण किया।

जयपुर केन्द्र तथा जोधपुर शाखा में १२ तथा १३ तारीख को कार्यक्रम हुआ जिसमें सोसायटी द्वारा रचित श्रीमद्भगवद्गीता का CD-ROM भेंट किया गया। ११ जून को श्री कैवल्य स्मार्त ने “सच्चे सुख का रास्ता” विषयक भाषण भी दिया।

नैरोबी केन्द्र (कीन्या) ने मई तथा जून में श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के ग्रन्थों से संकलित ५००० पुस्तिकाएं कई केन्द्रों में बांटीं।

बैंगलोर में वैदिक सोसायटी (हैदराबाद) के डॉ. वेदव्यास ने शिक्षा पर ४ जून को भाषण दिया। ११ जून को श्रीअरविन्द के पवित्र अवशेषों के पधराये जाने की जयन्ती भी मनायी गयी। नैतिक, आध्यात्मिक दिशा में ले चलनेवाली पाठ्य-पुस्तकों का भी इस दिन विमोचन हुआ।

SRI AUROBINDO SOCIETY Notice for the Annual General Meeting

The Annual General Meeting of the members of Sri Aurobindo Society will be held on Saturday, the 22nd October 2005, at 4.00 p.m. at its registered office at Sri Aurobindo Bhavan, 8, Shakespeare Sarani, Kolkata - 700071, to transact the following business:

1. To confirm the minutes of the last Annual General Meeting held on 9th October 2004.
2. To consider and approve the audited Balance Sheet and Income & Expenditure Accounts of the Society for the year ended 31.03.2005.
3. To consider and adopt the Executive Committee's Annual Report of Activities for the year 2004-2005.
4. To appoint an auditor for the Society for the year 2005-2006.
5. To consider any other matter with the permission of the chair.

16th August 2005
Pondicherry

Pradeep Narang
Chairman

Note: The members are entitled to appoint proxy. Proxies must be deposited at the Registered Office of the Society at No.8, Shakespeare Sarani, Kolkata - 700 071, during office hours, in advance but not less than 48 hours before the time fixed for holding the meeting.

सितम्बर २००५

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

के सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश का सर्वोत्तम आदर्श शिक्षण संस्थान
श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ♦ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ♦ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ♦ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ♦ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ♦ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ♦ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ♦ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com

E OF
TITUTE
G U.P.
संस्थान

ण संस्था

मथुरा

से संवत्

स्था।

जीवन-

म ज्ञान-

शिक्षक,

नवरी से

जपेयी

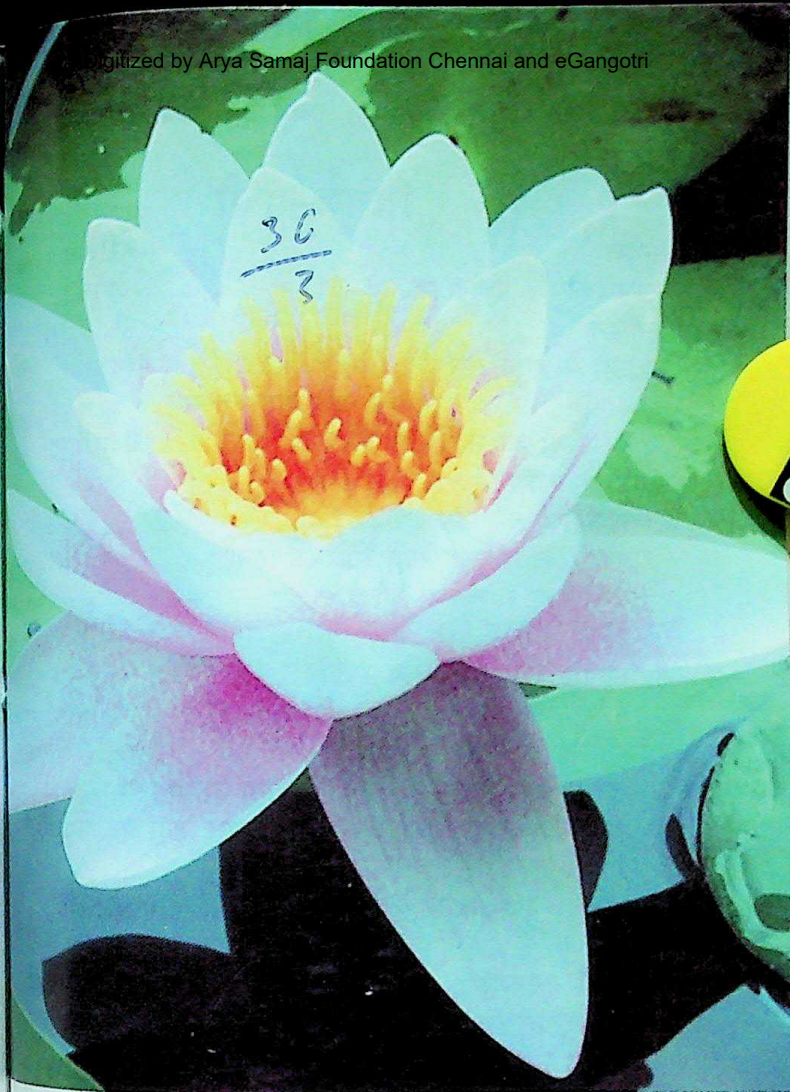
नाचाय

स्कूल,

(ग)

(स)

m



अग्निशिखा

Central Library
Gurukul Kangri
Haridwar-249101

Spant
12/12/05

अखिल भारतीय पत्रिका

अक्तबर २००५

विषय-सूची

सन्देश

‘सम्पादकीय’ : प्रार्थना के बल पर

दैनन्दिनी

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क : दीक्षा

सौन्दर्य और सामञ्जस्य

परमा मां का महालक्ष्मी रूप

श्रीमां के वचन :

महालक्ष्मी की मांग

प्रकृति के छन्द के साथ समस्वर रहना

सौन्दर्य के रहस्य को खोजो

उचित वृत्ति

सौन्दर्य और सामञ्जस्य

सौन्दर्य-बोध की चेतना

श्रीअरविन्द के वचन :

आध्यात्मिक जीवन में दूसरों के साथ सामञ्जस्य

कर्म और सामञ्जस्य, सामञ्जस्य—हमारे योग का कार्य

वैश्व इतिहास और वर्तमान दृश्य

सामञ्जस्य के बिना जीवन में कठिनाइयां आती हैं

‘ऋषिवर बोले’ : शुभ घड़ी

सोसायटी समाचार

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ

महालक्ष्मी का समग्र ऐश्वर्य

सभी क्षेत्रों और गतियों में—बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिक में,

संवेदन और क्रिया में ऐश्वर्य (हिन्दी—कुमुद)

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

पूर्ण व्यक्ति और आदर्श समाज के अनिवार्य गुणों में से एक गुण होना चाहिये—सौन्दर्य की सर्वांगीण और वैश्व रूप से सराहना करना तथा अपनी सारी सत्ता और अपने सारे जीवन को पूरी तरह से सुन्दर बनाना।

.... हमारे अस्तित्व का लक्ष्य किसी गुण के कारण उस गुण का अनुसरण करना नहीं बल्कि आनन्द प्राप्त करना है और प्रगति का अर्थ सौन्दर्य और आनन्द का तिरस्कार करना नहीं बल्कि निम्नतर से उच्चतर की ओर चढ़ना है, निरन्तर अधिकाधिक पूर्ण सौन्दर्य और आनन्द की ओर उठना है।

—श्रीअरविन्द

‘सम्पादकीय’

प्रार्थना के बल पर

भारत में एक ऐसी प्रणाली है जो अन्य राष्ट्रों में शायद ही प्रचलित हो, वह है आयुध-पूजा। इसका आरम्भ क्षत्रियों के आयुधों की पूजा से हुआ होगा, क्योंकि उन्हें विश्वास और श्रद्धा थी कि उनके अस्त्रों में दैवी शक्ति का निवास होता है और युद्ध के समय उन्हीं की कृपा से वे विजयी होते हैं; किन्तु दक्षिण में उसका थोड़ा और सर्वव्यापी रूप देखकर पहली बार मैं इस पूजा का रहस्य समझ पायी। यह देखकर, समझकर मैं रोमाञ्चित हो उठी। आयुध-पूजा के दिन यहां के निवासी सरस्वती या किसी और देवी की बड़ी श्रद्धा से पूजा करते हैं और उनके प्रसाद के रूप में चने का व्यञ्जन वांटते हैं। उसके बाद कुमकुम और आरती लिए घर की प्रत्येक वस्तु की पूजा करते हैं, जैसे दरवाजा, चूल्हा, साइकिल या कार; घर में जितनी मशीनें हों, बरतन, आलमारी, उन सबकी कुमकुम लगा कर आरती करते हैं। गरीब से गरीब रिक्शावाला भी उस दिन अपनी रिक्शा की पूजा करता है। कारखाने का मालिक भी प्रत्येक कमरे में जाकर जिन चीजों का उपयोग होता है उन सबकी पूजा करता है। मैं समझ पायी कि प्रत्येक स्थूल वस्तु में, चाहे वह निर्जीव दीखती हो, उसमें परम चेतना का निवास है इसी विश्वास के साथ ये लोग पूजा करते हैं। कितनी सूक्ष्म दृष्टि! किन्तु अब पूजा करनेवाले शायद उस दिव्य दृष्टि को भुला चुके हैं और उनकी पूजा अब केवल परम्परा निभाने के लिए ही होती होगी। किन्तु फिर से सच्ची पूजा एक दिन हो पायेगी ऐसी मेरी आशा है।

मेरी यह आशा पूरी होगी क्योंकि माताजी ने एक बार किसी

अक्तूबर २००५

३

ने कहा था, “जो भी काम करो उसे प्रभु को समर्पित करके करो...। काम कैसा भी क्यों न हो उसे पूरी एकाग्रता से करो और तुम्हें अनुभव होगा कि अन्तर-स्थित प्रभु उसे देख रहे हैं।”

हम जो भी कार्य करें, चाहे वह कितना भी छोटा, नगण्य क्यों न हो, हमें उसे प्रभु को अर्घ्य के रूप में देना चाहिये, है न, तो फिर हम जितनी एकाग्रता से कार्य करेंगे और उसे जितना सर्वांग-सम्पूर्ण बनायेंगे उतना ही हम प्रभु के निकट जा पायेंगे।

मान लो हम समूह में कार्य करते हैं तो उस समय व्यक्तित्वों का टकराव, अहम्, महत्त्वाकांक्षा का संघर्ष होना अनिवार्य है। किसी कारखाने में ऐसा ही वातावरण हो गया। माताजी ने कहा, “कार्य करते समय अनुशासन का होना आवश्यक है; साथ ही कार्यकर्ताओं में सामञ्जस्य हो तभी काम उत्तम प्रकार का होगा क्योंकि तुम्हारा मानसिक सन्तुलन भी काम में चार चांद लगा देता है। उत्तम काम के लिए पूर्णता, सफाई, सौन्दर्य, सामञ्जस्य और व्यवस्था अति आवश्यक हैं; तब तुम्हारा काम ऐसा होगा कि जो भी उसे देखे देखता ही रह जायेगा।” यह है माताजी की सलाह जब हम अपना काम प्रभु को अर्घ्य के रूप में देना चाहें।

आखिर माताजी कार्य करने के लिए इतना आग्रह क्यों करती हैं? क्योंकि माताजी कार्य द्वारा हमें सचेतन करना चाहती हैं और कार्य में जब गड़बड़ हो जाती है तो हमें अपने अन्दर झांकना पड़ता है; तब हम अपने-आपको ज्यादा अच्छी तरह देख पाते हैं। हमें सोचना पड़ता है, काम में गड़बड़ क्यों हुई? और हम पाते हैं कि हम यह करना भूल गये या हमें जो चीज मिलानी थी उसे भूल गये क्योंकि उस समय हम काम के बारे में नहीं, कोई और बात सोच रहे थे। एकाग्रता भंग हो गयी और काम में गड़बड़ी आ गयी। तो काम हमारे लिए कसौटी का पत्थर है जो हमें हमारी अपूर्णताएं,

भूलें स्पष्ट रूप से दिखाता है।

माताजी कहती हैं कि नगण्य काम भी प्रभु को स्वीकार है। उनकी एक सच्ची कहानी याद हो आयी। किसी गिरजाघर में एक नट काम करता था। उसे पढ़ना-लिखना बिलकुल नहीं आता था बस खेल-तमाशे में उसे बहुत रुचि थी। वह देखता था कि सब कितनी प्रार्थना करते थे, भजन गाते थे किन्तु वह? वह बेचारा यह सब जानता ही न था। एक दिन उसने सोचा, “क्यों न मैं माता मरियम को अपना खेल दिखाऊं?” और जब वहां कोई भी न था तब उसने अपना सारा खेल माता मरियम के सामने कर दिखाया। करते-करते वह थक गया और गिर पड़ा। तब हुआ चमत्कार! देवी मरियम सजीव होकर अपने स्थान से उतर आयीं और नट का स्वेदभरा मुंह पोंछने लगीं। कैसा अद्भुत दृश्य रहा होगा!

यह घटना एक व्यक्ति के साथ हुई थी किन्तु माताजी चाहती हैं कि प्रत्येक मनुष्य का प्रभु के साथ ऐसा ही सम्पर्क हो क्योंकि अब मनुष्य का ऊपर उठने का समय आ गया है; तो जबतक हम सब काम करते-करते, अपने जीवन को भगवान् को अर्पित अर्घ्य न बनायें तब तक मन से ऊपर उठना असम्भव होगा।

और इस युग की मांग यही है कि मनुष्य ऊपर उठे। क्या हम अपने बल-बूते पर यह महत् कार्य कर पायेंगे? नहीं। केवल प्रार्थना के बल पर ही हम यह कार्य कर पायेंगे।

—अनुवेन

*
**

भगवान् के लिए किया गया निस्स्वार्थ काम : प्रगति करने का सबसे अधिक निश्चित उपाय।

—श्रीमां

अक्तुवर

१. साम यही
२. साम बदल
३. ऐसा 'उप'
४. भगव कोई
५. असा आन
६. हमें भ्रातृ
७. जब सह
८. शुभ
९. तुम्हें चा
१०. पूर्ण प्रवा
- साम 'पर
- साम

दैनन्दिनी

अकूबर

१. सामञ्जस्य : आओ, हम प्रयास करें कि वह दिन आये जब यही साधन हो और यही साध्य।
२. सामञ्जस्यपूर्ण सामूहिक अभीप्सा परिस्थितियों की दिशा को बदल सकती है।
३. ऐसा कोई हर्ष नहीं जिसकी तुलना अपने हृदय में शाश्वत 'उपस्थिति' की अनुभूति से की जा सकती हो।
४. भगवान् के आगे एक नवजात शिशु के समान होने से बढ़कर कोई आनन्द नहीं है।
५. असामञ्जस्य के बाहरी कारणों की अपेक्षा अधिक खोज करो आन्तरिक कारणों की। अन्तर ही बाह्य पर शासन करता है।
६. हमें प्रतियोगिता और संघर्ष के स्थान पर सहयोग और भ्रातृभाव की स्थापना करनी चाहिये।
७. जब चीजें उल्टी होने लगें तभी अपनी सद्भावना और सच्चे सहयोग का भाव दिखाने का उत्तम अवसर होता है।
८. शुभचिन्ता ध्यान खींचे बिना जीवन को सुरभित करती है।
९. तुम्हें अपने हृदय में निरन्तर सद्भावना और प्रेम रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शान्ति और समता के साथ प्रवाहित होने देना चाहिये।
१०. पूर्ण सामञ्जस्य : वस्तुओं के बीच सामञ्जस्य, लोगों के बीच सामञ्जस्य, परिस्थितियों का सामञ्जस्य, और सबसे बढ़कर 'परम सत्य' की ओर अभिमुख सभी अभीप्साओं का सामञ्जस्य।

११. हम हमेशा उचित वस्तु करें तो हमेशा शान्त और सुखी रहेंगे।
१२. अपने सुख के बारे में व्यस्त रहना दुःखी होने का सबसे निश्चित उपाय है।
१३. तुम जो सुख पाते हो उसकी अपेक्षा जो सुख देते हो वह तुम्हें ज्यादा सुखी बनाता है।
१४. यह कभी न भूलो कि नाटकीय होने की अपेक्षा, चुपचाप प्रसन्न रहकर तुम बहुत ज्यादा सहायक होते हो।
१५. सुख-शान्ति उतनी ही संक्रामक है जितनी उदासी—सच्ची, गहरी सुख-शान्ति का संक्रमण लोगों तक पहुंचाने से ज्यादा उपयोगी और कोई चीज नहीं होती।
१६. प्रसन्न होओ मेरे वत्स, प्रगति का यह सबसे निश्चित मार्ग है।
१७. शत्रु के आगे मुस्कुराना उसे निरस्त्र कर देना है।
१८. प्रसन्नतापूर्ण मन और शान्त हृदय रखो। कोई भी चीज तुम्हारी समचित्तता को न डिगा पाये। हर रोज लक्ष्य की ओर स्थिरता से मेरे साथ बढ़ने के लिए आवश्यक प्रगति करो।
१९. सुखी हृदय : मुस्कुराता हुआ, शान्त, पूरा खुला हुआ, छाया-रहित।
२०. निश्चय ही हमें शान्ति और सामञ्जस्य की चाह करनी चाहिये और उसके लिए यथासम्भव अधिक-से-अधिक काम करना चाहिये—लेकिन उसके लिए उत्तम कार्य-क्षेत्र हमेशा हमारे अन्दर होता है।
२१. जब मनुष्य मिथ्यात्व से ऊब जायेंगे, जिसमें वे निवास करते हैं, तब संसार सत्य के राज्य के लिए तैयार होगा।
२२. सच्चे और ईमानदार बनो तो तुम्हारा मन चैन से रहेगा।

२३. तुम्हें जो बुद्धि तुम बोल २४. बोल २५. निश्च २६. अभ्य २७. बोल २८. सार २९. वे स ३०. जब ३१. धन भग

अक्तूबर २००५

२३. तुम्हें हमेशा वह करना चाहिये जो तुम कहते हो, लेकिन तुम जो कुछ करते हो उस सबके बारे में बोलना हमेशा बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होता।
तुम जब बोलो तो हमेशा सच बोलो; लेकिन कभी-कभी न बोलना ज्यादा अच्छा होता है।
२४. बोलना चांदी है, लेकिन मौन सोना है।
२५. निश्चय ही दूसरों की भूलों के बारे में बोलना बहुत बुरा है; हर एक के अपने दोष होते हैं और उन्हीं के बारे में सोचते रहना निश्चय ही उन्हें ठीक करने में सहायता नहीं पहुंचाता।
२६. अभ्यास की एक बृंद सिद्धान्तों, सलाहों और अच्छे संकल्पों के समुद्र से अच्छी है।
२७. बोलो कम, कार्य अधिक करो।
२८. सारी गड़बड़ सन्तुलन के अभाव से आती है।
अतः, हम सदा-सर्वदा सभी परिस्थितियों में अपना सन्तुलन बनाये रखें।
२९. वे सब जो सचमुच बलवान् और शक्तिशाली होते हैं, सदा बहुत स्थिर रहते हैं। केवल दुर्बल ही बेचैन होते हैं। सच्ची स्थिरता सदा सामर्थ्य का लक्षण है।
३०. जब आदमी जल्दबाज़ी में नहीं होता तो बहुत अधिक तेजी से आगे बढ़ता है।
सचमुच आगे बढ़ने के लिए, मनुष्य को पूर्ण विश्वास के साथ यह अनुभव करना चाहिये कि उसके सामने शाश्वत विद्या है।
३१. धन्य होगा वह दिन जब पृथ्वी 'सत्य' के प्रति जागकर, केवल भगवान् के लिए जियेगी।

—‘श्रीमातृवाणी’ खण्ड १४ से

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क

दीक्षा

दिन का दूसरा महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान था, सवेरे के प्रणाम की प्रणाली। आध्यात्मिक दृष्टि से वह भी बहुत सार्थक था, किन्तु वातावरण होता था भिन्न। इस समय माताजी हम सबके या धरती के करीब लगती थीं—“वे पृथ्वी की विशालता के जैसी, स्वर्ग के साथ अन्तरंग लगतीं”। प्रणाम का यह अनुष्ठान उसी कमरे^१ में होता था जिसमें कुछ वर्ष बाद बुला दा रहने लगे थे। प्रणाम सुबह ७.३० बजे शुरू होता था। उस समय जो साधक आश्रम में कई वर्षों से रहते थे उन्हें कमरे में बैठने की अनुमति थी, बाकी लोग कमरे में आकर प्रणाम कर बाहर चले जाते थे। कुछ लोग तब तक बाहर ही खड़े रहते थे जब तक माताजी अपने कमरे में जाने के लिए न उठती थीं ताकि वे उनके प्रस्थान का दर्शन कर पायें। उस रोज जब हम अन्दर गये तो हमने देखा कि वे एक नीचे स्टूल पर रखी गद्दी पर बैठी थीं। माताजी ने साड़ी पहनी थी, सिर पर पल्लू नहीं था जो उनके रात्रि के राजकीय रूप से बिलकुल भिन्न था। इस समय वे पूर्ण रूप से जागृत थीं, जैसे कहते हैं न, “मधुर स्मित बिखेरतीं स्वागत में मुस्कुरातीं” वैसी उनकी छवि थी। वे हमें फूल देकर आशीर्वाद दे रही थीं। मुझे याद है, मेरे एक महीने के निवास के दौरान माताजी ने एक बार मुझसे बात की थी। हमने समुद्र-स्नान के लिए उनकी इजाजत चाही थी—आश्रम-जीवन के नियत कार्यक्रमों के अतिरिक्त कुछ करना हो तो उनकी विशेष अनुमति लेना आवश्यक था ताकि

^१ आश्रम के मुख्य भवन में एक कमरा।

अक्तूबर २००५

उनका रक्षण हमारे साथ बना रहे। माताजी जब प्रणाम के बाद जाने लगीं तो उन्होंने हमें बाहर प्रतीक्षा में खड़े देखा और मधुर फरासीसी भाषा में बोलीं, “तुम समुद्र-स्नान के लिए जाना चाहते हो? सावधान रहना, वहां बहुत ‘जैली फिश’ होती हैं।”

सुबह और शाम हमारे दो “आध्यात्मिक अनुभव” होते थे। इन्हें छोड़कर सारा दिन हम कुछ भी नहीं करते। कभी-कभी दिलीप और साहना हमसे मिलने आ जाते। खासकर साहना हमें माताजी, श्रीअरविन्द और आश्रम-जीवन की बहुत-सी बातें बताती रहतीं।

और एक साधक थे, जॉन चेडविक उर्फ आर्जव, यह नाम श्रीअरविन्द ने चेडविक को दिया था। उनके साथ हमारी दोस्ती हो गयी। एक दिन उन्होंने हमें अपने यहां चाय के लिए निमन्त्रण दिया। जब उन्हें पता चला कि हम केवल आश्रम का खाना ही तेते हैं तब उन्होंने हमें मक्खन भी दिया। मैं स्वीकार करता हूं कि आश्रम का भोजन स्वादिष्ट होते हुए भी हमारे लिए पर्याप्त न था। परिणाम यह होता था कि हम आधे भूखे ही रहते थे। अधिक भोजन की हमारी मांग पर कोई ध्यान ही न देता था। “मांगो और तुम्हें दे दिया जायेगा” यह उक्ति भौतिक आवश्यकताओं के साथ नहीं बैठती थी। हम नये आगन्तुक थे इसलिए हमें सार्वजनिक भोजनालय में जाने की अनुमति न थी। भोजन हमारे कमरे में ही भेजा जाता था।

दोपहर को जब माताजी कार में सैर के लिए निकलतीं, तब हम उनके दर्शन करने चले जाते। अब जो ‘बोटैनिकल गार्डन’ कहलाता है उसमें उस समय फूलों की प्रदर्शनी हो रही थी। उसमें आश्रम ने भी भाग लिया था। माताजी एक और फरासीसी महिला के साथ आश्रम के ‘स्टॉल’ का निरीक्षण कर रही थीं। हमारे एक

महीने के निवास के समय यही हमारी “दीक्षा” का रूप था।
 आध्यात्मिक जीवन के पहले आह्वान के समय अनजाने में हमसे हुई असावधानी के कारण एक व्यक्ति को अत्यन्त दुःख झेलना पड़ा। हमारा वह मित्र पूर्व अनुमति के बिना ही हमारे साथ दर्शन के लिए आ गया। वह इतने जोर-शोर से हमारे साथ चलने का आग्रह कर रहा था कि हम उसे मना न कर पाये। इसके अतिरिक्त हमने इस “इजाजत” की बात को केवल एक औपचारिकता मान लिया था। जब माताजी को इस बात का पता लगा तो वे बहुत नाराज़ हो गयीं और हमने सुना कि उन्होंने कहा कि हमारे मित्र का दर्शन के लिए आना बहुत ज्यादा असामयिक था, और उसे बहुत ज्यादा दुःख झेलना पड़ेगा। उस मित्र को आश्रम में या आश्रम के किसी मकान में रहने नहीं दिया गया था। उसे दर्शन के एकदम बाद ही चले जाना पड़ा। हम घटना के इस दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ से घबरा उठे और दुःखी भी हो गये, किन्तु मित्र चन्दू पर मानों कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। यह बात सच है कि जीवन में उसने बहुत दुःख झेले, लेकिन साथ ही उसको श्रीअरविन्द की कृपा प्राप्त हुई। हमारे पत्र-व्यवहार के कारण अद्वितीय और अनोखा चांद अमर बन गया है। घर में उसे चन्दू कहते थे। श्रीअरविन्द ने उसका चांद नाम दिया। वह जन्म से मुसलमान था, बाकी सब बातों में हिन्दू था। विद्यालय में उसने संस्कृत का अध्ययन किया, गीता और अन्य शास्त्रों का पाठ कर लेता था, बहुत से देवी-देवताओं की पूजा करता था—संक्षेप में मानवजाति का विचित्र नमूना था वह। जब हम उसे अच्छी तरह जान पाये तो हमने आश्चर्य से देखा कि स्वभाव में वह विचित्र विरोधात्मक तत्त्वों का मिश्रण था; तब हम समझ पाये कि माताजी उसके असामयिक आ धमकने से इतनी नाराज़ क्यों हुई थीं। इसीलिए

अक्तूबर २००५

माताओं में 'अधिकार' की ओर उपयुक्त समय की बात आती है। अब जब मृत्यु ने उसके मर्त्य अस्तित्व पर परदा डाल दिया है, मुझे उसके अस्तित्व का विच्छेद नहीं करना चाहिये। मैं केवल यह कहकर प्रसन्न हूँ कि वह सचमुच श्रीअरविन्द से प्रेम करता था और उसकी अनेक कमजोरियों के बावजूद प्रभु भी उससे प्रेम करते थे...।

अब अपनी कहानी की ओर हम फिर मुड़ें :

वापिस जाने का समय आ गया। कई इष्ट-मित्रों ने सुझाव दिया कि हम हमेशा के लिए यहीं रह जायें क्योंकि माताजी हमसे वृश लगती थीं और अगर हम चाहते तो हमें यहां रहने की स्वीकृति मिल जाती। लेकिन किसी भी हालत में मैं नहीं रहना चाहता था और अपने मित्रों के सुझाव पर मैंने अपने जीवन की भावी योजनाओं के बारे में श्रीअरविन्द को एक पत्र लिखा। मैंने उन्हें स्पष्ट लिख दिया था कि मैं आध्यात्मिक जीवन के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हूँ, कि मैं बाहर जाकर कर्मयोग करना पसन्द करूंगा। आश्चर्य कि मैंने कर्मयोग शब्द का प्रयोग ठीक से जाने बिना ही कर दिया। अगले ही दिन मेरे पास उनका उत्तर आ गया जिसमें उन्होंने विस्तार से यह समझाया था कि बाहर रहकर कर्मयोग करने का मेरा निश्चय एकदम सही था और यह चीज मेरे भावी आध्यात्मिक जीवन के लिए अच्छी तैयारी होगी—अगर कभी बाद में मैं इस दिशा की ओर मुड़ा...। मेरे मित्रों ने चिट्ठी देखी और हैरत में पड़ गये कि एक नवागन्तुक को श्रीअरविन्द की ऐसी सुन्दर, लम्बी चिट्ठी मिली! चिट्ठी का लहजा सचमुच आत्मीय था—हालांकि उस समय मैंने इस बात पर गौर नहीं किया था। दुर्भाग्यवश मेरे घर पर हुई पुलिस की छानबीन के दौरान वह चिट्ठी कहीं गायब हो गयी। शायद पुलिस ने सोचा होगा कि यह

श्रीअरविन्द पर चल रहे मुकद्दमे के समय का कोई "मिष्टान्न पत्र" होगा जिसने सरकार को उस वक्त बड़ी परेशानी में डाल दिया था। बड़े आश्चर्य की बात है कि मेरे इस लम्बे निवास के दौरान मुझे कोई आध्यात्मिक अनुभव न हुआ जब कि इससे पहले जब मैं कुछ समय के लिए आया था तो बड़े अच्छे-अच्छे अनुभव हुए थे। फिर भी, मैं मानता हूँ कि एक महीने तक, प्रतिदिन माताजी के स्पर्श से अभिभूत, ऐसे आध्यात्मिक वातावरण में चुपचाप रहना व्यर्थ तो नहीं गया होगा। कम-से-कम पश्चिम के 'भोग'-भरे जीवन के बाद और मेरे जन्मस्थान के अन्धकार में डुबकी लगाने के पहले का यह महीने भर का मध्यान्तर बहुत ही सुखद था। वापिस जाते समय मद्रास में हम हफ्ते भर के लिए दोरैस्वामी के विशाल घर में ठहरे। मेरी भतीजी का यह विचार था कि वहां पर कोई नौकरी लग जाये तो हम आश्रम के ज्यादा-से-ज्यादा करीब रह पायेंगे। लेकिन दोरैस्वामी के व्यक्तिगत प्रयास के बावजूद कोई परिणाम न निकला। और हमारी नियति हमें बहुत दूर ले गयी।

जब हम दोरैस्वामी के घर पर हफ्ते भर के लिए रहे थे, उस बीच वे एक बार आश्रम आये। मेरी भतीजी ने उनसे निवेदन किया कि वे माताजी का आशीर्वाद-पुष्प उसके लिए ले आयें। जब वे लौटे तो मैंने उनसे पूछा, "मेरे लिए कुछ नहीं है?" "तुमने तो मांगा नहीं था"—उन्होंने जवाब दिया। माताजी की कार्य-प्रणाली का पहला बोध प्राप्त हुआ!

—नीरदवरण

श्रीअरविन्द के छोटे भाई बारीन ने उन्हें एक चिट्ठी में लिखा था कि मिष्टान्न पहुंच गये हैं। मुकद्दमे के समय पुलिस ने "मिष्टान्न" शब्द को कोड़-शब्द समझ कर यह मान लिया था कि इसका अर्थ "बम" से है। उनका मानना गलत न था, यद्यपि वे इसे प्रमाणित न कर पाये।

सौन्दर्य और सामञ्जस्य

परमा मां का महालक्ष्मी रूप

(श्रीअरविन्द मां के चार महान् रूपों—उनकी चार पथ-प्रदर्शिका शक्तियों तथा व्यक्तित्वों के बारे में बताते हैं। ये चार रूप हैं—महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। इस लेख में हम मां के महालक्ष्मी-रूप को देखें।—सं०)

(१)

केवल प्रज्ञा और शक्ति ही भगवती माता के व्यक्त रूप नहीं है। उनकी प्रकृति का एक और सूक्ष्म रहस्य है जिसके बिना प्रज्ञा और शक्ति अपूर्ण रहती हैं, और पूर्णता भी पूर्ण नहीं हो सकती। ज्ञान और शक्ति के ऊपर शाश्वत सौन्दर्य का चमत्कार, दिव्य सामञ्जस्यों का अगम रहस्य है, अति सम्मोहक विश्वव्यापी मनोहरता और आकर्षण का जादू है जो वस्तुओं, शक्तियों और सत्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करके एक जगह बांधे रखता है और उन्हें मिलने और एक होने के लिए बाधित करता है ताकि छिपा हुआ आनन्द परदे के पीछे से अपना साज बजा सके और उन्हें अपना ताल-छन्द और अपनी टेक बना सके। यह महालक्ष्मी की शक्ति है और देहधारी सत्ताओं के लिए दिव्य शक्ति का और कोई रूप इससे अधिक आकर्षक नहीं होता। पार्थिव प्रकृति की क्षुद्रता को महेश्वरी इतनी अधिक शान्त, महान् और दूर लग सकती हैं कि वह उनके पास नहीं जा सकती और न उन्हें अपने अन्दर समा सकती है। उसकी निर्बलता को महाकाली इतनी अधिक तेज और भयानक लग सकती हैं कि वह उन्हें सह भी न सके, परन्तु महालक्ष्मी की ओर

सभी बड़े उल्लास और उत्कण्ठा के साथ मुड़ते हैं।

(२)

... वे भगवान् की सम्मोहक मधुरता का जादू फैलाती हैं। उनके पास होने का अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदय के अन्दर अनुभव करने का अर्थ है जीवन का आनन्दोल्लास और चमत्कार से भर जाना। महालक्ष्मी से लावण्य, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होती हैं जैसे सूर्य से प्रकाश। वे जहां कहीं अपनी अद्भुत दृष्टि को स्थिर करती हैं या जिस पर अपने स्मित की मधुरता डालती हैं वही आत्मा उनकी पकड़ में आकर बन्दी बन जाती है और अथाह आनन्द की गहराई में डुबकी लगाती है। उनके हाथों का स्पर्श चुम्बक की तरह आकर्षक है, और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को परिष्कृत करता है और जहां-जहां उनके चरण पड़ते हैं वहां-वहां सम्मोहक आनन्द की दिव्य धाराएं बहने लगती हैं।

(३)

फिर भी उनकी मोहिनी शक्ति की मांग को पूरा करना या उनकी उपस्थिति को बनाये रखना आसान नहीं है। मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की मांग। जहां सृष्टि के गूढ़, रहस्यमय आनन्द के साथ समस्वरता होती है, जहां 'सर्व सुन्दर' के आह्वान का उत्तर मिलता है और भगवान् की ओर उन्मुख बहुत-से व्यक्तियों की मैत्री, एकता और प्रसन्न जीवन-प्रवाह होते हैं,

अक्तूबर २००५

महालक्ष्मी उसी वातावरण में निवास करना स्वीकार करती हैं।

(४)

... जो कुछ कुरूप, क्षुद्र, तुच्छ है, जो दीन, मलिन और कुत्सित है, जो कुछ उजड़ और असंस्कृत है वह उनके आगमन को रोकता है। जहां प्रेम और सौन्दर्य नहीं हैं या जहां वे जन्म लेने से इन्कार करते हैं, ऐसे स्थान पर महालक्ष्मी नहीं आतीं और जहां वे प्रिया चीजों के साथ मिले रहते हैं या उनके कारण भदे बन जाते हैं वहां से महालक्ष्मी तुरन्त मुंह मोड़ लेती हैं या वहां अपना ऐश्वर्य उड़ेलने की परवाह नहीं करतीं। अगर वे मनुष्यों के हृदयों में अपने-आपको स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, असूया और कलह से घिरा हुआ पाती हैं, जब पवित्र पात्र में विश्वासघात, लोभ, कृतघ्नता मिले रहते हैं, यदि वासना की ग्राम्यता और असंस्कृत या अपरिष्कृत कामना भक्ति को भ्रष्ट कर देती हैं तो ऐसे हृदयों में ये सुन्दर करुणामयी देवी क्षण भर के लिए भी नहीं ठहरतीं, ऐसी अवस्था में वे दिव्य जुगुप्सा से भर जाती हैं, और पीछे हट जाती हैं, क्योंकि वे ऐसी नहीं हैं कि आग्रह या संघर्ष करें। या फिर वे अपना मुंह ढक कर इस कड़वे और विषैले आसुरी तत्त्व के बाहर फेंके जाने की प्रतीक्षा करती हैं ताकि वे अपने आह्लादपूर्ण प्रभाव को फिर से स्थापित कर सकें। उन्हें तपस्वी की शुष्कता और कठोरता पसन्द नहीं है और न हृदय के गभीर भावावेगों का दमन या आत्मा और जीवन के सुन्दर भागों का निग्रह ही पसन्द है, क्योंकि वे प्रेम और सौन्दर्य के द्वारा ही मनुष्यों पर भगवान् का जूआ रखती हैं।

(५)

... उनकी परम सृष्टि में जीवन स्वर्गीय कला की एक समृद्ध

कृति बन जाता है और सारा अस्तित्व एक पवित्र आनन्द का काव्य। संसार की सारी समृद्धि, सम्पदा, एकत्रित करके परम व्यवस्था के लिए इकट्ठी की जाती हैं। उनके ऐक्यसम्बन्धी सहज ज्ञान और उनकी आत्मा के उच्छ्वास से सादी-से-सादी और मामूली-से-मामूली चीजें भी अद्भुत बन जाती हैं। हृदय में प्रवेश पा जाएं तो वे प्रज्ञा को आश्चर्य के ऊंचे-से-ऊंचे शिखर पर पहुंचा देती हैं और उसके आगे समस्त ज्ञान से परे आनन्द-समाधि के गुप्त रहस्य खोल देती हैं। वे भक्ति को भगवान् के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ जोड़ देती हैं, बल और शक्ति को ऐसा छन्द सिखाती हैं जिससे उनके कर्म समस्वर और सप्रमाण हो जायें। वे पूर्णता पर एक ऐसी मोहिनी छा देती हैं जिससे वह चिरस्थायी हो जाये।

—श्रीअरविन्द

‘श्रीमां के वचन’ :

महालक्ष्मी की मांग

“मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की मांग। ... जहां प्रेम नहीं, सौन्दर्य नहीं और ये उत्पन्न होने में अनिच्छुक होते हैं, वहां वे नहीं आया करतीं।”

—श्रीअरविन्द, ‘माता’

जब पारिपार्श्विक अवस्थाएं, परिस्थितियां, वातावरण, जीवन की पद्धति और सर्वोपरि आन्तरिक मनोभाव—ये सब, पूर्णतया निम्न कोटि के, अमार्जित, कुत्सित, अहंकारपूर्ण, मलिन होते हैं, प्रेम आने

अक्तुबर २००५

न अनिच्छुक होता है, अर्थात् वह सर्वदा अभिव्यक्त होने से हिचकिचाता है और सामान्यतया बहुत देर तक नहीं ठहरता। सौन्दर्य को रहने के लिए सौन्दर्यपूर्ण आवास प्राप्त होना चाहिये। मैं यहां बाह्य वस्तुओं की—भौतिक मकान, भौतिक साज-सामान आदि की—चर्चा नहीं कर रही हूं, मैं आन्तरिक मनोभाव की, किसी ऐसी आन्तरिक वस्तु की बात कर रही हूं जो सुन्दर, उदात्त, सुसमज्जस, निःस्वार्थ हो। वहां प्रेम के आने और ठहरने की सम्भावना है। परन्तु जब, जैसे ही वह व्यक्त होने की कोशिश करता है, वह तुरत इतनी नीच और कुरूप वस्तुओं के साथ मिश्रित हो जाता है, तब वह नहीं ठहरता, वह चला जाता है। वस, यही बात यहां श्रीअरविन्द कहते हैं : वह उत्पन्न होने में “अनिच्छुक” होता है—यह कहा जा सकता है कि वह उत्पन्न होने पर तुरन्त प्रकाशाप करता है। मनुष्य सर्वदा यह शिकायत करते हैं कि प्रेम उनके साथ बना नहीं रहता परन्तु यह पूर्ण रूप से उनका दोष है। वे इस प्रेम को एक ऐसा गन्दा जीवन प्रदान करते हैं जो बीभत्स चीजों के एक स्तूप के साथ और इतनी अमार्जित वस्तुओं के साथ, इतनी नीच, इतनी स्वार्थपूर्ण, इतनी गन्दी चीजों के साथ मिला-जुला होता है कि वह बेचारी चीज ठहर नहीं पाती। यदि वे इसे पूरी तरह मार डालने में सफल नहीं होते तो वे इसे सर्वथा बीमार बना देते हैं। अतएव एकमात्र चीज जो वह कर सकता है वह है भाग खड़ा होना। लोग हमेशा यह शिकायत करते हैं कि प्रेम अस्थायी और क्षणभंगुर होता है। सच बात तो यह है कि उन लोगों को बहुत कृतज्ञ होना चाहिये कि उनके दिये हुए मकान की गन्दगी के बावजूद उनके अन्दर वह व्यक्त हुआ था।

श्रीअरविन्द यहां कहते हैं : “जो सब चीजें दीन-हीन होती हैं,

उनके (महालक्ष्मी के) आगमन को रोकती हैं।”

हां, वह सब जो दरिद्र है, उदारता से रहित, उत्साह की प्रखरता से शून्य, प्राचुर्य से रहित, आन्तरिक समृद्धि से शून्य है; जो कुछ सुखा, ठण्डा, अपने ऊपर झुका हुआ होता है वह सब महालक्ष्मी के आगमन को रोकता है। यहां प्रश्न स्थूल धन का नहीं है, समझे! एक अत्यन्त धनी व्यक्ति भी महालक्ष्मी की दृष्टि में भयानक रूप से दरिद्र हो सकता है। और एक बहुत दरिद्र आदमी बहुत धनी हो सकता है यदि उसका हृदय उदार हो...

दरिद्र मनुष्य वह व्यक्ति है जिसमें कोई गुण न हो, कोई शक्ति, कोई बल-सामर्थ्य, कोई उदार भाव न हो। वह एक दुःखी, अभाग्य मनुष्य भी होता है। परन्तु कोई व्यक्ति केवल तभी दुःखी होता है जब वह उदार नहीं होता—यदि किसी के अन्दर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाये अपने-आपको दे देता हो, तो वह कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग स्वयं अपने-आप पर ही झुके होते हैं और जो सर्वदा स्वयं अपनी ओर ही वस्तुओं को खींचना चाहते हैं—केवल ये ही लोग दुःखी होते हैं। परन्तु जब कोई अपने-आपको उदारतापूर्वक, हिसाब लगाये बिना, दे देता है तो वह कभी दुःखी नहीं होता—कभी नहीं। जो व्यक्ति लेना चाहता है वस वही दुःखी होता है; जो अपने-आपको दे देता है वह कभी वैसा नहीं होता।

प्रकृति के छन्द के साथ समस्वर रहना

साधारणतया, साधारण जीवन में, ऐसे लोग होते हैं जो, स्वयं अपनी गठन के, जिस तरीके से वे बने हुए हैं उसके कारण ही, प्रकृति के साथ एक प्रकार का सामञ्जस्य बनाये रखते हैं, मानों वे

अक्तुबर २००५

उसी ताल-छन्द के साथ श्वास लेते हों, और ये लोग सामान्यतया सर्वदा हर्षयुक्त, आनन्दपूर्ण रहते हैं; वे जो कुछ करते हैं उसमें सफल होते हैं, वे बहुत सारे दुःख-कष्टों तथा विपत्तियों से बच जाते हैं, निस्सन्देह जीवन और प्रकृति के ताल-स्वर के साथ उन्हें समस्वरता प्राप्त होती है। और फिर, ऐसे दिन होते हैं जब मनुष्य भागवत चेतना के, जो कार्यरत होती है, भागवत कृपा-शक्ति के सम्पर्क में होता है, और तब प्रत्येक वस्तु पर इस दिव्य उपस्थिति की आभा, रंग चढ़ा होता है, और जो वस्तुएं मामूली तौर पर तुम्हें नीरस और अरुचिकर प्रतीत होती हैं वे सुहावनी, सुखप्रद, आकर्षक और ज्ञानदायिनी बन जाती हैं—प्रत्येक वस्तु जीवन्त होती और स्पन्दित होती है, और आशा तथा शक्ति से भरपूर होती है। अतः जब मनुष्य उसकी ओर खुला होता है, वह अपने-आपको अधिक शक्तिशाली, अधिक मुक्त, अधिक सुखी तथा स्फूर्ति से पूर्ण अनुभव करता है, और प्रत्येक वस्तु एक अर्थ रखती है। तब मनुष्य समझने लगता है कि वस्तुएं जैसी हैं वैसी क्यों हैं और वह विश्वव्यापी गतिविधि में भाग लेने लगता है...

अब, यदि कोई अपने चैत्य पुरुष के साथ सचेतन रूप में युक्त होने में सफल हो जाये तो वह सर्वदा ग्रहणशीलता, आन्तरिक हर्ष, स्फूर्ति, प्रगति तथा दिव्य उपस्थिति के साथ प्राप्त एकत्व की इस स्थिति में रह सकता है। और जब कोई उसके सम्पर्क में होता है तो वह उसे सर्वत्र, सभी वस्तुओं में देखता है, तथा सभी वस्तुएं अपना यथार्थ अर्थ ग्रहण कर लेती हैं।

यह किस चीज पर निर्भर है? ... एक आन्तरिक ताल-छन्द पर। सम्भवतः एक प्रकार की कृपा पर। हर हालत में किसी ऐसी चीज की ग्रहणशीलता पर जो तुमसे परे है।

सौन्दर्य के रहस्य को खोजो

रूपों के जगत् में सुन्दरता का अतिक्रमण उतना ही बड़ा दोष है जितना भावों के जगत् में सत्य का अतिक्रमण। क्योंकि सुन्दरता वह पूजा है जो प्रकृति विश्व के सर्वोच्च स्वामी को अर्पित करती है; सुन्दरता रूपों में दिव्य भाषा है। और भगवान् की चेतना जो बाहरी रूप में सुन्दरता की समझ और अभिव्यक्ति में अनूदित नहीं होती वह अपूर्ण चेतना रहेगी।

लेकिन सच्ची सुन्दरता को खोजना, समझना और सबसे बढ़कर जीना उतना ही कठिन है जितना भगवान् की किसी और अभिव्यक्ति को; इस खोज और अभिव्यक्ति के लिए उतनी ही निर्वैयक्तिकता और अहंकार के त्याग की जरूरत है जितनी सत्य या आनन्द के लिए। शुद्ध सुन्दरता वैश्व है और तुम्हें उसे देखने और पहचानने के लिए वैश्व होना चाहिये।

हे सौन्दर्य के प्रभो, मैंने तेरे विरुद्ध कितने अपराध किये हैं और कितने अब भी करती रहती हूँ...। मुझे अपने विधान की पूर्ण समझ प्रदान कर ताकि मैं फिर कभी उसके अनुसार चलने में असफल न होऊँ। प्रेम तेरे बिना अपूर्ण होगा; तू उसके पूर्णतम आभूषणों में से एक है, तू उसकी सबसे अधिक सामञ्जस्यपूर्ण मुस्कुराहटों में से एक है।...

तू वैसा बिलकुल नहीं है जैसा अभिमानी लोग तुझे मानते हैं, तू जीवन के इस या उस रूप के साथ अपवादिक रूप से आसक्त बिलकुल नहीं है : तुझे जगाना और प्रत्येक रूप में चमकाना सम्भव है; लेकिन उसके लिए हमें तेरे रहस्य को खोजना होगा...।

हे सौन्दर्य के प्रभो, मुझे अपने विधान की पूरी समझ दे ताकि मैं फिर कभी उसके अनुसार चलने में असफल न होऊँ, ताकि तू मेरे

अक्तुबर २००५

अन्दर प्रेम के प्रभु की समन्वयात्मक संसिद्धि बन जाये।

उचित वृत्ति

... जीवन की परिस्थितियां चाहे जैसी हों, तुम्हें सदैव निराशा से दूर रहना चाहिये और फिर दुःखी, उदास और हताश रहने की यह आदत वस्तुतः परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होती, बल्कि यह प्रकृति में विश्वास न होने से उत्पन्न होती है। जिस व्यक्ति में विश्वास होता है, चाहे वह केवल अपने ऊपर ही क्यों न हो, वह सब कठिनाइयों का, सब परिस्थितियों का, अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों का भी, बिना निरुत्साहित या निराश हुए, सामना कर सकता है। वह अन्त तक मर्दानगी के साथ संघर्ष करता रहता है। जिन व्यक्तियों की प्रकृति में विश्वास नहीं होता उन्हीं में सहनशीलता और साहस का भी अभाव होता है।

श्रीअरविन्द हमें बताते हैं कि मनुष्यों के लिए उनके भौतिक जीवन की थोड़ी-बहुत सफलता व्यक्ति और वैश्व भौतिक प्रकृति के बीच के थोड़े-बहुत समन्वय पर निर्भर करती है। कुछ लोगों की इच्छा-शक्ति सहजभाव से ही प्रकृति की इच्छा-शक्ति के अनुरूप होती है और ये लोग जिस काम को अपने हाथ में लेते हैं उसी में सफल होते हैं। इसके विपरीत, कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनकी इच्छा-शक्ति वैश्व प्रकृति का लगभग पूरी तरह से विरोध करती है। ऐसे लोग जो कुछ करना चाहें या जो कुछ करते हैं उसी में असफल होते हैं।

सौन्दर्य और सामञ्जस्य

प्रत्येक वस्तु में, सर्वत्र, प्रत्येक सम्बन्ध में सत्य को ही उसके सर्वग्राही छन्द में प्रकाशित करना चाहिये तथा जीवन की प्रत्येक गति सौन्दर्य और सामञ्जस्य की एक अभिव्यक्ति-स्वरूप होनी चाहिये। कौशल कला नहीं है, प्रवीणता कला नहीं है। कला तो जीता-जागता सामञ्जस्य और सौन्दर्य है जिसे जीवन की समस्त गतियों में अभिव्यक्त करना चाहिये। सौन्दर्य और सामञ्जस्य की वह अभिव्यक्ति पृथ्वी पर भगवान् के साक्षात्कार का एक अंग है, शायद उसका महत्तम अंग।

विज्ञानमय दृष्टिकोण से सौन्दर्य और सामञ्जस्य उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि भगवान् की अन्य कोई भी अभिव्यक्ति। परन्तु इनको अन्य अभिव्यक्तियों से अलग नहीं करना चाहिये, अन्य समस्त सम्बन्धों से अलग करके नहीं देखना चाहिये, समग्रता में से बाहर नहीं निकाल लेना चाहिये; जीवन की जो समग्र-रूप अभिव्यक्ति है उसके साथ इनको एक करके देखना चाहिये।

*

... सत्ता के अन्दर सच्चे सौन्दर्य की, परमोच्च सौन्दर्य की इस सहजवृत्ति और भावना को स्थापित करो जो धीरे-धीरे कोपों पर क्रिया करे और शरीर को सौन्दर्य प्रकट करने के योग्य बनाये। यह अभी तक भी एक ऐसी चीज है जिसे लोग नहीं जानते: शरीर तुम्हारी धारणा से अनन्तगुना अधिक नमनीय है। तुमने निश्चय ही देखा होगा (शायद बहुत ही अस्पष्ट रूप में) कि जो लोग आन्तरिक शान्ति में, आन्तरिक सौन्दर्य में, प्रकाश में और पूर्ण सद्भावना में निवास करते हैं उनका रूप उन लोगों जैसा नहीं होता जो

अक्तूबर २००५

कुविचारों में और अपनी प्रकृति के निम्नतर अंगों में निवास करते हैं। जब मनुष्य अपनी श्रेष्ठतम स्थिति में रहता है, अपने निम्नतम पशुत्व से ऊपर रहता है, तब उससे एक ऐसी चीज विकीर्ण होती है जो उसमें उस समय नहीं होती जब वह पशुता की अवस्था में निवास करता है।

यदि मनुष्य अपना रूप अहंभाव से या उस विख्यात चीज—
दम्भ—के कारण बदलना चाहे तो स्वभावतः ही उसे सफलता नहीं मिलेगी, क्योंकि इस काम को करने की शक्ति तो एक और ही अधिक गंभीर चीज में है; लेकिन तुम यदि सारे समय बुरी इच्छा, खोटे विचार से बचे रह सको तो देखोगे कि तुम्हारे रूप और आकृति में एक प्रकार का सामञ्जस्य क्रमशः प्रकट होने लगा है, क्योंकि यह सच है कि शरीर आन्तरिक स्थितियों को प्रकट करता है।

किन्तु तुम एक बात भूल जाते हो। यदि तुम सारे दिन में पांच या छः घण्टे उच्चतर चेतना में बिता लेते हो तो तुम्हें लगता है कि यह बहुत हो चुका और बाकी समय तुम कम या अधिक एक छोटे पशु की भांति रहते हो, तुम अपने-आप पर नियन्त्रण नहीं रखते, परिस्थितियों की हांक पर चलते हो। और तुम उस चीज के पास जाना एकदम भूल जाते हो जो ऊपर स्थित है, जो तुम्हें अपनी प्रकृति के निम्नतर क्षेत्रों में नीचे गिरने से रोक सकती है।

सौन्दर्य-बोध की चेतना

मधुर मां, सौन्दर्य-बोध (एस्थेटिक) की चेतना क्या है?

यह सौन्दर्य की चेतना है। “एस्थेटिक” का अर्थ है वह जो सौन्दर्य के साथ, कला के साथ सम्बन्ध रखता हो। उदाहरण के लिए, ऐसे लोग

हैं जो जीवन में घूमते-फिरते हैं, भूदृश्य देखते हैं, मनुष्यों और वस्तुओं को देखते हैं, लेकिन उन्हें इस बात का जरा भी ख्याल नहीं होता कि वे सुन्दर हैं या नहीं; और इसके अतिरिक्त, उससे उनके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए, वे आकाश को देखते हैं, वे देखते हैं कि बादल हैं या नहीं, वर्षा होगी या आकाश साफ रहेगा; तपती धूप है या ठण्डी हवा वह रही है। जब कि कुछ और लोग हैं—जब वे अपनी आंखें उठाते हैं और सुन्दर आकाश को देखते हैं, तो इससे उन्हें प्रसन्नता होती है, वे कहते हैं: “ओह! आज सुहावना दिन है, आज का सूर्योदय बड़ा मनोहर है, आज का सूर्यास्त बड़ा सुन्दर है, बादलों के आकार बड़े अच्छे हैं।” तो, पहले प्रकार के लोगों में सौन्दर्य-बोध की चेतना नहीं है, दूसरे प्रकार में है।...

क्या सौन्दर्य आकार के बाहर रह सकता है?

भावनाओं का सौन्दर्य है; तुम समझते हो कि भावनाओं का भी एक आकार होता है, तो और बात है। तुम्हारा मतलब है: “क्या भौतिक आकार के बाहर भी सौन्दर्य है?”

जी हां।

हां, अवश्य, विचारों का सौन्दर्य, भावों का सौन्दर्य होता है। यह ऐसी चीज है जिसे हम प्रायः देखते हैं; जब किसी ने कोई बहुत उदात्त, बहुत उदारतापूर्ण, बहुत निःस्वार्थ काम किया हो, तो बिलकुल सहज रूप से हम कहते हैं: “यह सुन्दर है।” और यह सच है, यह सौन्दर्य का भाव देता है।

सौन्दर्य शुद्ध रूप से भौतिक चीज नहीं है। फिर भी हमने कहा है कि भौतिक जगत् में भगवान् की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है सौन्दर्य; लेकिन यह ऐकान्तिक नहीं है, इसका यह मतलब नहीं है कि यह

अक्तूबर २००५

केवल भौतिक जगत् में ही है।
(मौन)

यह ठीक है न?

मधुर मां, श्रीअरविन्द कहते हैं: "...सौन्दर्य की यह खोज
... हमारे जीवन के मूल से आती है..."

वह हमारे जीवन के मूल से आती है—तो?

हमारे जीवन का मूल क्या है?

उनका मतलब है कि यह सहज-वृत्ति की चीज है, यह बौद्धिक नहीं है, यह तर्क-बुद्धि के क्षेत्र पर निर्भर नहीं है, यह कोई सहज-वृत्ति की चीज है। हमारे अन्दर सौन्दर्य-बोध होता है और यह जाने बिना कि हम ऐसा क्यों कर रहे हैं हम सौन्दर्य से प्रेम करते हैं, और ऐसी चीजें हैं जो हमारे कारण जाने बिना, तर्क किये बिना सौन्दर्य का भाव देती हैं। यह सहज-वृत्ति की चीज है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि यह सौन्दर्य-बोध की अव-बौद्धिक अवस्था है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जो बच्चा एक सुन्दर फूल को देखता है और जिसके अन्दर उसके कारण जाने बिना ही सौन्दर्य-भाव आता है, वह तुम्हें कभी यह न बता सकेगा कि यह इस कारण है कि उसका आकार सन्तुलित है और उसके रंग मोहक; वह व्याख्या नहीं कर सकता इसलिए यह बौद्धिक नहीं है, यह पूरी तरह सहज-वृत्ति की चीज है, यह एक आकर्षण है, एक आवेग है जो तुम्हें किसी चीज की ओर खींचता है, तुम सामञ्जस्य का अनुभव करते हो, पर उसकी व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन बहुधा ऐसा होता है। यह

बहुत ही कम होता है कि कोई कह सके : “यह चीज इस कारण या उस कारण से सुन्दर है,” और किसी चीज की सुन्दरता के बारे में पूरा भाषण दे सके। स्वभावतः, तुम्हें केवल ऐसा लगता है कि यह चीज सुन्दर है; बाद में यदि तुम्हें यह आश्चर्य हो : “मुझे यह चीज क्यों सुन्दर लगती है?” तो, अपनी बुद्धि से प्रयास करके तुम इस बात को समझने में सफल हो सकते हो; लेकिन शुरू में तुम उसके कारण में व्यस्त नहीं रहते, तुम अनुभव करते हो कि चीज सुन्दर है, और बस, तुम उससे सन्तुष्ट हो जाते हो।

उदाहरण के लिए, तुम एक ऐतिहासिक भवन में प्रवेश करते हो, और अचानक तुम एक महान् सौन्दर्य के भाव से अभिभूत हो जाते हो; इसे तुम कैसे समझाओगे? अगर कोई तुमसे उसके बारे में पूछे तो तुम कहोगे : “हां, मुझे लगता है कि यह सुन्दर है।” लेकिन अगर कोई स्थपति किसी भवन में प्रवेश करे और सौन्दर्य के उसी भाव का अनुभव करे, तो वह तुम्हें तुरन्त बता देगा : “क्योंकि इसकी रेखाएं सामञ्जस्य के साथ मिलती हैं, इसके आयतन के परिमाण में सामञ्जस्य है, सारी रचना सुन्दरता, सुव्यवस्था और लय के नियमों का अनुसरण करती है,” और वह ये सब बातें तुम्हें समझा देगा। लेकिन वह इसलिए कि वह स्थपति है, लेकिन फिर भी तुम उसके समान ही सौन्दर्य का अनुभव कर सकते थे, भले उसे समझा न पाते। हां तो, तुम्हारा सौन्दर्य-बोध वैसा है जिसे श्रीअरविन्द अव-बौद्धिक कहते हैं, और स्थपति का सौन्दर्य-बोध वैसा है जिसे श्रीअरविन्द बौद्धिक कहते हैं, क्योंकि वह अपनी बुद्धि द्वारा यह समझा सकता है कि उसे वह चीज सुन्दर क्यों लगती है।

लेकिन अगर तुम किसी को देखो, किसी व्यक्ति को देखो, और तुम्हें लगे कि वह सुन्दर है, तो क्या तुम अपने-आपको बता सकोगे कि ऐसा क्यों है? प्रायः नहीं। अगर तुम प्रयास करो, ध्यान से

देखो, सोचो
हां, अरे!
बिलकुल नि
वस्तुतः
आनेवाली च
सोचने से
सच्चा अति
वह बुद्धि व
सम्पर्क है।
होती है,
सच्ची समझ
बौद्धिक है,
“रंग और
हो, नाना
मूल्यांकन
कारण जा
मजा लेता
यह है सौ
‘श्रीअरवि
आध्य
आन्त
आन्तरिक
भी मानव
आध्यात्मि

अक्तुबर २००५

“हां, सोचो, तो हो सकता है कि तुम अपने-आपसे कहने लगे :
“हां, अरे! यह इस कारण से है, यह उस कारण से है,” और यह
बिलकुल निश्चित नहीं है कि तुम्हारी बात ठीक हो।

वस्तुतः सौन्दर्य दुर्ग्राह्य वस्तु है, अर्थात् आसानी से पकड़ में
आनेवाली चीज नहीं है। यह एक प्रकार का सामञ्जस्य है जिसे तुम
सोचने से कहीं अधिक अनुभव करते हो, और सौन्दर्य के साथ
सच्चा अति-बौद्धिक सम्बन्ध जरा भी “बौद्धिक” सम्बन्ध नहीं है;
वह बुद्धि को एकदम पार कर जाता है, वह एक उच्चतर क्षेत्र में
सम्पर्क है। ... पहले तुम्हारी सौन्दर्य-भावना सहज-वृत्ति के रूप में
होती है, आवेशमय, अव-बौद्धिक, प्रकाशहीन, बुद्धि-हीन, किसी
सच्ची समझ से रहित, अतः, चूंकि सौन्दर्य-भाव का मूल स्रोत अव-
बौद्धिक है, यह मानी हुई बात है, इसलिए, लोग हमेशा कहते हैं :
“रंग और रुचि में कोई बहस नहीं की जा सकती।” तुम जानते ही
हो, नाना प्रकार की कहावतें हैं जो कहती हैं कि सौन्दर्य का
मूल्यांकन तर्क का विषय नहीं है, हर एक किसी वस्तु-विशेष को
कारण जाने बिना पसन्द करता है, वह किसी चीज को देखने में
मजा लेता है, और इस मजे पर बहस नहीं की जा सकती। हां तो,
यह है सौन्दर्य-बोध की अव-बौद्धिक अवस्था।

‘श्रीअरविन्द के वचन’ :

आध्यात्मिक जीवन में दूसरों के साथ सामञ्जस्य

आन्तरिक एकाकीपन को केवल भगवान् के साथ एकत्व की
आन्तरिक अनुभूति प्राप्त करके ही दूर किया जा सकता है। कोई
भी मानव सम्पर्क इस शून्य स्थान को नहीं भर सकता। उसी तरह,
आध्यात्मिक जीवन के लिए मानसिक और प्राणिक सम्बन्धों पर

नहीं, बल्कि भागवत चेतना तथा भगवान् के साथ ऐक्य पर दूसरों के साथ सामञ्जस्य स्थापित करना चाहिये। जब व्यक्ति भगवान् को अनुभव करता और दूसरों को भगवान् में अनुभव करता है, तब सच्चा सामञ्जस्य आता है। उसके पहले जो कुछ हो सकता है वह है किसी सामान्य दिव्य लक्ष्य की भावना और यह भावना कि हम सब श्रीमां के बच्चे हैं...। सच्चा सामञ्जस्य केवल किसी चैत्य या आध्यात्मिक आधार के द्वारा ही आ सकता है।

*

... यदि लोग चेतना में ऊपर उठ जायें तो उससे दूसरों के दृष्टिकोणों को मन से समझने की शक्ति उत्पन्न होती है जिससे सामञ्जस्य पाना अधिक आसान हो जाता है और तब निर्विघ्न रूप से कार्य करना भी कठिन नहीं रहता। बस यही चीज है जिसकी हमें आन्तरिक परिवर्तन द्वारा खोज करनी चाहिये—उस सामञ्जस्य को बाहर से बाहरी उपायों द्वारा उत्पन्न करना उतना आसान नहीं है, क्योंकि मानव मन अपनी समझ में बहुत कठोर होता है और मानव प्राण अपने कार्य करने के तरीके पर आग्रहशील। तुम्हारा मुख्य संकल्प यह हो—‘मैं अपने अन्दर निरन्तर विकसित होता रहूंगा।’ अपने अन्दर स्पष्टतर और गभीरतर चेतना को आने दो तथा यह शुभेच्छा बनाये रखो कि यही परिवर्तन दूसरों के अन्दर आये ताकि संघर्ष और गलतफ़हमी के स्थान पर उदारता और सामञ्जस्य आ सकें।

अक्तूबर २००५

कर्म और सामञ्जस्य

काम में भूलें इसलिए होती हैं क्योंकि लोग अपना अहंकार, अपने वैयक्तिक भाव (पसन्द और नापसन्द), अपने सम्मान या अपनी सुविधा के विचार, गर्व, अधिकार इत्यादि की भावनाएं उसमें ले आते हैं। सच्चा तरीका है कि काम को श्रीमां का काम समझो, अनुभव करो—केवल अपने ही नहीं बल्कि औरों के काम को भी उसी दृष्टिकोण से देखो—और उसे ऐसे भाव के साथ सम्पादित करो कि हमेशा एक व्यापक सामञ्जस्य फैला रहे। सामञ्जस्य केवल बाहरी व्यवस्था के द्वारा नहीं पाया जा सकता—यद्यपि अधिकाधिक पूर्ण बाहरी व्यवस्था बहुत जरूरी है, लेकिन आन्तरिक सामञ्जस्य होना ही चाहिये वरना हमेशा संघर्ष और अव्यवस्था बने रहेंगे।

आपने लिखा है “सामञ्जस्य केवल बाहरी व्यवस्था के द्वारा नहीं पाया जा सकता... आन्तरिक सामञ्जस्य होना ही चाहिये वरना हमेशा संघर्ष और अव्यवस्था बने रहेंगे।” वह आन्तरिक सामञ्जस्य क्या है?

श्रीमां के साथ ऐक्य।

सामञ्जस्य—हमारे योग का कार्य

... एकीकरण, सत्ता का सामञ्जस्य बाहर से नहीं किया जा सकता। वह मन और प्राण-पुरुष के द्वारा नहीं किया जा सकता—निसन्देह वे सारे मामले को चौपट कर देंगे। वह तो केवल अन्दर से, अन्तरात्मा के द्वारा, आत्मा के द्वारा किया जा सकता है जो

सबके केन्द्र में है। सभी में कुछ सत्य होता है जो दूसरों के सत्य के साथ सुसमञ्जस हो सकता है। उदाहरण के लिए, निर्वाण में एक सत्य है—निर्वाण और कुछ नहीं वह तो बस उस ब्रह्म की शान्ति और स्वतन्त्रता है जो स्वयं अपने-आप में स्थित है—चाहे जगत् हो या न हो, विश्व-व्यवस्था हो या विश्व-विशृंखलता—वह बना रहेगा। भक्ति और भगवान् के लिए हृदय की पुकार में एक सत्य है—यह दिव्य प्रेम और आनन्द का सत्य है। तपस्या के संकल्प में भी एक सत्य है—यह आत्मा का उसके अंग-प्रत्यंगों पर प्रभुत्व का सत्य है। संगीतज्ञ और कवि भी एक सत्य को चरितार्थ करते हैं—वह सत्य है सौन्दर्य के द्वारा आत्मा की अभिव्यक्ति। मानसिक रूप से चीजों को स्वीकार करनेवालों के पीछे भी एक सत्य होता है। यहां तक कि मानसिक शंकाशील, 'रसेल'-मतवादी के पीछे—यद्यपि बहुत पीछे—एक सत्य है—वह है मिथ्या आकारों की अस्वीकृति का सत्य...। यही वह समन्वयीकरण है जिसके लिए हमारा योग है—लेकिन इसे किसी बाहरी व्यवस्था के द्वारा संसिद्ध नहीं किया जा सकता। इसे केवल अन्दर पैठ कर और आध्यात्मिक केन्द्र से ही देख कर, संकल्प कर और कार्य करके संसिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि सत्ता का सत्य वहीं है और सामञ्जस्य का मर्म भी वहीं है।

*

जब सभी एक 'सत्य' या उसकी किसी अभिव्यक्ति के साथ सहमत होते हैं तब सामञ्जस्य होता है।

*

... सब जगह मानव सत्ता के विचार, शक्ति, पृथक् चेतना अपने अज्ञान के द्वारा दूसरों के साथ संघर्ष करते हैं, अपना महत्व,

अक्तूबर २००५

अपनी पुष्टि चाहते हैं, अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को थोपना चाहते हैं, उनमें कोई सामञ्जस्य नहीं होता। लेकिन फिर भी एक ऐसी आधारभूत समस्वरता सबके नीचे छिपी रहती है जो हमें एक प्रकार की समस्वरता को पाने के लिए विवश करती है—यह परस्पर आश्रय-भाव होता है, इसमें बेसुर स्वरों को ठीक करने का प्रयास होता है—लेकिन इसमें बहुत समय लगता है, चूंकि यह सचेतन प्रयास नहीं होता अतः एकता पाना भी कठिन कार्य बन जाता है।

वैश्व इतिहास और वर्तमान दृश्य

ब्रह्माण्ड या विश्व हमेशा सामञ्जस्यपूर्ण होता है, अन्यथा उसका अस्तित्व ही नहीं होता, वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता। लेकिन चूंकि एक ऐसा भी संगीतमय सामञ्जस्य है जो आंशिक रूप में या प्रधानतः विसंगतियों से बनता है इसलिए यह विश्व (स्थूल विश्व) अपने अलग-अलग तत्त्वों में असामञ्जस्यमय होता है—पृथक् तत्त्व बहुत हद तक परस्पर असामञ्जस्यमय होते हैं; केवल समग्र विश्व के पीछे स्थित सबको धारण करनेवाले भागवत संकल्प के कारण ही उन लोगों के लिए एक सामञ्जस्य होता है जो इसे वैश्व दृष्टि से देखते हैं। लेकिन यह ऐसा सामञ्जस्य है जो क्रमशः विकसित हो रहा है—अर्थात्, सब मिलकर उस लक्ष्य को पाने का प्रयास कर रहे हैं जो अभी प्राप्त नहीं हुआ है, और हमारे योग का लक्ष्य है इस लक्ष्य तक जल्दी पहुंचना। उस अवस्था तक पहुंचने पर वहां असंगतियों पर निर्मित सामञ्जस्य के स्थान पर सामञ्जस्यों का सामञ्जस्य आ जायेगा। वस्तुओं के बाहरी रूप की यही व्याख्या है। इस असंगति से हमें पूर्ण सामञ्जस्य तक पहुंचना है।

सामञ्जस्य के बिना जीवन में कठिनाइयां आती हैं

... अगर हम संसार की क्रियाओं को जरा गौर से देखें तो लगता है कि संसार में जो संघर्ष और टकराव हैं वे प्रकृति के गहनतम उपायों का एक हिस्सा हैं और उन पर प्रकृति की स्वीकृति की पूरी मोहर लगी होती है।

क्योंकि जीवन की सभी समस्याएं तत्त्वतः सामञ्जस्य की समस्याएं होती हैं। वे किसी अनसुलझी विसंगति या अप्राप्त मेल के कारण ही उठती हैं। मनुष्य के व्यावहारिक और अधिक पाशविक भाग के लिए अनसुलझी विसंगतियों के साथ सन्तुष्ट बने रहना सम्भव है, लेकिन उसके पूरी तरह जागृत मन के लिए यह असम्भव है। सामान्यतः उसके व्यावहारिक भाग भी इस व्यापक आवश्यकता से या तो समस्या को अनदेखा करके या छोटा-मोटा, कामचलाऊ, प्रकाशहीन समझौता स्वीकार करके बचते हैं। क्योंकि अनिवार्य रूप से समस्त प्रकृति सामञ्जस्य की खोज में है, जैसे मन अपने प्रत्यक्ष दर्शनों में, उसी तरह प्राण और भौतिक भी अपने-अपने क्षेत्र में सामञ्जस्य की खोज करते हैं। ऊपर से चाहे जितनी विसंगतियां क्यों न दीखती हों, जिन वस्तुओं का हम उपयोग करते हैं उनमें चाहे जितना परस्पर-विरोध हो, फिर भी सबके अन्तरतम में ऐसा सामञ्जस्य निरन्तर बहता है जो धीरे-धीरे करके एक अधिक सूक्ष्म और सशक्त व्यवस्था की ओर ले जायेगा।

*

* *

सबकी सहमति के लिए—हर एक को अपनी चेतना के शिखर तक उठना होगा : शिखरों पर ही सामञ्जस्य का सृजन होता है।

—श्रीमां

ऋषिवर बोले' :

शुभ घड़ी

ऋषिवर ने कहा, आओ, तुम्हें एक कहानी सुनाएं। नारद मुनि का नाम तो तुमने सुना ही है। ये भक्त शिरोमणि किसी जगह ढाई घड़ी से ज्यादा नहीं रहा करते, भगवान् का भजन करते-करते इधर से उधर घूमते रहते हैं। मार्कण्डेय भी बहुत बड़े ऋषि हैं। ये जब बालक थे तो इनकी मृत्यु का समय आ गया। ये मरना न चाहते थे। इन्होंने भगवान् शंकर के पाँव पकड़ लिये। फिर भला यमदूत इनके पास भी फटक सकते थे क्या? तब से मार्कण्डेय अमर हैं और इनके सामने न जाने कितने ब्रह्मा आ और जा चुके हैं।

आज सुबह नारद मुनि की कृपा से मुझे उनकी और मार्कण्डेय की बातचीत सुनने का सौभाग्य मिल गया। मार्कण्डेय कह रहे थे, मुने! बहुत-सी सृष्टियाँ देख चुका हूँ, न जाने कितनी बार कलियुग आया और गया पर ऐसी हालत तो मैंने कभी नहीं देखी थी। इस बार एक अजीब बात है, कलियुग समाप्त हो चुका है, पर सन्धिकाल उससे भी भयंकर लग रहा है। कलिकाल में कम-से-कम कलि की तो चलती थी, पर आजकल तो ऐसा लगता है कि धरती पर पूरी अराजकता है। धरतीवासी प्रकृति पर अधिक-से-अधिक अधिकार पाने की कोशिश कर रहे हैं। अभी पिछले दिनों उन्होंने अणु को तोड़कर उसकी शक्ति का उपयोग करना सीखा है। आप तो जानते ही हैं विधाता ने कितने यत्न से एक-एक अणु में शक्ति भरी थी, अब मनुष्यों ने मार-काट के लिए, अपने जैसे दूसरे मनुष्यों के विनाश के लिए उसका उपयोग करना शुरू कर दिया है। उन्होंने पुराने जमाने के राक्षसों से भी बड़ा एक राक्षस बनाया है जिसका

नाम है अणुवम। जब से इसका उपयोग हुआ है मनुष्य मनुष्य नहीं रहा। ऐसा लगता है सद्भावना और सदाशय का अन्त हो गया है। हर एक इसी तलाश में रहता है कि कैसे दूसरे व्यक्ति, दूसरी जाति और दूसरे देश को लूटकर, कहीं खुले रूप में और कहीं छिपे तौर पर, हड़प सके। जो जितना लूट सकता है वह उतनी ही मौज में है। आज का मनुष्य केवल खाना जानता है, वह अपने भाई को भी पकाकर या कच्चा ही खा सकता है। एक समय था जब धरती पर स्वाधीनता, न्याय, सामञ्जस्य, एकता, पूजा, अर्चना आदि की चर्चा हुआ करती थी, चारों ओर यज्ञ की अग्नि भड़का करती थी, पर आज इन सबको देशनिकाला मिल गया है और ये यहीं कहीं पड़े दिन काट रहे हैं। धरती पर कोई भला आदमी है भी तो 'जिमि दसनन बिच जीभ बिचारी', किसी तरह दांतों के बीच रहनेवाली जीभ की भांति अपने दिन काट रहा है। इसका क्या उपाय है, महामुने?

नारद जी की वीणा जरा रुकी। वे धीरे से बोले, मार्कण्डेय, तुम्हें धरती छोड़े न जाने कितने युग बीत चुके हैं, फिर भी तुम्हें उसके लिए अनुराग है। ठीक ही तो है। भगवान् ने धरती को अनूठा स्थान दिया है। नीचे-से-नीचे कीचड़ में घुस कर वहां तक भगवान् का प्रकाश पहुंचाना और साथ ही भगवान् की ऊंची-से-ऊंची चेतना तक पहुंच कर, उसके रंग में रहकर उसे अपने साथ नीचे लाना।

मार्कण्डेय! धरतीवासियों ने और खुद धरती ने बहुत दुःख सहे हैं। मैंने तुम्हारे जन्म से भी पहले धरती को विश्वास दिलाया था कि एक दिन स्वर्णयुग आयेगा। वह दिन आयेगा जब सब जगह भगवान् का ही राज्य होगा। धरती उसी भरोसे पर जी रही है। कभी ऊंची उठती है, कभी नीचे गिरती है और कभी हिचकोले खाती है,

अक्तूबर २००५

लेकिन फिर भी हिम्मत नहीं हारती, निराश नहीं होती। तुम्हें और तुम्हारे जैसे दूसरों को देखकर उसे ढाढ़स मिलता है। अब वह समय आ गया है जब तुम जैसों को फिर से धरती पर बसना होगा। आज वहां ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है जो नये रास्ते बना सकें, जो धरती को स्वर्ग से मिलाने के लिए पुल बना सकें।

तुम धरती पर जाओ और वहां के लोगों से कहो कि निराश होने की जरूरत नहीं है। दूसरों का मुंह ताकने की जगह तुम ही वह अग्निकुण्ड बनो जिसमें सब दुःख-दैन्य और दरिद्रता भस्म हो जायें। उन्हें बतलाओ कि वे अकेले नहीं हैं। जो कोई भगवान् की ओर चलता है भगवान् उसके साथ चलते हैं, तुम धरतीवासियों से कहना कि हर एक के अन्दर भगवान् मौजूद हैं। अपने दिल के आईने पर से मैल हटा दो, वह चमकने लगेगा और उसमें भगवान् दिखाई देंगे। पहले व्यक्ति को आगे बढ़ना होगा, पहाड़ों को, झाड़-झंखाड़ को काट कर रास्ता बनाना होगा। समाज उसके पीछे-पीछे आयेगा।

मार्कण्डेय! यह धरती के लिए बहुत ही शुभ घड़ी है। हमारी, तुम्हारी और हमारे जैसे सैकड़ों की तपस्या अब सफल होने को है। भगवान् की करुणा धरती पर बरस रही है। सारे जीवन में भगवान् प्रकट होने को हैं।

सोसायटी समाचार

नवम्बर २००५ में सोसायटी के 'बीच-ऑफिस' में ये कार्यक्रम होंगे:

१—२१ से २३ नवम्बर तक नारी-आयोग की बैठक होगी।

२—डॉ. मंगेश नडकर्णी २६ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक श्रीअरविन्द के गीता-प्रबन्ध पर (अंग्रेजी में) शिक्षा शिविर लगायेंगे। इन दोनों कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए कोई शुल्क नहीं है।

नवम्बर तथा दिसम्बर के प्रमुख दिवस :

१७ नवम्बर : श्रीमां का महासमाधि-दिवस। श्रीमां का कमरा दर्शनार्थ खुलेगा।

२० नवम्बर : श्रीमां के शरीर का समाधिस्थ-दिवस।

२४ नवम्बर : सिद्धि-दिवस। चार दर्शनों में से एक।

५ दिसम्बर : श्रीअरविन्द का महासमाधि-दिवस। श्रीअरविन्द का कमरा दर्शनार्थ खुलेगा।

९ दिसम्बर : श्रीअरविन्द के शरीर का समाधिस्थ-दिवस।

आश्रम के शिक्षा-केन्द्र के दिसम्बर के वार्षिक कार्यक्रम—

१ दिसम्बर : आश्रम के थियेटर में श्रीअरविन्द की किसी कृति का मञ्चन किया जायेगा।

२ दिसम्बर : शिक्षा-विभाग का वार्षिक प्रदर्शन आश्रम के 'स्पोर्ट्स ग्राउण्ड' में होगा।

श्रीअरविन्द सोसायटी का वार्षिक अधिवेशन १२, १३ तथा १४ अगस्त को 'बीच-ऑफिस' में हुआ था। इसमें प्रो. किट्टू रेड्डी, डॉ. एम. वी. नडकर्णी, डॉ. आनन्द रेड्डी, डॉ. आलोक पाण्डे, श्री श्रद्धालु, श्री अनिरुद्ध स्मार्त, श्री कैवल्य स्मार्त तथा अन्यो ने

अक्तूबर २००५

श्रीअरविन्द की शिक्षा के विषय में भाषण दिये।

श्रीअरविन्द का १३३वां जन्मदिवस १५ अगस्त को मनाया गया। हमेशा की तरह सवेरे ६ से ६.३० तक आश्रम में ध्यान हुआ। श्रीअरविन्द का कमरा दर्शनार्थ खुला। शाम को मार्च-पास्ट हुआ और उसके बाद ध्यान।

यह दिवस सोसायटी के देश-विदेश के केन्द्रों तथा शाखाओं में भी विशेष रूप से मनाया गया।

२००५ में सोसायटी के कई केन्द्रों तथा शाखाओं में विभिन्न कार्यक्रम हुए—

पटियाला में श्रीअरविन्द सोसायटी की प्रादेशिक समिति ने हिंदी में दो दिन का शिविर लगाया जिसमें चालीस व्यक्तियों ने भाग लिया।

वडोदरा शाखा ने सात दिनों का शिक्षा-शिविर लगाया जिसमें श्रीअरविन्द की कृतियों का परिचय लोगों को दिया गया।

कडलूर केन्द्र (तमिलनाडु) ने अपनी दूसरी जयन्ती १९ जून को मनायी जिसमें श्री एम. एस. सुन्दरराजन् तथा श्री एन. तिरुवेंकटम् बोले।

वेल्लोर (तमिलनाडु) में १७ जुलाई को श्री प्रदीप नारंग ने एक सभा को सम्बोधित किया। वहां की स्थानीय अध्ययन-मण्डली को अब सोसायटी के केन्द्र में परिवर्तित कर दिया गया है। इस अवसर पर श्री एन. तिरुवेंकटम् ने भाषण दिया।

नया प्रकाशन

Sanskrit and the Evolution of Human Speech—लेखक : डॉ. सम्पदानन्द मिश्र, प्रकाशक : श्रीअरविन्द इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च इन सोशल साइंसेज़, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी ६०५००२।
मूल्य : रु. १२५। उपलब्धि स्थान—शब्द, श्रीअरविन्द आश्रम, पॉण्डिचेरी ६०५००२।

सूचना

पुरोधा और अग्निशिखा के लिए शुल्क भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखिये —

१. मनीऑर्डर-फॉर्म टाइप करके न भेजें। यह फॉर्म पर छपी लकीरों के बीच ऐसा घपला जाता है कि पढ़ने में बहुत दिक्कत होती है। हाथ से लिखना ठीक है।

२. तमिलनाडु में हिन्दी पढ़नेवाले, विशेषतः डाक-विभाग में हिन्दी जाननेवाले बहुत कम हैं। अतः मनीऑर्डर-फॉर्म या पत्र का पता अंग्रेजी में ही लिखें।

३. मनीऑर्डर-फॉर्म के सम्पर्क-स्थान पर यह जरूर लिखें:

(क) यह धन किसलिए, किस पत्रिका के लिए और कितने समय के लिए भेजा जा रहा है।

(ख) अपना नाम व पूरा पता पिनकोड सहित साफ-साफ पढ़े जा सकनेवाले बड़े अक्षरों में (अंग्रेजी में) लिखें।

(ग) अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

४. पता बदल जाये तो उसकी सूचना तुरन्त दें। अन्यथा पत्रिकाएं लौट-लौट आती हैं।

५. मनीऑर्डर या डी. डी. या चैक पुरोधा एवं अग्निशिखा के नाम ही भेजें, आश्रम के नाम नहीं।

६. पत्रिका के लिफाफे पर आपके पते के ऊपर आपकी ग्राहक-संख्या और शुल्क समाप्त होने की तारीख लिखी रहती है।

७. पत्रिका प्राप्त न होने की सूचना एक मास प्रतीक्षा के बाद अपने डाकखाने से जांच-पड़ताल कर हमें तुरन्त सूचित करें। देर से सूचना प्राप्त होने पर कई बार वह अंक भेजना सम्भव नहीं होता।

८. धैर्य से लिखें, अक्षर स्पष्ट हों यह जरूरी है।

पुरोधा हर महीने की १० तथा ११ तारीख को भेजी जाती है।
अग्निशिखा हर महीने की २५ तथा २६ तारीख को भेजी जाती है।

शुक्रवार २००५

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
 केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६९

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
 पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com

अग्निशिखा

36-4



Central

Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

Flower: Life energy

[Handwritten signature]
28/11/04

अखिल भारतीय पत्रिका

नवम्बर २००५

विषय-सूची

सन्देश

‘सम्पादकीय’ : सपनों से भरी टोकरी और
जागृत व्यक्ति (१)

श्रीमां

दैनन्दिनी

अनुबेन

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क :
अंधेरे में गोता

नीरदवरण

जीवन का एक उद्देश्य है :
(श्रीमां के वचन)

सत्य-आरोहण (नाटक)

अर्ध-चेतना में से कूदकर बाहर निकल आओ
पार्थिव जीवन प्रगति का स्थान है
प्रत्येक को एक भूमिका निभानी है
सोसायटी समाचार

१३

२८

३०

३४

३६

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ

पवित्रीकृत सक्रिय प्राण-ऊर्जा

अपनी पवित्रता में भव्य, अदम्य, सर्व-सशक्त।

वानस्पतिक नाम—Dendranthema Xgrandiflorum (सफेद)

धरती

ज्ञाति कर

अपनी

सवाद क

नव तुम

१९ फरव

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी — ६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वान्ने प्रति जागृहि

सन्देश

१३ धरती पर जीवन तत्त्वतः प्रगति का क्षेत्र है, लेकिन जो
२८ प्रगति करनी है उसके लिए जीवन कितना संक्षिप्त है !

३० अपनी तुच्छ कामनाओं को सन्तुष्ट करने में अपना समय
३४ बरबाद करना निरी मूर्खता है। सच्चा सुख तभी मिल सकता है
३७ जब तुम भगवान् को पा लो।

५ अर्थ १९ फरवरी १९७२

—श्रीमां

पेफेद)

२
पिंडचरी

‘सम्पादकीय’ :

सपनों से भरी टोकरी और जागृत व्यक्ति

(१)

हमने कई वर्षों तक छोटे-मोटे प्रलय, भूकम्प और भयंकर दुर्घटनाएँ देखीं, अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हां, कुछ छोटी-बड़ी गड़बड़ अभी तक हो रही हैं किन्तु साथ-साथ ऐसा भी लगता है मानों शुभ और अशुभ में शीत युद्ध हो रहा है। आजकल संसार में अप्रत्याशित शुभ के जो लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं उनसे शुभ का पलड़ा भारी लग रहा है। कारण यह है कि जिस शक्ति को माताजी ने १९५६ में उतारा था उस अतिमानस शक्ति के स्पर्श ने मनुष्यों पर अब कार्य करना शुरू कर दिया है। हम ऐसा इसलिए सोच पाते हैं क्योंकि हम ऐसे-ऐसे अपूर्व परिवर्तन देख रहे हैं जिनकी कभी किसी ने कल्पना तक नहीं की होगी। एक ऐसी घटना देखें।

मैंगलोर से ३५ कि. मी. दूर एक बहुत छोटा-सा गांव है। गांव का नाम है न्युपदपू, जिसमें लगभग पचास घर हैं। इस छोटे-से गांव में एक अनपढ़ फल बेचनेवाला एक बड़ा स्वप्न देखता रहता था। उसका नाम है हजब्बा, जो पन्द्रह वर्ष की उम्र से फल बेचने का काम करता है। हजब्बा का स्वप्न बहुत बड़ा था, वह क्या था? गरीब, लाचार हजब्बा अपने गांव में एक स्कूल खोलने का स्वप्न देख रहा था। है न आकाश से तारे तोड़ने जैसा काम?! किन्तु हजब्बा ने वह कर दिखलाया जिसकी बातें बड़े-बड़े अधिकारी करते जरूर हैं किन्तु पता नहीं, कर क्यों नहीं पाते!!! यह अदना-सा आदमी सुबह मस्जिद से अज्ञान की पुकार सुनते ही उठ जाता है,

नवम्बर २००५

अपने आंगन के पौधों को सींचता है। पत्नी और बच्चों को जगाकर नौ बजे तक सफेद धोती और कुर्ता पहनकर मण्डी में जाकर मौसमी फलों को अपनी टोकरी में भरकर बाजार की ओर चल पड़ता है। टोकरी खाली होते ही फिर उसे भरकर ले आता है और शाम तक वह क्रम चलता रहता है। घर लौटता है प्रायः गोधूलि वेला में। फल बचने के लिए अपने गांव से दूर हम्मन कट्टी के बस स्टैंड पर जाता था। सारे समय हजब्बा अपने सपने की बात ही सोचता रहता था। घर में पत्नी बीमार रहती थी और उसकी देख-भाल करने के लिए हजब्बा की बड़ी बेटा ने पढ़ाई छोड़ दी। आखिर हजब्बा ने निश्चय कर लिया कि अपने गांव में स्कूल खोलकर ही दम लेगा। उसने सरकारी अफसरों के पास दौड़-धूप करनी शुरू कर दी। अन्त में १९९९ में दक्षिण कन्नड़ ग्राम पंचायत ने न्युपदपू गांव में स्कूल खोलने की मंजूरी दे दी। जो भाग-दौड़ हजब्बा को करनी पड़ी उसके लिए वह अपनी जेब से खर्च करता रहा। स्कूल खोलने की राशि को तो उसने छाती से चिपकाये रखा। काफी सिर खपाने के बाद कमिश्नर से कुछ जमीन मिल गयी। चार वर्ष के बाद स्कूल बन गया, जिला पंचायत की सहायता से अब कमरों के अलावा पानी, बिजली और अच्छी सड़क भी बन गयी है।

और हजब्बा? वह क्या करता है? सुबह नौ बजे घर से निकलकर स्कूल के कमरों में झाड़ू लगाता है, बेंचों को पोंछ-पोंछ कर चमकाता है। हालांकि वह 'डेवलपमेंट कमिटी' का प्रेसिडेंट है लेकिन जनता के आग्रह के बावजूद वह चुनाव के लिए खड़ा होना नहीं चाहता। अपनी मातृभाषा तुलु में वह कहता है, "अगर तुम राजनीति में चले जाओ तो कोई विकास-कार्य नहीं होगा।" कन्नड़ प्रभा नामक पत्रिका ने हजब्बा को 'मैन ऑफ द इयर २००४' का विशेष व्यक्ति चुना है। इसके साथ-साथ उसे एक लाख रुपये का चैक भी दिया जायेगा।

जब हजब्बा की पत्नी मयमुना से कहा गया कि उसके पति को एक लाख रुपये का पुरस्कार मिलेगा तो उसने शान्त स्वर में कहा, "मेरा पति सारा धन स्कूल पर खर्च कर देगा। वह फल बेचना कभी नहीं छोड़ेगा।"

तो अब हजब्बा क्या करेगा? कहते हैं न "जिसको दिव्य असन्तोष अपनी बाहुओं में भर लेता है, उसे कभी सन्तोष न होगा।"

हजब्बा को अब बच्चों के लिए खेल का मैदान बनाने की धुन लग गयी है। स्कूल में १२१ बच्चे पढ़ते हैं और १ से ५वीं तक कक्षाएं चल रही हैं।

उसके खुद के घर में बिजली नहीं है, लेकिन इसकी उसे चिन्ता नहीं। वह स्कूल में बिजली लाने की पूरी कोशिश कर रहा है। अपना घर तो वह फल बेचकर जो लाता है उसी से चलाता है। (क्रमशः)

—अनुवेन

जीवन का एक प्रयोजन है।

यह प्रयोजन है भगवान् को खोजना और उनकी सेवा करना।

भगवान् दूर नहीं हैं, 'वे' हमारे अन्दर हैं, अन्दर गहराई में, भावनाओं और विचारों के ऊपर। भगवान् के साथ है शान्ति, निश्चिन्ता और साथ ही सभी कठिनाइयों का समाधान।

अपनी समस्याएं भगवान् को सौंप दो और 'वे' तुम्हें कठिनाइयों से बाहर निकाल लेंगे।

—श्रीमां

दैनन्दिनी

नवम्बर

१. तू है इसलिए मनुष्य अपने दुर्भाग्य के आगे नहीं झुकते, बल्कि सुख की मांग करते हैं और नियति से भिड़ जाते हैं। (सावित्री)
२. हे प्रभु, हे शाश्वत सत्य! वर दे कि हम केवल तेरी आज्ञा का पालन करें और सत्य के अनुसार ही जियें।
३. भौतिक द्रव्यों पर अधिकार का यह मतलब नहीं है कि चीजों की बहुतायत हो और उन्हें खुले हाथों फेंका जाये या वे जिस गति से आयें उसी गति से या उससे भी ज्यादा तेजी से बिगाड़ी जायें। अधिकार का अर्थ है चीजों का समुचित रूप से, सावधानी और आत्म-संयम के साथ उपयोग।
४. मिथ्यात्व के राज्य की समाप्ति का समय आ गया है। केवल सत्य में ही मुक्ति है।
५. केवल अहंकार ही दूसरों के अन्दर अहंकार देखकर विक्षुब्ध होता है।
६. निष्ठा सफलता का निश्चित आधार है।
७. हर एक में और सब में उच्चतम चेतना को जीवन का शासक होना चाहिये।
८. हर रोज जागते समय हम पूर्ण उत्सर्ग-भरे दिन के लिए प्रार्थना करें।
९. हम अपने हृदय से प्रार्थना करें कि भगवान् का कार्य सम्पन्न हो।
१०. हमें सतत अभीप्सा की स्थिति में रहना चाहिये, लेकिन जब हम अभीप्सा न कर सकें तो हम एक बालक की सरलता के साथ प्रार्थना करें।

११. हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखावें, अधिकाधिक बोध दें, हमारे अज्ञान को छिन्न-भिन्न करें, हमारे मनों को प्रकाश दें।
१२. मेरे प्रभु, मैं पूरी तरह और सचाई के साथ तेरी होऊँ।
१३. हे प्रभु, मेरे अन्दर तुझे जानने की उद्दीप्त कामना जगा। मैं अभीप्सा करता हूँ कि मेरा जीवन तेरी सेवा के लिए निवेदित हो।
१४. मैं सदा तेरे दिव्य पथ-प्रदर्शन का अनुसरण करूँ। वर दे कि मैं अपनी सच्ची नियति से अवगत रहूँ।
१५. हे प्रभु, मुझे समस्त दर्प से मुक्त कर; मुझे विनीत और सच्चा बना।
१६. हे प्रभु, बड़ी विनय के साथ मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपने प्रयास के शिखर पर रहूँ, कि मेरे अन्दर कोई भी चीज सचेतन या अचेतन रूप से, तेरे पवित्र उद्देश्य की सेवा करने में कोताही करके तेरे साथ विश्वासघात न करे।
गभीर भक्ति के साथ मैं तुझे प्रणाम करता हूँ।
१७. मैं समस्त अहंकारमय दुर्बलताओं और समस्त अचेतन कष्ट-कुटिलताओं से मुक्त किये जाने के लिए अभीप्सा करता हूँ।
१८. प्रभु, वर दे कि चीजों के बारे में मेरी दृष्टि स्पष्ट और तटस्थ हो और मेरे कार्य उसके द्वारा पूर्णतया रूपान्तरित हों।
१९. प्रभु, मेरे ऊपर यह कृपा कर कि मैं तुझे कभी न भूल पाऊँ।
२०. मेरे प्रभु, चेतना को स्पष्ट और यथार्थ बना, वाणी को पूरी तरह सच्चा बना, समर्पण पूर्ण हो, स्थिरता सम्पूर्ण; और सारी सत्ता को प्रकाश और प्रेम के सागर में रूपान्तरित कर दे।
२१. प्रभु, मुझे अपना आशीर्वाद दे ताकि मैं अधिकाधिक सच्चा बन सकूँ।

२२. दया
२३. याद
- उन्हें
- से ब
- "हे
- मेरे
- है।
- चाह
२४. अच
- में स
२५. प्रभु,
- एक
- सकें
२६. प्रभु,
- के
२७. परम
- शनि
२८. स्थि
- हैं उ
- कर
२९. तेरा
- जा
- जो
३०. सम

नवम्बर २००५

२२. दया के स्वामी, मुझे अपनी कृपा के योग्य बना।
 २३. याद रखो कि मां हमेशा तुम्हारे साथ हैं।
 उन्हें इस तरह सम्बोधित करो और वे तुम्हें सब कठिनाइयों में से बाहर निकाल लेंगी :
 “हे मां, तू मेरी बुद्धि का प्रकाश, मेरी अन्तरात्मा की शुद्धि, मेरे प्राण का स्थिर-शान्त बल और मेरे शरीर की सहनशक्ति है। मैं केवल तेरे ऊपर निर्भर हूँ और पूरी तरह तेरा होना चाहता हूँ। मार्ग की सभी कठिनाइयों से मुझे पार लगा।”
 २४. अचल शान्ति का रस लेने का एकमात्र उपाय है सभी परिस्थितियों में सदा वही चाहना जो तू चाहता है।
 २५. प्रभु, वर दे कि हमारे अन्दर चेतना और शान्ति बढ़ें, ताकि हम एकमेव दिव्य विधान के अधिकाधिक निष्ठावान् माध्यम बन सकें।
 २६. प्रभु, हमें मिथ्यात्व से मुक्त कर, हम तेरे सत्य में तेरी विजय के योग्य और शुद्ध होकर उभरें।
 २७. परम प्रभु, हमें नीरव रहना सिखा ताकि नीरवता में हम तेरी शक्ति पा सकें और तेरी इच्छा को समझ सकें।
 २८. स्थिर-शान्त और शुद्ध भक्ति के साथ हम तुझे नमस्कार करते हैं और तुझे अपनी सत्ता की एकमात्र सद्रस्तु के रूप में स्वीकार करते हैं।
 २९. तेरा हृदय मेरे लिए परम आश्रय है जहां हर चिन्ता शान्त हो जाती है। कृपा कर कि यह हृदय पूरा खुला रहे ताकि वे सब जो यातना में हैं, परम आश्रय पा सकें।
 ३०. समस्त हिंसा को शान्त कर दे, तेरा प्रेम ही राज्य करे।

—‘श्रीमातृवाणी’ खण्ड १५ से

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क अंधेरे में गोता

जैसे ही हमलोग चिट्टगांव पहुंचे, रंगून के मेरे एक सम्बन्धी का तार आया। उसमें उन्होंने लिखा था कि रंगून में एक सरकारी नौकरी अभी-अभी खाली हुई है। अगर मैं जल्द आवेदन भेजूं तो नौकरी मेरी ही समझ लो। अब मैं दुविधा में पड़ गया क्योंकि मैंने तो माताजी से कहा था कि अपनी डॉक्टरी 'प्रैक्टिस' अपने जन्मस्थान में ही रहकर करूंगा। नियति ने उलटा ही निर्णय लिया और मैं सागर की सैर करता हुआ बर्मा की ओर चल पड़ा। वह नौकरी तो मुझे नहीं मिली किन्तु बिन मांगे, एक और नौकरी अप्रत्याशित रूप से सामने आ गयी। रंगून के मेडिकल कॉलेज के प्रोफेसर से शिष्टता के नाते मिलने गया। वे भी मेरी तरह एडिनबर्ग के स्नातक थे और उनकी डिग्री भी ऊंची यानी आई. एम. एस. की थी। उन्होंने मुझे कहा कि एक नौकरी अभी-अभी खाली होने जा रही है। उन्होंने मुझे आवेदन-पत्र भेजने के लिए कहा। इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे अपनी ओर से सिफारिशी पत्र देकर अफसरों के पास भी भेजा। और एक बार वे मेरे पते पर स्वयं मुझे ढूंढ़ने भी आये थे। इस सबका नतीजा यह हुआ कि नौकरी मानों स्वयं मेरे बैठकखाने में चली आयी और मैं बड़े आराम से वहां बस गया। हालांकि 'बर्मा नेशनल मिनिस्ट्री' ने मुझे उस नौकरी से डिगाने की भी कोशिश की, लेकिन मेरे संरक्षक मित्र ने मुझे बचा लिया। उन्होंने मेरे अफसर से मेरा बचाव यह कहकर किया कि इस नौकरी के लिए विदेशी डिग्री-प्राप्त व्यक्ति को पाकर अफसर ही भाग्यवान् था। घटना-चक्र को यूं तेजी से बढ़ते हुए देखकर मैं भौचक्का रह गया और मुझे ऐसा लगा मानों कोई

शक्ति-विशेष
स्वभाव ने
करनेवाली
शक्ति में पा
ने न जाना
किन्तु निरि
आरामदेह
वातावरण
सकता है।
को ही जा
और बिल
की बात
मैंने आश्र
साथ सम्ब
भाटे में र
'कॉनवरस
नामक पु
नाम लिख
था। यह
गया। सो
रखा; इस
मानों एव
गहरे नहीं
एकाध व
आयी।
भी अभि

नवम्बर २००५

शक्ति-विशेष मेरे जीवन का सञ्चालन कर रही हो। मेरे मूर्ख भौतिक स्वभाव ने बहुत देर के बाद यह समझा कि इस चमत्कार को साधित करनेवाली शक्ति थी माताजी की शक्ति। यह वैसा ही था जैसा इस शक्ति में पाया जाता है, “एक दिव्य शक्ति कार्यरत थी, किन्तु किसी ने न जाना कि वह आयी कहां से।” उस समय मैं समृद्ध तो न था किन्तु निश्चित नौकरी और थोड़ी निजी ‘प्रेक्टिस’ ने जीवन को आरामदेह तो बना ही दिया था। धीरे-धीरे मैं रंगून के वर्णसंकर वातावरण में बहने लगा जिसको एक शब्द में विषयासक्त कहा जा सकता है। मैंने देखा कि वहां के लोग केवल प्रतिष्ठा और समृद्धि को ही जानते थे। मैं भी उनके ताल में ताल मिला कर चलने लगा और बिल्कुल भूल गया कि कभी पॉण्डिचेरी गया भी था। कर्मयोग की बात तो दूर रही मैं पूरा-पूरा भोगविलास में बहता चला गया। मैंने आश्रम से कोई सम्बन्ध नहीं रखा किन्तु मेरी भतीजी ने मेरे साथ सम्बन्ध बनाये रखा था, और मैं? मैं तो उस जीवन के ज्वार-भाटे में डूबता-उतराता गया। ऐसे समय हठात् मेरे पास एक दिन ‘कॉन्वरसेंशंस विद द मदर’ (Conversations with the Mother) नामक पुस्तक आयी। उस पुस्तक पर माताजी के हस्तलेख में मेरा नाम लिखा हुआ था और माताजी के हाथ से लिखा ‘आशीर्वाद’ भी था। यह देखकर मैं आश्चर्यविभोर और साथ-साथ द्रवित भी हो गया। सोचा, मैं तो माताजी को भुला बैठा था किन्तु उन्होंने मुझे याद रखा; इस तथ्य ने मुझ पर एक नया प्रकाश डाला। मेरे कवच में मारो एक छोटी-सी दरार पड़ गयी थी किन्तु उसकी “जड़ें अभी तक गहरे नहीं गयी थीं”। फिर से मेरा जीवन पुराने ढर्रे पर चलता रहा। एकाध वर्ष के बाद पुलिस हठात् मेरे घर पर तलाशी के लिए उतर आयी। उन्हें श्रीअरविन्द के उस सन्देहात्मक पत्र के सिवा और कुछ भी अभियोग के योग्य सामग्री नहीं मिली। पत्र को पुलिस हथिया ले

गयी, वह मेरे लिए हमेशा के लिए खो ही गया। उस दिन से मेरे दिन बदल गये। ऐसा लगा मानों नियति ने मुझसे अपना मुंह मोड़ लिया। बर्मा सरकार ने मुझे सूचना दी कि मेरी नौकरी की अवधि केवल छह महीनों की बची है, हालांकि मैं जानता था कि मेरी सेवा का अनुबन्ध तीन वर्ष के लिए था। खैर, मैं क्या करता? पढ़ते ही मुझ पर वज्रपात हुआ, लेकिन कुछ समय बाद वही आशीर्वाद सविता हुआ। ऐसी अबूझ घटना के दोहरे रूप में भगवान् का ही हाथ होगा। अगर यह घटना न हुई होती तो निश्चित रूप से मैं जिस खतरनाक दिशा में जा रहा था वह मुझे घसीटती हुई सीधी रसातल तक ले जाती। मेरे ऊंचे ओहदे ने मेरे सिर को चकरा दिया था, तो जब वहां से मेरा पतन हुआ तो मैं न जाने कितनी चकराहट में खा गया।

मेरी सुरक्षित नौकरी जितनी तेजी से आयी थी हठात् उतनी ही तेजी से छूट गयी। मैं उतावली में पीछे कदम रखता हुआ कलकत्ते की ओर चला गया। मुझे लगा मानों 'सर्स' के सम्मोहनभरे द्वीप (जादूगरों का द्वीप) को छोड़ कर पिटा हुआ, घायल मैं अपनी जन्मभूमि पर जा पहुंचा। कलकत्ते में नौकरी के लिए प्रायः छह महीनों तक इधर-उधर दौड़-धूप करने के बाद मजबूर होकर चिट्टगांव चला गया। माताजी के साथ अपने पहले साक्षात्कार के समय मैंने यही कहा था न कि अपनी जन्मभूमि में 'प्रेक्टिस' करूंगा! कलकत्ते में एक सरकारी नौकरी मेरे हाथ में आते-आते रह गयी, कारण यह था कि नौकरी में अन्तिम चुनाव के समय पुलिस मेरे घर पर तलाशी लेने आ पहुंची थी। शायद रंगून के पुलिस-विभाग ने उन्हें संकेत दे दिया होगा। पुलिस की रिपोर्ट ने मुझे आजीवन सरकारी नौकरी से बचा लिया और श्रीअरविन्द आश्रम का रास्ता मेरे लिए खोल दिया। अगर मैं दावा करूं कि मेरा भविष्य पूर्व-निर्धारित था तो बात गलत न होगी। वैसे पुलिस तो मेरा पीछा तब से करती आयी थी जब से मैंने कॉलेज

नवम्बर २००५

छोड़ा था क्योंकि मैं असहयोग-आन्दोलन में भाग ले चुका था।
 चिट्ठागांव का वातावरण मेरे लिए काफी अनुकूल था। मुझे ऐसे
 मित्र मिले जिनका आश्रम से सम्पर्क था। अब तक मेरी भतीजी
 आश्रमवासी बन चुकी थी। फिर से मेरा माताजी के साथ सम्बन्ध
 उसके द्वारा शुरू हुआ। वह मुझे चिट्ठी लिखा करती और माताजी के
 आशीर्वाद भी भेजा करती थी। जब सम्भव होता, मैं माताजी को
 अपनी ओर से कुछ-न-कुछ अर्पण करता रहता। इस तरह अल्पकालिक
 झंझावाती जीवन-शैली के बाद मेरे अन्दर एक निश्चित परिवर्तन आने
 लगा। भौतिक रूप से मुझे बहुत कष्ट झेलने पड़े किन्तु मुझे लगा कि
 मैंने अपनी आत्मा को पुनः प्राप्त कर लिया है। मेरी आत्मा एक
 बालक के जैसी थी, मेरा प्राणिक स्वभाव “मांस के टुकड़ों” के लिए
 चिल्लपों कर रहा था। इस कारण मैं एक से अधिक बार मुंह बाए गत
 के किनारे तक पहुंच गया, फिर भी मुझे वापिस खींच लाया गया था।
 एक घटना अभी तक मेरे सामने ताज़ा है। मैं एक ऐसे घिनौने सम्बन्ध
 में इतनी बुरी तरह फंस गया था कि उससे भाग निकलने का कोई
 उपाय मुझे सूझ न पड़ता था। मैं ऐसी नीच शक्ति के चंगुल में फंस
 गया था कि मेरे अन्दर उसका विरोध करने की न शक्ति थी और न
 उत्साह ही था। मेरी ऐसी नाज़ुक स्थिति में माताजी ने मेरी भतीजी की
 ओर से मुझे एक गुलाब भेजा जब कि मैंने मांगा न था। उस गुलाब
 के अन्दर क्या था यह मैं न जानता था और न मुझे उसे पाकर कोई
 बहुत विशेष अनुभूति ही हुई, हां, फिर भी उस गुलाब को पाकर मेरे
 अन्दर शक्ति और दृढ़ता का सञ्चार जरूर हुआ। एक ही झटके में
 मैंने अशुभ राक्षसी शक्ति को गिरा दिया। यह माताजी के आशीर्वाद-
 पुष्प की चमत्कारिक शक्ति का मेरा पहला अनुभव था। मेरे जैसा
 संशयवादी भी उसे नकार न पाया। इस घटना के बाद आध्यात्मिकता
 के स्वांग में एक नया और अधिक सूक्ष्म खतरा मेरे लिए अपना जाल

फैलाने लगा। मेरा पुराना मित्र चांद मेरे ही शहर में रहता था। वह बीमारी का नाम लेकर चिकित्सा कराने के लिए एक अर्धेड़ स्त्री को मेरे पास लाया। कुछ समय बाद उसी स्त्री को आध्यात्मिक जिज्ञासु के रूप में लाया। उस स्त्री ने अपने परिवार को छोड़ दिया था और ऐसे स्थान की खोज में थी जहां वह “बिना किसी बाधा के अपनी साधना कर पाती।” एक तरह से भोला, सरल होने के नाते मैं उसको सहायता देने के लिए लगभग तैयार हो गया। इस समय भी एक विचित्र घटना ने हस्तक्षेप किया। मेरी भतीजी की इस तरह की चिट्ठी आयी, “आप अपना अमूल्य समय बरबाद कर रहे हैं। माताजी और श्रीअरविन्द आपकी प्रतीक्षा कबतक करते रहेंगे? क्या आपको अबतक आश्रमवासी बन कर यौगिक जीवन न अपना लेना चाहिये?” मुझे बाद में पता लगा कि मेरे पास चिट्ठी भेजने से पहले भतीजी ने वह श्रीअरविन्द के पास भेजी थी या किसी ने चिट्ठी उन्हें पढ़कर सुनायी थी। जिस दिन चिट्ठी आयी उसी दिन से वह पत्र मानों मेरे पीछे ही पड़ गया। आहिस्ता-आहिस्ता उस चिट्ठी का प्रभाव बढ़ने लगा और संसार का सम्मोहन छूटने लगा, संसार एकदम फीका-फीका दीखने लगा, मानों लवण ने अपना स्वाद खो दिया हो। मैं अपने-आपको दर्शन के लिए अनुमति की चिट्ठी लिखने से रोक न पाया और सोचा कि अगर अनुमति मिल गयी तो वापिस लौटकर आऊंगा ही नहीं। अनुमति का पत्र आ गया और एक दिन चुपचाप अपनी गरीब मां को भी बताये बिना मैं घर से निकल गया। मैंने प्रस्थान किया १९३३ की फरवरी में, ठीक तीन वर्ष बाद जब मैंने पहली बार १९३० की फरवरी में दर्शन किये थे। काफी समय बाद मुझे पता लगा कि चांद जिस स्त्री को मेरे पास लाया था उसमें जालसाज़ी थी। मैं आध्यात्मिकता के नाम से प्रभावित होकर अनजाने में गर्त में गिरने जा रहा था। उस स्त्री के परवर्ती जीवन ने मेरे संशय को सही साबित कर दिखाया।

—नीरदवरण

जीवन का एक उद्देश्य है

(श्रीमां के वचन)

सत्य-आरोहण

एक प्रस्तावना, सात पड़ाव और
एक उपसंहार के साथ जीवन का नाटक

पात्र :

लोक-सेवक

निराशावादी

वैज्ञानिक

कलाकार

तीन विद्यार्थी

दो प्रेमी

संन्यासी

दो साधक

प्रस्तावना : चित्रकार की चित्रशाला में, प्रारम्भिक गोष्ठी।

आरोहण के सात पड़ाव, और सातवां पड़ाव शिखर पर होगा।

उपसंहार : नयी दुनिया।

प्रस्तावना

चित्रकार की चित्रशाला में

(सान्ध्यवेला, 'सत्य' की खोज में लगे समान अभीप्सा में सम्मिलित
दल की बैठक के अन्त में।

उपस्थित :

सद्भावनापूर्ण मनुष्य, लोक-सेवक।

निराशावादी जिसका मोह भंग हो गया है। वह अब धरती पर सुख की सम्भावना को नहीं मानता।

वैज्ञानिक जो प्रकृति की समस्याओं को हल करने की कोशिश में है।

कलाकार जो अधिक सुन्दर आदर्श के सपने लेता है।

तीन विद्यार्थियों का दल (दो लड़के, एक लड़की) जिन्हें अधिक अच्छे जीवन पर और अपने ऊपर विश्वास है।

दो प्रेमी जो मानव प्रेम में पूर्णता की खोज कर रहे हैं।

संन्यासी जो 'सत्य' की खोज के लिए किसी भी तपस्या के लिए तैयार है।

दो साधक जिन्हें समान अभीप्सा ने इकट्ठा कर दिया है। उन्होंने 'अनन्त' को चुना है क्योंकि 'अनन्त' ने उन्हें चुन लिया है।)

(परदा उठता है।)

कलाकार—प्यारे दोस्तो, अब हमारी सभा विसर्जित होने को है।

इससे पहले कि हम समाप्त करें और अपने संगठित कार्यक्रम के बारे में कुछ संकल्प लें, मैं आप लोगों से फिर से यह जान लेना चाहता हूँ कि क्या आप अपने पहले वक्तव्य में और कुछ जोड़ना चाहते हैं?

लोकसेवक—हां, मैं फिर से कहना चाहता हूँ कि मैंने अपना सारा जीवन लोक-सेवा के लिए समर्पित कर दिया है; मैंने बरसों तक सभी परिचित और सम्भव पद्धतियों को अपनाकर देखा, परन्तु कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला और अब मुझे विश्वास हो गया है कि यदि मैं अपने काम में सफलता चाहूँ तो मुझे 'सत्य' की खोज करनी होगी। सचमुच, जबतक जीवन के सच्चे अर्थ का ही पता न हो तबतक मनुष्य की सार्थक रूप से सहायता

नवम्बर २००५

कैसे की जा सकती है? इस बीच जो कुछ उपचार किये जायें वे ऊपरी मरहम-पट्टी होंगे—सच्चे इलाज नहीं हो सकते। केवल 'सत्य' की चेतना ही मानवजाति का उद्धार कर सकती है।

निराशावादी—मैंने जीवन में बहुत दुःख झेले हैं। मैं बहुत-सी भ्रान्तियों में पड़कर निराश हुआ हूँ, कितने अन्याय सहे हैं, कितनी मुसीबतें उठायी हैं। अब मुझे किसी पर विश्वास नहीं रहा, जगत् से या मनुष्य से कोई आशा नहीं रही। अब केवल एक आशा बच गयी है और वह है 'सत्य'-सन्धान की—लेकिन वह भी तभी जब उसे पा लेना सम्भव हो।

पहला साधक—आप लोग हम दोनों को एक साथ देख रहे हैं क्योंकि एक ही अभीप्सा हमारे जीवन को एक-दूसरे के निकट ले आयी है; हमारे अन्दर शरीर या प्राण का भी कोई आकर्षण नहीं है। हमारे जीवन में बस, एक ही धुन है : वह है 'सत्य'-सन्धान की। एक प्रेमी—(साधक-साधिका की ओर देखकर) लेकिन हम दोनों इन दो बन्धुओं से बिलकुल उलटे हैं, (अपनी प्रिया का आलिंगन करते हुए) हमारा जीवन एक-दूसरे के लिए, और एक-दूसरे के आधार पर खड़ा है। पूर्ण मिलन ही हमारी सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा है, हमारे दो शरीर हों, पर दोनों में सत्ता एक ही हो, हमारे विचार, हमारी इच्छाएं, हमारी भावनाएं एक हों; दो सीनों में एक ही सांस चले और दो हृदयों में एक ही धड़कन हो। हमारे हृदय प्रेम के द्वारा, प्रेम में और प्रेम के लिए ही जीवित हैं। हम प्रेम के सम्पूर्ण सत्य को खोजना चाहते हैं : हमने अपना जीवन इसी के लिए समर्पित कर दिया है।

संन्यासी—लेकिन मुझे नहीं लगता कि 'सत्य' इतनी आसानी से पाया जा सकता है। जो पथ हमें 'सत्य' तक ले जायेगा वह कठोर, कगार जैसा ढलुआं, नाना प्रकार की विपत्तियों, आपदाओं और

भयंकर भ्रान्तियों से भरा होगा। इन सब विपदाओं को पार करने के लिए अटल संकल्प-शक्ति और इस्पात की नाड़ियों की जरूरत है। मैंने जो महान् लक्ष्य अपने सामने रखा है, उसको पाने के लिए, उसके योग्य बनने के लिए सब प्रकार का त्याग, सब प्रकार की तपस्या करने और सब प्रकार का घोर कष्ट सहने को मैं तैयार हूँ।

कलाकार—(सबकी ओर देखकर) आप लोगों को और कुछ तो नहीं कहना है? नहीं। तो हम लोग एकमत हैं : हम लोग एक साथ मिल-जुलकर 'सत्य' की ओर सिर उठाये हुए इस पुनीत पर्वत पर चढ़ने का प्रयास करेंगे। यह काम बड़ा कठिन और श्रमसाध्य है, परन्तु है करने योग्य, क्योंकि उसकी चोटी पर पहुंचने से 'सत्य' के दर्शन होंगे और सभी समस्याएं आवश्यक रूप से हल हो जायेंगी।

तो हम लोग कल पहाड़ की तलहटी में मिलेंगे और एक साथ चढ़ना शुरू करेंगे। अच्छा, अब नमस्कार, कल फिर मिलेंगे।

(सब "फिर मिलेंगे" कहकर चले जाते हैं।)

आरोहण के सात पड़ाव

पहला पड़ाव

(पहाड़ के ऊपर हरी-भरी समतल भूमि, वहां से नीचे तलहटी का दृश्य अच्छी तरह दिखायी देता है। अभी तक रास्ता चौड़ा और सहज था, अब अचानक संकरा हो उठता है और बाईं ओर की ऊंची-ऊंची चट्टानों पर चक्कर लगाता हुआ आगे बढ़ता है।)

सब सामर्थ्य और उत्साह से भरे हुए एक साथ पहुंचते हैं। सबने नीचे तलहटी पर निगाह डाली। लोक-सेवक के इशारे पर सब नजदीक आते हैं।)

नवम्बर २००५

लोक-सेवक—मित्रो, मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। मुझे कुछ गम्भीर बातें कहनी हैं। (सब चुपचाप ध्यानपूर्वक सुनते हैं।)

हम बड़ी खुशी-खुशी, आराम से, एकसाथ इस उच्च भूमि तक चढ़ आये हैं। यहां से हम जीवन को देख सकते हैं, उसकी समस्याओं को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं और मनुष्य के दुःखों के कारण को भी समझ सकते हैं। हमारा ज्ञान अधिक विस्तृत और गहरा हो गया है और मैं जो हल ढूंढना चाहता था उसे हम पा सकते हैं। (मौन)

लेकिन अब हम एक नये मोड़ पर आ पहुंचे हैं जहां एक निश्चय करना होगा। आगे और भी खड़ी और कठिन चढ़ाई है। इस पर तुरा यह कि हम पहाड़ के उस ओर चले जायेंगे जहां से नीचे वादी को और मनुष्यों को देख भी न सकेंगे। इसका मतलब यह है कि मुझे अपना काम छोड़ देना होगा और मानव-सेवा के व्रत को तोड़ देना होगा। अब मुझे अपने साथ रहने के लिए न कहिये; आप लोगों को छोड़कर मुझे अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए जाना ही होगा।

(वह नीचे की ओर उतरता है। सब जरा विस्मय और निराशा के साथ एक-दूसरे की ओर देखते हैं।)

संन्यासी—बेचारा मित्र! नीचे की ओर चल पड़ा, कर्तव्य की आसक्ति, बाह्य जगत् के बाह्य रूपों की मोहमाया ने उसे जकड़ लिया। किन्तु हमारे उत्साह में रक्ती-भर कमी न आनी चाहिये; हम किसी खेद या दुविधा के बिना अपने रास्ते पर बढ़ते चलें।

(सब आगे बढ़ते हैं।)

दूसरा पड़ाव

(रास्ते का हिस्सा, एक और सीधी चढ़ाई। रास्ता समकोण पर

धूम जाता है जिससे यह नहीं मालूम होता कि किधर जा रहा है। नीचे, लम्बे, सफेद, बहुत घने बादल ने इस हिस्से को दुनिया से बिल्कुल अलग कर दिया है।

निराशावादी को छोड़कर सब न्यूनाधिक आनन्द में चले जा रहे हैं। निराशावादी सबसे पीछे, पांच घसीटता हुआ आ रहा है, आखिर रास्ते के किनारे एक ऊंची-सी जगह देखकर बैठ जाता है। अपने सिर को दोनों हाथों में लेकर वह गुमसुम बैठा ही रहता है। औरों ने यह देखा कि वह पीछे-पीछे नहीं आ रहा है तो सब पीछे की ओर मुड़े। छात्र ने लौटकर उसके कन्धे पर हाथ रखा।)

छात्र—अरे भई, क्या हुआ? बात क्या है? थक गये क्या?

निराशावादी—(उसे पीछे हटाते हुए) नहीं, मुझे छोड़ दो। मुझे छोड़ दो। बहुत हो चुका, और नहीं चाहिये! यह असम्भव है।

विद्यार्थी—लेकिन बात क्या है? चलो, उठो, हिम्मत से काम लो!

निराशावादी—नहीं, नहीं, मैं तो कह चुका, मुझसे कुछ न होगा। यह मूर्खतापूर्ण और असम्भव दुःसाहस का काम है। (पैरों तले बादल दिखाकर) देखो देखो! हम संसार से और जीवन से एकदम बिछुड़ गये हैं। अब समझने के लिए आधार-स्वरूप कुछ नहीं रहा, कुछ भी नहीं रहा।

(फिर मुड़कर रास्ते के मोड़ की ओर देखता है।) और इधर देखो! यह भी पता नहीं लगता कि हम किधर जा रहे हैं! सारी चीज ही निरर्थक या भ्रान्तिपूर्ण—या शायद दोनों—है! आखिर, शायद खोजने-योग्य कोई 'सत्य' है भी नहीं। यह जगत् और यह जीवन एक नरक है जिसमें से निकलने का कोई रास्ता नहीं, हम उसमें बन्दी बने हुए हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो आगे बढ़ते जाओ, लेकिन मैं तो अब टस-से-मस न होऊंगा, मैं और अधिक

नवम्बर २००५

बेवकूफ नहीं बनना चाहता !

(फिर से दोनों हाथों में सिर रख लेता है। विद्यार्थी उसे समझा सकने की आशा छोड़ देता है, देर होने के डर से उसे अपनी निराशा के साथ छोड़कर औरों के साथ चढ़ने लगता है।)

तीसरा पड़ाव

(वैज्ञानिक और कलाकार दल में सबके पीछे चले आ रहे हैं, मानों बातों के कारण पीछे रह गये हैं। बातचीत का अन्तिम भाग।)

वैज्ञानिक—हां, जैसा मैं कह रहा था, मुझे लगता है कि हम ज़रा हल्के-फुल्के भाव से, गम्भीरता के बिना ही इस अभियान पर चल पड़े हैं।

कलाकार—यह तो ठीक है कि अभीतक हमारी चढ़ाई काफी निष्फल-सी रही है। मैं यह नहीं कहता कि हमें बहुत-सी चित्ताकर्षक वस्तुओं को देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन ये सब चीजें बहुत लाभदायक नहीं निकलीं।

वैज्ञानिक—हां, मुझे तो अपनी ही पद्धति पसन्द है—हमारी विधि ज्यादा युक्तियुक्त है। वह निरन्तर परीक्षण पर आधारित है और मैं पहले कदम की सत्यता के बारे में निश्चित प्रमाण पाये बिना दूसरा कदम आगे नहीं बढ़ाता। चलो, हम अपने साथियों को जरा आवाज़ दे लें—मुझे उनसे कुछ कहना है। (आवाज़ देकर और हाथ के इशारे से सबको पास बुलाकर वैज्ञानिक उन्हें सम्बोधित करता है।)

मेरे प्यारे मित्रो और एक ही पक्ष के साथियो, हम जगत् से और उसकी कठोर वास्तविकता से जितनी दूर होते जा रहे हैं, उतना ही मुझे लग रहा है कि हम बचकाने काम में लगे हैं। हमें

यह बोध दिया गया था कि यदि हम इस सीधी चढ़ानवाले पहाड़ की चोटी तक चढ़ सकें—जहां अभीतक कोई नहीं पहुंच पाया है—तो हम 'सत्य' को पा लेंगे—और हम रास्ते के बारे में जानकारी प्राप्त किये बिना मुंह उठाकर चल पड़े। कौन कह सकता है कि हम रास्ते में भटके नहीं हैं? कौन विश्वास के साथ कह सकता है कि हमें आशा के अनुसार ही फल मिलेगा? मुझे लगता है कि हमने अक्षम्य चञ्चलता के साथ काम किया है और हमारा यह प्रयास बिल्कुल अवैज्ञानिक है। मुझे बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मैंने यहीं रुकने का निश्चय किया है। आप लोगों के साथ मेरी मैत्री अक्षुण्ण बनी रहेगी, परन्तु मैं यहीं रुककर समस्या का अध्ययन करूंगा और यदि सम्भव हो तो निश्चित रूप से यह पता लगाऊंगा कि कौन-से रास्ते से आगे बढ़ना चाहिये, सही रास्ते से, जिससे हम लक्ष्य तक अवश्य जा पहुंचें।

(थोड़ी देर के बाद) इसके अतिरिक्त, मुझे यह विश्वास हो गया है कि यदि मैं पृथ्वी की किसी मामूली-से-मामूली चीज की रचना का पूरा रहस्य जान लूं, उदाहरण के लिए, रास्ते के इस तुच्छ पत्थर के रहस्य को भी जान लूं तो उसी से मैं उस 'सत्य' को भी पा सकूंगा जिसकी हमें खोज है। अच्छा, तो फिर मैं यहीं ठहरूंगा और आप सबसे कहूंगा : "पुनर्दर्शनाय"—हां, मैं सचमुच "पुनर्दर्शनाय" (फिर मिलेंगे) कह रहा हूं, क्योंकि मैं आशा करता हूं कि या तो आप लोग मेरे और मेरी वैज्ञानिक पद्धति के लिए यहां लौट आयेंगे, या मैं जिस चीज की खोज में हूं उसे पाकर आप लोगों को खुशखबरी देने वहां आ जाऊंगा। कलाकार—मैं भी आप लोगों का साथ छोड़ने की सोच रहा हूं। मेरा और हमारे वैज्ञानिक मित्र का कारण एक तो नहीं है, पर है

उतना ह
इस
मैंने नय
के एक
अदम्य
भौतिक
सबके
जगत्
तो
जबतव
मैं यहीं
बाद,
पहुंचे
अ

विद्यार्थिनी
बिगड़
अपन
कोई
धैर्य

योथा
(स)

नवम्बर २००५

उतना ही ज़ोरदार।

इस मनोरम चढ़ाई में, मैंने बहुत-से अनुभव प्राप्त किये हैं : मैंने नये सौन्दर्य को देखा है; या यूँ कहें कि मेरे अन्दर सौन्दर्य के एक नये बोध का प्रादुर्भाव हुआ है। साथ ही, एक तीव्र और अदम्य इच्छा उत्पन्न हो रही है कि मैं अपनी अनुभूतियों को भौतिक रूप दूँ, उन्हें 'जड़-तत्त्व' के अन्दर उतार लाऊँ, ताकि वे सबके शिक्षण में सहायक हो सकें और विशेष रूप से यह भौतिक जगत् आलोकित हो उठे।

तो, बड़े दुःख के साथ आप सबसे अलग हो रहा हूँ, और जबतक अपनी नूतन अनुभूतियों को मूर्त रूप न दे लूँगा तबतक मैं यहीं रहूँगा। मुझे जो कुछ करना है उसे साकार कर चुकने के बाद, मैं फिर से चढ़ाई आरम्भ कर दूँगा और आप लोग जहाँ जा पहुँचे होंगे वहीं आ मिलूँगा और नवीन खोज में लग जाऊँगा।

अच्छा, तो आप चलिये, आपका मार्ग शुभ हो।

(सब लोग एक-दूसरे को जरा दुःख के साथ देखते हैं। विद्यार्थिनी कह उठती है :)

विद्यार्थिनी—इस प्रकार के पथ-त्याग से हमारा कुछ नहीं बनता-बिगड़ता! हर व्यक्ति अपनी नियति के अनुसार चलता है और अपनी प्रकृति के अनुसार काम करता है। हमें अपने अभियान में कोई नहीं रोक सकता। चलो, जरा भी थके बिना, साहस और धैर्य के साथ हम लोग अपने रास्ते पर बढ़ें।

(वैज्ञानिक और कलाकार को छोड़कर सब आगे बढ़ते हैं।)

चौथा पड़ाव

(साधक, साधिका और संन्यासी बिना रुके निश्चित और स्थिर

गति से आगे बढ़ते जाते हैं।

उनके पीछे प्रेमी-युगल हैं। हाथ में हाथ डाले, बिना किसी की परवाह किये अपने-आपमें मस्त चले जा रहे हैं।

सबके पीछे तीन विद्यार्थी हैं, देखने में थके हुए लगते हैं। वे रुकते हैं।)

पहला विद्यार्थी—उफ ! भाई, क्या चढ़ाई है यह ! बाप-रे-बाप ! क्या रास्ता है ! बस, चढ़ते ही जाओ, चढ़ते ही जाओ, कहीं रुकने का नाम ही नहीं—दम लेने की भी फुरसत नहीं। मैं तो अब थक चला।

विद्यार्थिनी—यह भी कोई बात है भला ! तुम भी हमें छोड़ जाना चाहते हो ? यह भी कोई भद्रता हुई !

पहला विद्यार्थी—अरे नहीं, नहीं, छोड़ने का सवाल नहीं है। लेकिन क्या हम थोड़ा आराम भी नहीं कर सकते ? जरा बैठकर दम भी नहीं ले सकते ? ओह, पैर मन-मन भर के हो रहे हैं ! जरा-सा आराम कर लेने से अधिक अच्छी तरह चढ़ा जायेगा। अच्छा, अब जरा दया करो और थोड़ा बैठ जाओ, सिर्फ थोड़ी ही देर के लिए। उसके बाद हम फिर चल पड़ेंगे, तब देखना कैसी तेज़ी से चढ़ा जायेगा !

दूसरा विद्यार्थी—अच्छा। हम तुम्हें यहां पड़े-पड़े उदास होने के लिए अकेले नहीं छोड़ देंगे। इसके अतिरिक्त, मुझे भी तो थोड़ी-सी थकान लग रही है। आओ, सभी थोड़ी देर बैठ लें और रास्ते में जो कुछ देखा-सीखा है उसकी बातचीत करें।

विद्यार्थिनी—(क्षण-भर हिचकिचाकर वह भी बैठ जाती है।) चलो, यही सही। तुम्हारा साथ नहीं छोड़ना चाहती, इसीलिए। लेकिन ज्यादा देर न बैठना। रास्ते में देर करना हमेशा खतरनाक होता है।

नवम्बर २००५

(प्रेमी और प्रेयसी मुड़कर देखते हैं कि ये तीनों बैठ गये, फिर आगे चल पड़ते हैं।)

पंचवां पड़ाव

(स्थान बहुत ऊंचा है। रास्ता और भी संकरा है, क्षितिज बहुत विशाल हो गया है। नीचे, घने सफेद बादलों के कारण वादी अब भी दिखाई नहीं देती। बायीं ओर, रास्ते से जरा हटकर, एक छोटा-सा मकान है जिसके सामने खुला आसमान है। पहले तीन बिना रुके आगे बढ़ गये। उनके पीछे गलबहियां किये, अपने ही स्वप्नों में मस्त प्रेमी-युगल आते हैं।)

प्रेयसी—(एकान्त देखकर) वाह, और कोई नहीं...। हम अकेले हैं। लेकिन दूसरों की क्या परवाह! हमें उनकी जरूरत नहीं—हम एक-दूसरे के साथ कितने खुश हैं!

प्रेमी—(रास्ते के पास का मकान देखकर) देखो तो, प्रिये, ढाल पर यह छोटा-सा मकान, कितना सुनसान, फिर भी कितना मनोरम, कितना अन्तरंग, पर फिर भी अनन्त आकाश की ओर खुला हुआ है। ऐसा लगता है मानों खास हमारे लिए ही बना हो। हमें और क्या चाहिये? हमारे मिलन के लिए यह आदर्श-स्थान है। क्योंकि हम दोनों ने पूर्ण, अखण्ड मिलन प्राप्त कर लिया है जिसमें परछाई या बादलों का भी स्थान नहीं है। जो चढ़ रहे हैं उन्हें उस अनिश्चित 'सत्य' की ओर चढ़ते रहने दो—हम दोनों को तो अपना सत्य मिल ही गया। हमारे लिए यही काफी है।

प्रेयसी—हां, प्रियतम। चलो, जाकर इस मकान में डेरा डालें और अपने प्रेम का रसास्वादन करें। और किसी की क्या परवाह!

(दोनों एक-दूसरे के गले में बांहें डाले ही मकान की ओर बढ़ जाते हैं।)

छठा पड़ाव

(रास्ते का अन्त बहुत अधिक संकरा हो गया है और अचानक एक बड़ी चट्टान के आगे रुक जाता है। चट्टान सिर उठाकर सीधे आकाश से बातें कर रही है। चोटी दिखायी तक नहीं देती। बायीं ओर, थोड़ी-सी समतल भूमि है। उसकी परली ओर एक छोटी-सी नीची झोंपड़ी है। सारा स्थान निर्जन और ऊसर दीखता है।

आखिरी तीन यात्री एक साथ आ पहुंचते हैं। संन्यासी रुकता है और बाकी दोनों को भी इशारे से रोकता है।)

संन्यासी—मुझे आप दोनों से एक बहुत आवश्यक बात कहनी है।

आप सुनेंगे? इस चढ़ाई में मैंने अपने सच्चे स्वरूप को, अपनी सच्ची 'सत्ता' को पा लिया है। मैं 'शाश्वत' के साथ एकाकार हो गया हूं, मेरे लिये अब और किसी का अस्तित्व ही नहीं है, अब मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं रही। अब जो कुछ 'वह' नहीं है वह एक व्यर्थ की भ्रान्ति है। तो मेरा ख्याल है कि मैं पथ के अन्त पर आ पहुंचा हूं। (बायीं ओर की समतल भूमि दिखाकर) और वह देखो, कैसा महान् और निर्जन स्थान है। मैं अब जिस प्रकार का जीवन बिताना चाहता हूं, वह स्थान उसके ठीक अनुकूल है। मैं वहां जाकर धरती और मनुष्यों से दूर, जीवित रहने के कर्तव्य से भी मुक्त होकर ध्यान कर सकूंगा।

(और कुछ कहे-सुने बिना, पीछे देखे या बिदा लिये बिना ही, सीधा अपनी व्यक्तिगत सिद्धि के लक्ष्य की ओर चला जाता है।)

साधिका और साधक अकेले रह गये हैं। संन्यासी के व्यवहार की भव्यता से प्रभावित होकर उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा। फिर तुरन्त संभल गये। साधिका बोल उठी :)

साधिका—

'सत्य'

सकती

तो हम

नहीं

साधक—

है। उ

ख्याल

सीधी

करने

यहां

केवल

होगा

करन

साधिका—

हमेश

है : इ

सातवां

शिखर

(सा

पार कर

की चोट

उस संक

हैं, सब

नवम्बर २००५

साधिका—नहीं, नहीं! यह कभी 'सत्य' नहीं हो सकता, यह पूर्ण 'सत्य' नहीं है। यह सारी विश्व-सृष्टि केवल भ्रमजाल नहीं हो सकती जिससे भाग खड़ा होना जरूरी हो। इसके अतिरिक्त, अभी तो हम पर्वत-शिखर पर नहीं पहुंचे, अभी तो हमारी चढ़ाई खतम नहीं हुई।

साधक—(रास्ता सीधी दीवार जैसी चट्टान पर आकर खतम हो जाता है। उसे दिखाते हुए) तैयार रास्ता तो यहां खतम हो रहा है। मेरा ख्याल है कि कोई मनुष्य इससे आगे नहीं गया। इस दीवार-जैसी सीधी चट्टान पर चढ़ना तो एकदम असम्भव-सा है। इसे पार करने के लिए हमें अपने-आप पग-पग पर रास्ता बनाना होगा। यहां बिना किसी सहायता या मार्ग-दर्शक के अपने ही प्रयास से, केवल अपने संकल्प और अपनी श्रद्धा के बल पर आगे बढ़ना होगा। निःसन्देह हमें अपना मार्ग अपने-आप ही काटकर तैयार करना होगा।

साधिका—(उत्साह के साथ) कोई परवाह नहीं! चलो, बढ़े चलें, हमेशा बढ़ते चलें। अभी हमारी खोज के लिए बहुत कुछ बाकी है : इस सृष्टि के पीछे एक अर्थ है। हमें उसे खोज निकालना है।
(दोनों फिर चल पड़ते हैं।)

सातवां पड़ाव
शिखर

(साधक-साधिका बड़ी वीरता के साथ सब विघ्न-बाधाओं को पार करके आये हैं और अब पूरा जोर लगाकर पूर्ण प्रकाश में पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाते हैं। यहां सब कुछ ज्योतिर्मय है। चट्टान के उस संकरे हिस्से को छोड़कर जिस पर दोनों बड़ी मुश्किल से खड़े हैं, सब कुछ ज्योतिर्मय है।)

साधक—आखिर हम शिखर पर आ पहुंचे! दमकता हुआ, चौंधियाने-
वाला 'सत्य', उसके सिवा कुछ नहीं!

साधिका—और सब कुछ अदृश्य हो गया है। हम इतना परिश्रम
करके जिन सीढ़ियों पर चढ़कर यहां तक पहुंचे हैं वे भी गायब हो
गयीं।

साधक—आगे-पीछे, इधर-उधर, चारों ओर शून्य-ही-शून्य है, सिर्फ
पैर रखने के लिए जगह है, और कुछ नहीं।

साधिका—अब किधर जायें? क्या करें?

साधक—यहां तो बस, 'सत्य'-ही-'सत्य' है, चारों ओर, सब दिशाओं
में एकमात्र 'सत्य'।

साधिका—लेकिन उसे प्राप्त करने के लिए अभी और भी आगे जाना
होगा। और इसके लिए एक और रहस्य की खोज करनी होगी।

साधक—यह स्पष्ट है कि यहां व्यक्तिगत प्रयास की सम्भावना तक
खतम हो जाती है। अब एक और शक्ति को आकर हस्तक्षेप
करना होगा।

साधिका—अब 'कृपा', केवल 'कृपा' ही काम कर सकती है। वही
आगे का पथ खोल सकती है, वही महान् चमत्कार दिखा सकती
है।

साधक—(क्षितिज की ओर हाथ फैलाकर) देखो, देखो उधर, दूर,
उस अतल खाई के उस पार एक शिखर दिखायी देता है। कैसा
अनुपम, सर्वांगसुन्दर, सुषमापूर्ण, आलोकित और अद्भुत रूप
से सामञ्जस्यपूर्ण है। यह वही पुण्यभूमि है, यह वही तपोभूमि है
जिसके बारे में हमें आदेश दिया गया था!

साधिका—हां, हमें वहीं जाना चाहिये। पर कैसे?

साधक—यदि हमें वहां पहुंचना है तो हमें रास्ता भी जरूर मिल
जायेगा।

नवम्बर २००५

साधिका—हां, श्रद्धा रखनी चाहिये, 'कृपा' पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण होना चाहिये।

साधक—हां, 'भगवान् की इच्छा' के सामने पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। जब कोई रास्ता न दीखता हो तब हमें पूर्णतया निर्भर होकर, बिना किसी हिचकिचाहट के, पूरी श्रद्धा के साथ छलांग लगानी होगी।

साधिका—और हमें अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंचा दिया जायेगा।
(दोनों छलांग मारते हैं।)

उपसंहार

सिद्धि

(जादू-भरी ज्योति का देश)

साधक—लो, हम आ पहुंचे।

कोई अद्भुत शक्ति अदृश्य पंखों पर हमें यहांतक उड़ा लायी!

साधिका—(चारों ओर देखते हुए) कैसी अद्भुत ज्योति है!

अब बस, नवजीवन जीना सीखना बाकी है।

(परदा गिरता है।)

जीवन का सच्चा लक्ष्य है अपने अन्दर की गहराइयों में 'भगवान् की उपस्थिति' को पाना और 'उसके' प्रति समर्पण करना ताकि 'वह' जीवन का, सभी भावनाओं और शरीर की क्रियाओं का मार्गदर्शन करे।

यही चीज जीवन को सच्चा और प्रकाशमय लक्ष्य प्रदान करती है।

—श्रीमां

अर्ध-चेतना में से कूदकर बाहर निकल आओ

अच्छा, तो मनुष्य यथार्थ में क्या है, इस बात को खोजना, वह पृथ्वी पर क्यों है, इसे दूँद निकालना, मनुष्य के भौतिक अस्तित्व का, पृथ्वी पर उसकी उपस्थिति का, उसके इस आकार-प्रकार का, इस सत्ता का सच्चा प्रयोजन क्या है... अधिकतर मनुष्य इन प्रश्नों को अपने-आपसे एक बार भी पूछे बिना जिये जा रहे हैं! थोड़े-से उत्कृष्ट लोग ही यह सवाल अपने-आपसे रसपूर्वक करते हैं और उससे भी कम लोग इसका जवाब पाने के लिए काम करना शुरू करते हैं। क्योंकि जबतक सौभाग्यवश किसी जानकार से भेंट नहीं होती तबतक इस बात को जान पाना इतना सरल नहीं है। उदाहरण के लिए, मान लो कि तुम्हारे हाथ में श्रीअरविन्द की कोई किताब कभी न आयी होती, न ही ऐसे लेखकों या दार्शनिकों या सन्तों में से किसी की, जिन्होंने अपना जीवन इस खोज के अर्पण कर दिया, यदि तुम साधारण जगत् में लाखों-करोड़ों साधारण लोगों की तरह रहते हो जिन्होंने कभी विशेष अवसरों को छोड़कर कुछ देवों और धर्मों के सिवाय कुछ नहीं सुना—और वह धर्म भी श्रद्धा की अपेक्षा अभ्यास अधिक होता है, और आजकल वह भी हमेशा नहीं, विरले अवसरों पर—और वह धर्म भी तुम्हें कम ही यह बताता है कि तुम इस धरती पर क्यों आये हो?... तब व्यक्ति इसके सम्बन्ध में सोचने की बात भी मन में नहीं लाता। मनुष्य रोज़ाना अपने दैनिक कृत्यों को करते हुए जीवन बिताता है। बचपन में वह खाने और खेलने के सम्बन्ध में ही सोचता है और कुछ समय बाद पढ़ने के विषय में, उसके बाद फिर जीवन की सभी परिस्थितियों के बारे में विचार करने लगता है। परन्तु अपने-आपसे इस समस्या को पूछना, इस समस्या को अपने सामने रखना और अपने-आपसे कहना : “आखिर, मैं क्यों हूँ?”

नवम्बर २००५

भाओ

ना, वह

मस्तित्व

ार का,

न प्रश्नों

थोड़े-से

हैं और

ना शुरू

में ट नहीं

उदाहरण

किताब

नों में से

या, यदि

रह रहते

और धर्मों

अभ्यास

अवसरों

स धरती

की बात

नो करते

म्बन्ध में

के बाद

गता है।

नो अपने

यों हूँ?"

कितने लोग करते हैं? कुछ लोगों को यह विचार तभी आता है जब उनके सम्मुख कोई भयानक विपत्ति आ पड़ती है। जब वे अपने किसी प्रिय व्यक्ति को मरते हुए देखते हैं या उन्हें किन्हीं विशेष दुःखद परिस्थितियों में डाल दिया जाता है, तब यदि वे पर्याप्त बुद्धिमान हों तो अपनी ओर मुड़कर अपने मन में कहते हैं: "किन्तु, यह दुःखदायक स्थिति वस्तुतः क्या है जिसमें से हम गुजर रहे हैं और उसका क्या लाभ है और क्या उद्देश्य है?"

और मनुष्य उसी क्षण से ज्ञान की खोज शुरू कर देता है।

और व्यक्ति जब खोज लेता है, जैसा कि वह कहता है, समझे, जब वह यह खोज कर लेता है कि मनुष्य में एक दिव्य व्यक्तित्व है और यह भी कि उसे इस दिव्य व्यक्तित्व को खोजना होगा... यह बुद्धि बहुत देर के बाद आती है, और फिर भी, इस सबके बावजूद, इस भौतिक शरीर में जन्म लेने के काल से ही, इस सत्ता में, इसकी गहराई में, चैत्य विद्यमान होता है जो सारी सत्ता को परिपूर्णता की ओर आगे बढ़ाता है। किन्तु इसे, इस चैत्य सत्ता को कौन जानता और पहचानता है? यह ज्ञान भी किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही आता है, और दुर्भाग्य से अधिकतर ये परिस्थितियाँ दुःखपूर्ण ही होती हैं अन्यथा मनुष्य बिना चिन्तन-मनन के यों ही जिये जाता है। और मनुष्य की सत्ता की गहराई में यह चैत्य विद्यमान होता है और चेतना को जगाने और ऐक्य को पुनः स्थापित करने के लिए यत्न करता है, बार-बार यत्न करता है, यत्न करता ही रहता है। मनुष्य उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता।...

तबतक तुम एक धुंधलके में, टटोलते हुए, ऐसी नियति के भार के नीचे दबे रहते हो जो कभी-कभी तुम्हें कुचल देती है और तुम पर यह प्रभाव डालती है कि तुम्हारा निर्माण अमुक ढंग से ही हुआ है और उसके सम्बन्ध में तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम ऐसे जीवन

के बोझ तले पड़े रहते हो जो तुम्हें नीचे खींचता है, तुम्हें जमीन पर रेंगने को बाधित करता है। वह तुम्हें ऊपर नहीं उठाता कि तुम उन सभी पथ-प्रदर्शक सूत्रों को देख सको जो विभिन्न चीजों को प्रगति का एक ही गति में बांध देते हैं और उन्हें उस उपलब्धि की ओर विकसित करते हैं जो स्पष्टतर होती जाती है।

मनुष्य को इस अर्ध-चेतना में से कूदकर बाहर निकल आना चाहिये जिसे साधारणतया बिलकुल स्वाभाविक माना जाता है;—वह तुम्हारे जीवन का 'सामान्य' ढंग है और तुम उससे इतनी दूर भी नहीं हट जाते कि इस अनिश्चितता को, इस सुस्पष्टता के अभाव को देखकर आश्चर्य प्रकट कर सको; जब कि, इसके विपरीत, यह जानना कि व्यक्ति खोज रहा है और उस खोज को सचेतन रूप से, स्वेच्छा से, अटल रहकर और विधिवत् करना एक ऐसी स्थिति है जो वस्तुतः दुर्लभ लगभग 'असाधारण' है, फिर भी यथार्थ जीवन तो मनुष्य इसी तरह शुरू करता है।

पार्थिव जीवन प्रगति का स्थान है

जीवन सत्य और मिथ्यात्व के बीच, प्रकाश और अन्धकार, प्रगति और अवनति, ऊंचाइयों की ओर आरोहण या रसातल में पतन के बीच निरन्तर चुनाव है। हर एक आज़ादी से चुन सकता है।

*

जिस क्षण मनुष्य आगे बढ़ना बन्द कर देता है, वह पीछे जाता है। जिस क्षण वह सन्तुष्ट होकर बैठ जाता है तथा और आगे अभीप्सा नहीं करता वह मरना शुरू कर देता है। जीवन है गति, जीवन है

नवम्बर २००५

प्रयास, जीवन है आगे की ओर बढ़ना, एक पहाड़ी चढ़ाई चढ़ना, नये-नये ज्योति-शिखरों को पार करना और भविष्य की चरितार्थता को ओर अग्रसर होना। विश्राम करने की इच्छा से बढ़कर खतरनाक नाई वस्तु नहीं है। हमें विश्राम की खोज करनी चाहिये कर्म में, प्रयास में, आगे की ओर बढ़ने में—उस सच्चे विश्राम की जो भागवत कृपा में पूर्ण भरोसा रखने से, इच्छाओं के अभाव से, अहं पर विजय प्राप्त करने से मिलता है।

*

पार्थिव जीवन प्रगति का स्थान है। यहां, इस धरा पर, पार्थिव अस्तित्व की अवधि में ही प्रगति सम्भव है। अपने विकास और क्रम-विकास की स्वयं व्यवस्था करता हुआ चैत्य पुरुष ही एक जन्म से दूसरे जन्म में प्रगति को वहन करता है।

*

... चैत्य पुरुष सत्ता में छोटी-सी भागवत चिनगारी से शुरू होता है और इस चिनगारी में से उत्तरोत्तर एक स्वतन्त्र, सचेतन सत्ता निकलती है जिसकी अपनी क्रिया और अपनी इच्छा-शक्ति होती है। अपने मूल में चैत्य पुरुष भागवत चेतना की एक चिनगारी मात्र होता है और क्रमिक जीवनो में सचेतन व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यह प्रगति बढ़ते हुए बच्चे की प्रगति जैसी है। यह निर्मित होती हुई वस्तु है। बहुत समय तक, अधिकतम लोगों में यह निर्मित होती हुई सत्ता ही रहता है। यह पूरी तरह व्यक्ति बनी हुई, सचेतन सत्ता नहीं होता, यह अपना स्वामी नहीं होता। इसे अपना निर्माण करने के लिए और पूरी तरह सचेतन होने के लिए एक के बाद एक बहुत सारे जन्मों की जरूरत होती है।

*

और इस चीज की दिलचस्पी को एक और चीज बढ़ा देती है और वह यह है कि इस प्रकार का कार्य, दिव्य केन्द्रों के चारों ओर अपनी सत्ता को सुसमञ्जसमय बनाने और सुसंगठित करने का यह कार्य केवल भौतिक शरीर में और पृथ्वी पर ही किया जा सकता है। यही भौतिक शरीर का सच्चा और प्रमुख और आदि कारण है। कारण, जैसे ही तुम भौतिक शरीर में नहीं रहते, तुम इसे नहीं कर सकते, बिल्कुल नहीं।

और उससे भी कहीं अधिक अद्भुत बात यह है कि केवल मानव-प्राणी ही इसे कर सकते हैं, क्योंकि केवल मानव-प्राणी ही ऐसे जीव हैं जिनके केन्द्र में, चैत्य पुरुष के अन्दर यह दिव्य उपस्थिति विद्यमान है। उदाहरणार्थ, आत्मविकास और संगठन और समस्त तत्त्वों के विषय में सचेतन होने का यह कार्य प्राणमय और मनोमय जगत् की सत्ताओं की पहुंच के अन्दर नहीं है, उन सत्ताओं की पहुंच के अन्दर भी नहीं जिन्हें साधारण तौर पर “देवता” कहा जाता है, और जब वे इसे करना चाहते हैं, जब वे वास्तव में अपने आपको सुसंगठित करना तथा पूर्णरूप से सचेतन होना चाहते हैं तो उन्हें शरीर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

*

यहां मैं तुम्हें एक बहुत महत्वपूर्ण बात बतला देना चाहती हूं, वह यह कि चैत्य पुरुष केवल भौतिक जीवन में और पृथ्वी पर ही प्रगति कर सकता और अपना गठन कर सकता है। जैसे ही वह एक शरीर छोड़ता है, वह विश्रामावस्था में चला जाता है जो उसके अपने चुनाव तथा अपने विकास की मात्रा के अनुसार कम या अधिक दीर्घ काल तक बनी रहती है—वह विश्राम होता है आत्मसात् करने के लिए, मानों निष्क्रिय प्रगति के लिए, ऐसे निष्क्रिय विकास के लिए

नवम्बर २००५

तो उस चैत्य पुरुष को नवीन अनुभूतियों की ओर जाने तथा अधिक सक्रिय उन्नति करने का अवकाश प्रदान करता है।

*

मधुर मां,

हम अपने चैत्य व्यक्तित्व को कैसे विकसित कर सकते हैं?

जीवन के सभी अनुभवों द्वारा चैत्य व्यक्तित्व रूप लेता, बढ़ता, विकसित होता और अन्त में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है।

विकास की यह प्रक्रिया अनथक रूप से अनगिनत जन्मों तक चलती रहती है, और अगर तुम उसके बारे में सचेतन नहीं हो तो इसका कारण यह है कि तुम अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन नहीं हो—क्योंकि वही अनिवार्य आरम्भ-बिन्दु है। अभ्यन्तरीकरण और एकाग्रता द्वारा तुम्हें अपनी चैत्य सत्ता के सचेतन सम्पर्क में आना होता है। इस चैत्य सत्ता का बाहरी सत्ता पर हमेशा प्रभाव रहता है, परन्तु यह प्रभाव केवल एकदम से अपवादिक अवसरों को छोड़कर प्रायः हमेशा गुह्य रहता है, इसे न तो देखा, न समझा और न अनुभव किया जा सकता है।

इस सम्पर्क को मजबूत बनाने के लिए और यदि सम्भव हो तो सचेतन चैत्य व्यक्तित्व के विकास के लिए, एकाग्र होते समय तुम्हें उसकी ओर मुड़ना, उसे जानने और अनुभव करने के लिए अभीप्सा करनी चाहिये, उसके प्रभाव को ग्रहण करने के लिए अपने-आपको खोलना, और हर बार उससे संकेत मिलने पर बहुत सावधानी और सचाई के साथ उसका अनुसरण करना चाहिये। चैत्य सत्ता के विकास को आवश्यक शर्तें हैं—एक महान् अभीप्सा में जीना, अन्दर से शान्त रहने के लिए सावधानी बरतना और जहां तक बन सके ऐसा ही बने रहना, अपनी सत्ता की सभी क्रियाओं में पूर्ण सचाई स्थापित करना।

प्रत्येक को एक भूमिका निभानी है

हममें से प्रत्येक व्यक्ति को एक भूमिका निभानी है, एक कार्य करना है, प्रत्येक का एक अपना स्थान है जिसे केवल वही ले सकता है।

परन्तु, चूँकि यह कार्य हमारी सत्ता की सबसे अधिक केन्द्रीय गहराई की बाह्य अभिव्यक्ति है, इसका निश्चित रूप हम तभी जान सकते हैं जब हम अपने अन्दर की इस गहराई के प्रति सचेतन हो जायें।

... हमें अपने-आपसे कहना चाहिये : “निश्चय ही कोई ऐसा कार्य है जिसे मैं औरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकता हूँ, क्योंकि यद्यपि भागवत शक्ति सबके अन्दर सार रूप में एक ही है फिर भी हममें से प्रत्येक व्यक्ति उस शक्ति के एक-एक विशेष रूप की अभिव्यक्ति है। वह कार्य कितना भी छोटा, कितना भी साधारण क्यों न हो, पर मुझे अपने-आपको उसीके लिए निवेदित करना है। उसे ढूँढ़ निकालने के लिए मैं अपनी रुचियों, प्रवृत्तियों और पसन्दों का निरीक्षण और विश्लेषण करूँगा, फिर वही कार्य मैं करूँगा। उसे करने में मुझे न तो अभिमान होगा, न अति दीनता का भाव, और लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं, इसकी भी मुझे परवाह नहीं होगी। वह कार्य मैं ऐसे करता रहूँगा जैसे सांस लेता हूँ, जिस भाँति पुष्प सहजता से, स्वभाव से सुरभि फैलाता है, क्योंकि मैं उसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकता।”

जिस मुहूर्त हम अपने अन्दर की सारी अहमात्मक इच्छाओं को, सारे व्यक्तिगत या स्वार्थमय उद्देश्यों को नष्ट करने में सफल हो जाते हैं—चाहे यह एक क्षण के लिए ही हो—उसी क्षण हम अपने-आपको इस आन्तरिक सहजता के प्रति, इस गभीरतर प्रेरणा के प्रति अर्पित कर सकते हैं जिससे हम विश्व की जीवन्त तथा प्रगतिशील शक्तियों

नवम्बर २००५

के साथ सम्बन्ध स्थापित कर पायें।

ज्यों-ज्यों हम स्वयं पूर्ण होते जायेंगे त्यों-त्यों स्वभावतः हमारे कार्य की धारणा भी, उसी अनुपात में, पूर्णतर होती जायेगी। और इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए हमें अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रखना चाहिये, किन्तु हमारा कर्म निरन्तर तथा अधिकाधिक आनन्दपूर्ण और स्वतःस्फूर्त होना चाहिये, जैसे कि निर्मल स्रोत से जल प्रवाहित होता है।

*

वास्तव में इस पृथ्वी पर, जो एक आध्यात्मिक प्रतीक है, चैत्य पुरुष के साथ उत्पन्न होने की बात ही यह सिद्ध करती है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है, ठीक है न?

निश्चय ही। मनुष्य पर एक बड़ी ज़िम्मेदारी है, एक विशिष्ट भगवत्-प्रदत्त कार्य को पूरा करने के लिए ही वह पृथ्वी पर पैदा हुआ है। वस, स्वभावतः, बात इतनी है कि चैत्य पुरुष को एक विशेष मात्रा को प्राप्त कर चुकना चाहिये; अन्यथा यह कहा जा सकता है कि वास्तव में सारी पृथ्वी पर ही ज़िम्मेदारी है। मनुष्य जितना अधिक सचेतन और व्यष्टिभावापन्न बने उतना ही अधिक उसे उत्तरदायित्व का बोध होना चाहिये। परन्तु यह बात एक विशेष क्षण में ही घटित होती है; मनुष्य यह सोचना आरम्भ कर देता है कि वह यहां बिना किसी कारण के, बिना किसी उद्देश्य के नहीं है। वह अचानक यह अनुभव करता है कि वह यहां इसलिए है कि उसे कोई कार्य सम्पन्न करना है और यह कार्य कोई अहंकारपूर्ण कार्य नहीं है। यही मुझे योग-पथ पर प्रवेश करने का अत्यन्त युक्तिसंगत तरीका प्रतीत होता है—एकाएक कोई यह अनुभव कर कि “चूँकि मैं यहां हूं, इसका

तात्पर्य है कि मुझे कोई मिशन पूरा करना है। चूंकि मुझे एक चेतना प्रदान की गयी है, तो इसका अर्थ यह है कि इस चेतना से मुझे कोई कार्य सम्पन्न करना है—वह क्या है?"

साधारणतया, मुझे ऐसा लगता है कि यही पहला प्रश्न है जो मनुष्य को अपने-आपसे पूछना चाहिये : "मैं यहां क्यों हूं?"

*

... सबसे पहली चीज यह ढूंढना है कि वह कौन-सी चीज है जिसे चरितार्थ करने के लिए तुम हो, तुम्हें कौन-सी भूमिका निभानी है, तुम्हारा विशेष उद्देश्य क्या है और वे क्षमताएं या गुण कौन-से हैं जिन्हें तुम्हें अभिव्यक्त करना है। तुम्हें इसके साथ-साथ इसकी खोज भी करनी है कि वह कौन-सी चीज या चीजें हैं जो उनका विरोध करती हैं और उन्हें विकसित और पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं होने देती। दूसरे शब्दों में, तुम्हें अपने-आपको जानना होगा, अपनी अन्तरात्मा या अपनी चैत्य सत्ता को पहचानना होगा।

उसके लिए तुम्हें पूरी तरह से सच्चा और पक्षपातहीन होना होगा। तुम्हें अपने-आपका इस तरह निरीक्षण करना होगा मानों तुम किसी और ही व्यक्ति का निरीक्षण और उसकी समालोचना कर रहे हो। तुम्हें इस विचार से शुरू न करना चाहिये कि यही मेरे जीवन का उद्देश्य है, यही मेरी विशेष सामर्थ्य है, मुझे यह या वह ही करना है, इसीमें मेरी योग्यता और प्रतिभा छिपी है, इत्यादि। यह चीज तुम्हें उचित रास्ते से दूर हटा ले जायेगी। तुम्हारी सत्ता के बाहरी भाग की पसन्द या नापसन्द, तुम्हारा मानसिक, प्राणिक या भौतिक चुनाव तुम्हारे विकास की सच्ची रेखा का निश्चय नहीं करता। न ही तुम्हें यह कहकर इसके विपरीत यह वृत्ति अपनानी चाहिये, "मैं इस विषय में किसी काम का नहीं हूं, उस विषय में बेकार हूं, वह मेरे लिए नहीं

नवम्बर २००५

है।" न गर्व, न घमण्ड और न ही आत्म-उपेक्षा और झूठी नम्रता तुम्हें विचलित कर सके। जैसा कि मैंने कहा, तुम्हें एकदम से पक्षपातरहित और उदासीन होना चाहिये। तुम्हें एक ऐसे आईने की तरह होना चाहिये जो सत्य को प्रतिबिम्बित तो करे परन्तु निर्णय न करे।

अगर तुम इस तरह की वृत्ति बनाये रख सको, अगर तुम्हें अपनी सत्ता में यह निश्चलता और अविचल भरोसा हो और जो अन्तर्दर्शन प्राप्त हो सकता है, तुम उसकी प्रतीक्षा करो तो कुछ ऐसा होता है : मानों तुम किसी अंधेरे, शान्त जंगल में हो, तुम्हें सामने बस पानी की एक परत दिखायी देती है, अन्धकारमय और ठहरी हुई, जो मुश्किल से दिखती है—मानों अन्धकार में एक छोटा-सा तड़ाग जटित है, और धीरे-धीरे उसपर चन्द्रमा की एक किरण पड़ती है और शीतल धुंधले प्रकाश में निश्चल तरल सतह उभर आती है। पहले सम्पर्क में तुम्हारी सत्ता का गुप्त सत्य इसी तरह प्रकट होगा : वहां तुम अपनी सत्ता के सच्चे गुणों को, अपने भागवत व्यक्तित्व की विशेषताओं को, जो तुम हो और जो तुम्हें बनना है, उसे क्रमशः प्रतिबिम्बित होते देखोगे।

सोसायटी समाचार

एक घोषणा : हमें खेद है कि अपरिहार्य कारणों की वजह से डॉ. एम. वी. नाडकर्णी २६ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक गीता-प्रबन्ध (Essays on the Gita) पर शिक्षा-शिविर नहीं लगा पायेंगे। अतः यह शिविर रद्द हो गया है।

नवविहान नये साल का 'डेस्क कैलेंडर' निकालने वाला है। पूरी जानकारी के लिए कृपया नवविहान, श्रीअरविन्द आश्रम, पॉण्डिचेरी — ६०५००२ से सीधा पत्र-व्यवहार करें।

ई-मेल—navavihan@eth.net

पुरोधा तथा अग्निशिखा के हमारे ग्राहकों के लिए
नयी रियायती दरें :

अग्निशिखा			पुरोधा		अग्निशिखा एवं पुरोधा	
वर्ष	दरें		दरें		दरें	
	पुरानी	नयी	पुरानी	नयी	पुरानी	नयी
१	४०	४०	५०	५०	९०	८५
३	१२०	११०	१५०	१४०	२७०	२४०
५	२००	१८०	२५०	२३०	४५०	४००
१०	४००	३५०	५००	४५०	९००	७५०
२०	८००	६५०	१०००	८५०	१८००	१४५०
२५	१०००	८००	१२५०	१०५०	२२५०	१८००

नवम्बर २००५

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM



Spintex Private Limited

301, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबद्ध

स्थापित—१९६१

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन-मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षक, आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी से प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००१ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com



Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

Dipant
12/12/05

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

दिसम्बर २००५

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां
‘सम्पादकीय’ : सपनों से भरी टोकरी और जाग्रत् व्यक्ति (२)	श्रीमां
दैनन्दिनी	अनुबेन
माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क : उषा	नीरदवरण
धन—शक्ति और समृद्धि	
धन—शक्ति की भौतिक अभिव्यक्ति	श्रीमां
धन किसने बनाया—मनुष्यों ने या देवताओं ने?	श्रीमां
उपयोगितावाद—एक आधुनिक बीमारी	श्रीमां
धन को पुनः जीतना	श्रीमां
जब तुम्हारे पास बहुत धन हो	श्रीमां
वैराग्य	श्रीमां
धन और भविष्य	श्रीमां
व्यापार और योग	श्रीअरविन्द
भौतिक वस्तुओं का रख-रखाव	श्रीअरविन्द
सरल बनो	श्रीमां
सोसायटी समाचार	

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमां द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ

समृद्धि

केवल उसी के पास स्थिर रूप से रहती है जो उसे
भगवान् के अर्पण कर देता है।

सामान्य नाम—(अंग्रेजी)--Cannon-ball Tree; (हिन्दी)—नागेश्वर

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

सम्पादक : अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

किस कोई बच्चा तुम्हें अपने परिवार के धन-दौलत की कहानियां सुनाकर प्रभावित करना चाहे तो चुपचाप मत बैठे रहो। तुम्हें उसे समझाना चाहिये कि यहां संसारी दौलत का महत्त्व नहीं है, केवल उसी धन का कुछ महत्त्व है जो भगवान् को अर्पण कर दिया गया हो, कि तुम बड़े मकानों में रहने से, पहले दर्जे में यात्रा करने से या बहुत खुले हाथों खर्च करने से बड़े नहीं बन जाते। तुम्हारी महत्ता सत्यवादी, निष्कपट और कृतज्ञ होने से ही बढ़ सकती है।

—श्रीमां

‘सम्पादकीय’ :

सपनों से भरी टोकरी और जाग्रत् व्यक्ति (२)

अचानक मुझे वर्षों पहले की एक घटना याद आ रही है। श्री के. एम. मुंशी भारत सरकार के मन्त्री थे। वे आश्रम आये उससे पहले उन्होंने विनयपूर्वक श्रीअरविन्द से साक्षात्कार की अनुमति मांगी थी क्योंकि जब श्रीअरविन्द बड़ौदा में प्रोफेसर थे तब मुंशी उनके विद्यार्थी रह चुके थे। मुंशी जी को अनुमति मिल गयी। बातचीत के दौरान मुंशी जी की शिकायत थी कि हमारी नयी पीढ़ी एकदम यूरोप का अनुसरण कर रही है। वे पश्चिम के अनुरागी हो गये हैं। श्रीअरविन्द का शान्त उत्तर था, “यह परिस्थिति अस्थायी है।” उसके बाद कई वर्ष बीत गये। हम देखते रहे कि भारतीय युवा दल विदेश जाने के लिए और हर विदेशी वस्तु के पीछे पागल होने लगा है।

लेकिन अब हम देखते हैं कि इन दो-तीन वर्षों में युवा दल के पश्चिम-गमन में परिवर्तन आ रहा है। वे अवश्य अमरीका या यूरोप जाते हैं किन्तु पढ़-लिख कर, अधिक योग्य बनकर पुनः भारत लौट आते हैं। क्यों? क्योंकि धन-सम्पत्ति उन्हें सन्तुष्ट कर नहीं पाती। वे ऐसा काम करना चाहते हैं जिससे उनको अपने काम से आन्तरिक सुख-शान्ति मिले, जीवन की धन्यता मिले।

शायद अतिमानसिक शक्ति ने उन पर प्रभाव डालकर उन्हें उनके सच्चे कार्य के प्रति जाग्रत् किया हो वरना लाखों की नौकरी को छोड़ना सम्भव कैसे होता!

बालाजी सम्पत्त नामक युवक को ही देखें; भारत में आई. आई.

दिसम्बर २००५

की प्रतिष्ठित शिक्षा में सफल हो कर वह पी. एच. डी. की डिग्री
करने अमरीका गया। वहां उसे वह डिग्री भी मिली और साथ-
साथ एक लाख डॉलर की नौकरी का प्रस्ताव भी आया। उसने उसे
स्वीकार कर दिया और भारत लौट आया। उसका परिवार उसकी
बकूली से बहुत नाराज़ और परेशान हो उठा किन्तु बालाजी टस-
से-मस न हुआ। उसने 'एड-इंडिया' संस्था की स्थापना की ताकि वह
देश की, देशवासियों की सहायता कर पाये। बालाजी बहुत खुश था
और एक वर्ष के बाद उसके परिवार ने भी उसके लक्ष्य को समझ
कर सराहा। बालाजी के इस अभियान से आकर्षित होकर कई समान
व्यवसेवी युवक-युवतियां आ जुड़े।

स्मिता कल्याणी प्रतिष्ठित 'बिड़ला इंस्टिट्यूट' से पास होकर
'विप्रो' में अपनी प्रतिभा के कारण हजारों की लुभावनी आरामदेह
नौकरी पा सकी। 'एड-इंडिया' का नाम सुनकर कुछ दिन वहां काम
करने गयी। वहां काम कर उसे जो आत्म-सन्तोष मिला, देश की
सेवा करने का जो आनन्द प्राप्त हुआ उसके सामने 'विप्रो' के हजारों
रुपये और ऐशोआराम बेकार लगने लगे। उसने 'विप्रो' का काम
गोड़ दिया और 'एड-इंडिया' की सदस्या बन गयी।

पच्चीस वर्ष का भानु चन्दर अमरीका में अच्छी नौकरी और वहां
के सामाजिक जीवन से प्रसन्न था। किन्तु... यह किन्तु कभी-कभी
भारा जीवन उलट-पुलट कर देता है। भानु के साथ भी ऐसा ही
हुआ। भारत में सुनामी क्या आया, भानु की आंखें खोल गया।
सुनामी से बेघर, बेकार असंख्य लोगों के चित्र और उनकी दुरवस्था
सब उसके अन्दर असह्य दुःख उठा और साथ-साथ कोई जो उसके
हृदय में जाग उठा उसने उसे चैन से रहने न दिया। वह अमरीका को
अलविदा कहकर भारत आ गया और सम्पत्त के अभियान में आ
जुड़ा। दुःखी लोगों के मुख पर मुस्कान देखकर वह रोमाञ्चित हो

उठता है, अपने-आपको धन्य मानता है।

और आधुनिक विद्यार्थियों की मनोदशा कैसी है? क्या वे इस नयी दिशा की ओर मुड़ रहे हैं?

३१ वर्षीय राजेश युवावर्ग को प्राणायाम, ध्यान और कसरत द्वारा अपने जीवन में सन्तुलन लाने में उनकी सहायता करता है। उसके ऐसे 'वर्क-शॉप' लोकप्रिय बन गये हैं। 'वर्क-शॉप' के द्वारा लोग व्यस्त, सफल होने के बावजूद तनावमुक्त और मुस्कुराते रहना सीखते हैं। वे जीवन की कठिनाइयों, उलझनों और भावनाओं, इच्छा तथा कामनाओं को शान्ति से सुलझाना सीखते हैं।

विक्रम रेड्डी की अमरीकी पत्नी ने उससे तलाक ले लिया और वह दुःख उसके लिए इतना असह्य हो उठा कि उसने रातें शराब में बितानी शुरू कर दीं, पार्टियों में रात-रात भर रहकर सुबह तक घर आता और इस तरह वह अपने-आपको बरबाद कर रहा था। एक दिन उसकी मुलाकात राघवेन्द्र नामक व्यक्ति से हैदराबाद में हुई। हैदराबाद में अमरीकी वैष्णव भक्तों ने 'इस्कॉन' की सहायता से मन्दिर बनाया था और राघवेन्द्र उस मन्दिर में नियमित जाता था। उसने मान लिया था कि उसका 'मिशन' पथहारे, गुमराह लोगों को फिर से भगवान् की शरण में ले जाकर उन्हें सुख-शान्ति देना है तो उसने विक्रम के साथ भी कई दिनों तक सम्पर्क रखा और धीरे-धीरे विक्रम निराशा, दुःख से मुक्त होकर हंसता-मुस्कुराता अपना जीवन बिताने लगा।

तो क्या नयी पीढ़ी श्रीअरविन्द की भविष्यवाणी को चरितार्थ कर रही है? अब क्या भारत फिर से अपनी अस्मिता की ओर लौट रहा है? अब श्रीअरविन्द की वह दिव्य वाणी कि "यह परिस्थिति अस्थायी है" सच्ची हो रही है?

इस शुभ आगमन से हम सन्तुष्ट रहेंगे? नहीं। मनुष्य के जीवन

नशिखा दिसम्बर २००५

जलक्षय क्या है और विकासक्रम में मनुष्य की भूमिका का संक्षिप्त
 वर्णन देखें। माताजी दूरस्थ भविष्य की ओर देखते हुए कह रही हैं,
 ... यदि तुम चीजों की एकदम गहराई तक जाओ, केवल अहंभाव
 ही विमुक्त नहीं, बल्कि अहं से विमुक्त होकर अपने-आपको पूरी
 तरह, सम्पूर्णता और अनासक्ति के साथ समर्पित कर दो तो तुम
 प्रभु की योजना को समझने योग्य बन जाओगे... और तुम
 समझ पाओगे कि जीवन है सारी सृष्टि को जीने का आनन्द, जीने
 का सौन्दर्य, जीने की महिमा, एक उदात्त जीवन की भव्यता। अर्थात्
 जीवन है आनन्द, सौन्दर्य और महिमा की सतत प्रगतिशील वृद्धि,
 जीने का क्षेत्र।”

इतना सब हम अपने बलबूते पर कभी न कर पायेंगे, उसके
 लिए हमें भगवान् की कृपा के लिए अभीप्सा करनी होगी। अपने
 छोटे ‘स्व’ से निकल कर ‘उन’ में घुल-मिल जाना होगा।

और तब? तब जीवन उनके साथ रासलीला करने के जैसा
 मधुर, सुन्दर और आनन्दपूर्ण होगा।

काश! सारा भारत एक साथ जाग उठता!!

—अनुबेन

नोट, रुपये-पैसे इत्यादि सबके पीछे एक शक्ति होती है, यह है
 विनिमय की शक्ति—यही धन कहलाती है।

*

धन एक साधन है, एक शक्ति, एक बल है, वह अपने-आपमें
 लक्ष्य नहीं है।

—श्रीमां

दैनन्दिनी

दिसम्बर

१. परम प्रभु ने अपरिहार्य रूप से यह निश्चय कर दिया है कि जगत् की संगीत-गोष्ठी में तुम कौन-सा स्थान लोगे, वह चाहे जो स्थान हो, जहांतक आध्यात्मिक उपलब्धि का सवाल है तुम्हें भी औरों की तरह वह समान अधिकार प्राप्त है कि तुम चरम ऊंचाइयों तक चढ़ सको।
२. अपनी सत्ता के सत्य में तुम जो हो वह सुनिश्चित है और कोई व्यक्ति या कोई चीज तुम्हें वह होने से रोक नहीं सकती; लेकिन यह तुम्हारे मुक्त चुनाव पर छोड़ दिया गया है कि तुम उस तक पहुंचने के लिए कौन-सा रास्ता चुनते हो।
३. ऊपर उठते हुए विकास के पथ पर हर एक अपनी दिशा चुनने के लिए स्वतन्त्र है : सत्य के शिखरों—परम उपलब्धि—की ओर तुम तेज और खड़ी चढ़ाई चढ़ सकते हो या फिर शिखरों से मुंह मोड़कर अन्तहीन पुनर्जन्मों के टेढ़े-मेढ़े अनन्त रास्तों में से होते हुए सरल ढलानों से नीचे फिसल सकते हो।
४. युगों की अवधि में, बल्कि अपने इसी जीवन में तुम हमेशा के लिए अपना अटल चुनाव कर सकते हो, और फिर तुम्हें हर नये मोड़ पर, हर अवसर पर उस चुनाव की पुष्टि कर लेनी चाहिये; और अगर तुमने आरम्भ से ही अन्तिम निर्णय नहीं लिया है तो हर क्षण तुम्हें सत्य और मिथ्यात्व के बीच चुनाव करना होगा।
५. परम सत्य और परम सौन्दर्य की सेवा में बिना थके लगे रहना महत्त्वपूर्ण है।

दिसम्बर २००५

६. तुम जो करते हो उसे भली-भांति करना प्रगति के लिए द्वार खोल देता है।
७. भौतिक सुख-सुविधा, तथाकथित आवश्यकताओं और आरामों के बारे में—चाहे वे जिस तरह के क्यों न हों—लालच साधना की सबसे गम्भीर बाधाओं में से एक है। लालच से प्राप्त हर छोटी-मोटी सन्तुष्टि लक्ष्य से एक कदम पीछे हटना है।
८. ऊपर से दीखनेवाले विरोधों की परवाह न करो। इनके पीछे सत्य को देखना, खोजना है।
९. प्रगति किये बिना बीतता हुआ हर क्षण तुम्हें अपनी कब्र की ओर ले जानेवाला कदम होता है।
१०. पार्थिव जीवन का उद्देश्य है प्रगति करना।
११. जीवन में सारी कटुता तभी आती है जब अहंकार अपदस्थ होने से इन्कार कर देता है।
१२. धरती पर परिवर्तन धीमे-धीमे आते हैं। चिन्ता न करो—और भविष्य के लिए आशा बनाये रखो।
१३. महान् सत्ताएं हमेशा बहुत सरल और विनयशील होती हैं।
१४. चीजें या क्रियाएं अपने-आपमें ऊंची या नीची नहीं हैं, करनेवाले की चेतना सत्य या मिथ्या होती है।
१५. अगर तुम अपनी चेतना को परम चेतना के साथ एक कर दो और उसे अभिव्यक्त करो, तब तुम जो कुछ सोचो, अनुभव करो या करो वह आलोकमय और सत्य हो जाता है।
१६. भूत, भविष्य की ओर छलांग लगाने के लिए तख्ता होना चाहिये, हमें आगे बढ़ने से रोकने के लिए जंजीर नहीं।
१७. जो कुछ भी होता है हमें एक ही पाठ सिखाने के लिए होता है। जबतक हम अपने अहंकार से छुटकारा नहीं पा लेते तबतक कोई शान्ति नहीं हो सकती, न हमारे लिए न औरों के लिए,

और अहंकार के बिना जीवन एक अद्भुत चमत्कार हो उठता है !...

१८. जब हम कटु होते हैं तो भगवान् के साथ सम्पर्क खो बैठते हैं क्योंकि हम बहुत कटु रूप में मानव बन जाते हैं...

१९. कुछ अपवादों को छोड़कर समस्त मानवजाति भगवान् पर अविश्वास करती है, फिर भी उनकी कृपा हमेशा सक्रिय रहती है... !

२०. भागवत कृपा अद्भुत और सर्वशक्तिमान् है।

और प्रभु के कार्य करने के तरीके आनन्दमय और विनोदपूर्ण होते हैं... ।

२१. प्रेम सबके साथ है, प्रत्येक की प्रगति के लिए समान रूप से कार्य कर रहा है—लेकिन विजय उन्हीं में पाता है जो उसकी परवाह करते हैं।

२२. अभीप्सा हमेशा अच्छी होती है। अगर कोई मांग उसके साथ मिल भी जाये तो तुम विश्वास रखो, वह स्वीकृत न होगी।

२३. हम धरती पर एकता, ज्ञान, चेतना, सत्य को स्थापित करना चाहते हैं और हम उस चीज से लड़ते हैं जो प्रकाश, शान्ति, सत्य और प्रेम की नयी सृष्टि के आगमन का विरोध करती है।

२४. लोग यहां अपनी चेतना बदलने के लिए हैं। जबतक सब-के-सब अपने लक्ष्य के प्रति सच्चे नहीं बन जाते तबतक कोई सच्चा काम नहीं किया जा सकता।

२५. जब चीजें गलत होती जा रही हों तब अपनी सर्वोत्तम सद्भावना और सच्चे सहयोग को दिखाने का सबसे अच्छा अवसर होता है।

२६. बुरी चीज है दासता : परहेज की दासता और आवश्यकताओं

शिक्षा दिसम्बर २००५

उठता की दासता। जो आये उसे स्वीकार कर लो, लेकिन अगर वह जाये तो सदा छोड़ने के लिए तैयार रहो।

उठते हैं १७. ... मैं आशा करती हूँ कि हर एक अपना काम अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता के साथ करे और उसकी आंखें भागवत कार्य की महानता पर लगी रहें, इससे हर एक को अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों में भी निश्चित रूप से मदद मिलेगी।

न पर १८. निश्चय ही स्थिर-शान्त रहना तमस् नहीं है। वस्तुतः स्थिर शान्ति में ही ठीक चीज की जा सकती है। जिसे मैं स्थिर शान्ति कहती हूँ वह है किसी भी चीज से विक्षुब्ध हुए बिना काम करना और हर चीज को किसी भी चीज से विक्षुब्ध हुए बिना देखना।

रूप से उसकी १९. पूर्णयोग में साधना और बाहरी जीवन में कोई फ़र्क नहीं है, दैनिक जीवन की एक-एक गतिविधि में सत्य को खोजना और क्रियान्वित करना चाहिये।

के साथ होगी। २०. हर शक्ति या सामर्थ्य का अन्य शक्तियों और सामर्थ्यों पर कुछ प्रभाव होता है और यह क्रिया पारस्परिक होती है। प्रभावों की सतत और व्यापक अस्तव्यस्तता से बचने के लिए एक ही रास्ता है, ऐकान्तिक रूप से भागवत चेतना पर एकाग्र होओ और अपने-आपको केवल भागवत चेतना की ओर खोलो।

ब-के- २१. मैं एक ऐसी समाधि के पक्ष में नहीं हूँ जो इस जीवन को ऐसा क कोई ही छोड़कर उच्चतर चेतना में ले जाती है। मेरा उद्देश्य है, उच्चतर चेतना की सहायता से इस जीवन को रूपान्तरित करना। (श्रीअरविन्द)

दुःखाना

र होता

कताओं

माताजी के साथ स्मरणीय सम्पर्क

उषा

मैं फरवरी दर्शन से कुछ दिन पहले आया था। मुझे आश्रम-प्रेस के पास, जिसे पहले 'बुदे हाउस' कहते थे, वहां रहने का स्थान दिया गया। आश्रम से वह मकान दूर था, परन्तु समुद्र-तट पर अच्छा शान्त स्थान था। नये दर्शनार्थियों के लिए वह स्थान नियुक्त किया गया था और उनके लिए भी वह मकान आश्रम-जीवन में छलांग लगाने का तख्ता-सा था जो साधक बनने की इच्छा से आये हों। मैंने श्रीअरविन्द के लिए रेशमी धोती और माताजी के लिए प्रसिद्ध बंगाली इत्र खरीदा था। मेरा यह चुनाव सोचे बिना या सहज ज्ञान से हुआ था। मेरी भतीजी को माताजी के लिए मेरा उपहार देखकर बहुत मज़ा आया और वह हंस कर बोली, "आप सोचते हैं कि माताजी ऐसे मामूली इत्रों का उपयोग करती हैं?" मैं सचमुच बुद्ध बन गया। फिर भी माताजी के साथ मेरे साक्षात्कार का समय आया तो मैं अपने उपहार लेकर गया। यह साक्षात्कार मेरे पहले साक्षात्कार के जैसा बिलकुल नहीं था। माताजी एकदम गम्भीर थीं मानों मेरा आना उन्हें पसन्द ही न आया हो या मैंने कुछ बुरा काम किया हो। माताजी की दृष्टि देख कर यह मेरी मानव बुद्धि की बेवकूफी-भरी व्याख्या थी। यह ऐसी भूल है जिसे हम पता नहीं कितनी बार कर चुके हैं। श्रीअरविन्द उस भूल को ठीक करने का बहुत प्रयास करते थे। बहुत समय के बाद मैं समझ पाया कि माताजी उस दृष्टि से क्या कहना चाहती थीं। हां, जो दिव्य प्रकाश मैंने पाया था उसे मैं उस अन्तराल में गंवा बैठा था। फिर भी मैंने उनसे कहा कि अगर अनुमति हो, तो मैं यहां रहना चाहूंगा। माताजी ने उत्तर दिया कि दर्शन के बाद मैं

सितम्बर २००५

ने निश्चय के बारे में श्रीअरविन्द को लिख सकता हूँ। मैंने दर्शन के बाद उन्हें लिखा, “मेरी अभीप्सा और निर्णय अब भी दृढ़ हैं। उनके बारे में क्या आपकी राय जान सकता हूँ?” उनका उत्तर मालु तो था किन्तु साथ-साथ अनिश्चित भी। वह था, “स्थायी निवास का निश्चय लेने से पहले हम कुछ समय बीतने देंगे और देखेंगे—शायद अगस्त तक।” मैंने उनका निर्णय स्वीकार कर लिया यह जानते हुए भी कि बाद में अगर मुझे नहीं स्वीकारा गया तो मेरे ऊपर बहुत-सी मुसीबतों का भार आ पड़ेगा। फरवरी से अगस्त का अन्तराल बहुत लम्बा था क्योंकि उन दिनों अप्रैल दर्शन नहीं होता था। शायद श्रीअरविन्द देखना चाहते थे कि मैं आश्रम-जीवन में अपने-आपको कितना अनुकूल कर पाता हूँ या फिर क्या कहना चाहते थे कि केवल अनुमति के लिए मांग करना काफी नहीं है? कौन जवाब दे पायेगा? हम जानते हैं कि उनके जवाब के कई अर्थ हो सकते हैं। किन्तु छह महीनों के बाद उन्होंने मुझे अवश्य जवाब फेंक न दिया होता। हां, अगर मैं पूरा-पूरा असफल होता तो बहुत अलग थी; वैसे यह विचार तो कुछ समय बाद मेरे मन में आया था। यह डर मेरे सिर के ऊपर टंगा रहता था इसलिए मैंने पूरी गम्भीरता से अपने-आपको इस परीक्षा के लिए तैयार करना शुरू कर दिया ताकि कसौटी की अवधि के बाद उनके आगे अपना चेहरा ज़्यादा अच्छा प्रस्तुत कर, कह पाऊं, “प्रभु, यहां हूँ मैं!” और वे कृपा से मुस्कुरा कर कहें, “शाबाश, नौजवान! मैं तुम्हें अपना रहा हूँ, लेकिन ‘तुम्हारी’ पिटाई बहुत करूंगा।” अन्त में जो हुआ वह ज़रा कुछ नाटकीय न था। मैं बस वहां रहने लगा। दोनों में से न किसी ने प्रश्न पूछा और न किसी ने उत्तर दिया।

कसौटी के उन महीनों के दरमियान मैंने किसी दिव्य ‘शक्ति’ को अपने ऊपर कार्य करते हुए पाया और मैं अपनी अभीप्सा की तीव्रता

को रख पाया। प्रणाम के समय माताजी बहुत बार अपने मनोहर स्मित मेरे ऊपर उंडेलती रहतीं। उनके इस प्रत्युत्तर से मुझे आन्तरिक विश्वास होने लगा कि मेरा स्थान यहीं है। उसका बाह्य संकेत यह था कि मुझे आश्रम के पास एक कमरा दिया गया। मुझे खिरोद के साथ मकान की मरम्मत के विभाग में काम दिया गया। मेरा कमरा बहुत अच्छा था, हवा और उजास से भरा और समुद्र की ओर खुला हुआ। इतना अच्छा कमरा मिला, यह तो मेरे सौभाग्य की बात थी। किन्तु काम में मेरा मन नहीं लगता था क्योंकि उसमें हर महीने का हिसाब लिखना भी मेरे जिम्मे था। गणित कभी मेरा प्रिय विषय नहीं रहा। जल्दी ही मेरा काम बदल दिया गया, लेकिन वह पहले से कोई ज्यादा अच्छा काम न निकला। वह काम था मकानों की पुताई! हालांकि माताजी ने मुझे दो बड़िया से बड़िया कर्मयोगियों के संसर्ग में आने का अवसर दिया, फिर भी, उनके उदाहरण के बावजूद मेरा चैत्य प्रकाश से जगमगाने से इन्कार कर रहा था। सच बात तो यह है कि हमेशा मुझे शारीरिक काम से अरुचि रही थी। न ही मैंने काम को गम्भीरता से साधना के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में माना था। योग के बारे में मेरे विचित्र दकियानूसी विचार थे। मैंने सोचा था कि काम तो बस हमें व्यस्त रखने का एक उपाय है ताकि हम साथ-साथ उपयोगी काम भी कर पायें; इसी विचार से मैंने काम पर ध्यान नहीं दिया। स्वाभाविक है कि विभाग के अध्यक्ष ने मेरे बारे में कोई अच्छी राय अपनी रिपोर्ट में नहीं दी होगी। कुछ समय बाद चूंकि लकड़ी-विभाग का गोदाम देखनेवाला कोई न था, अतः मुझे उस स्थान पर जाने के लिए कहा गया। वह काम ज़िम्मेदारी का था, क्योंकि मैं वहां मुख्य निरीक्षक था। इसके बावजूद मेरे अन्दर अग्नि प्रज्वलित न हो पायी। मैं बड़इयों को अपना काम करने देता और अपना समय पुस्तक पढ़ने में व्यतीत करता रहता। मैं आश्रम के दिलीप और कई बुद्धिमान

दिसम्बर २००५

नेशिखा

मनोहर

गन्तरिक

यह था

के साथ

रा बहुत

हा हुआ।

। किन्तु

हिसाब

ही रहा।

ई ज्यादा

हालांकि

में आने

रा चैत्य

ह है कि

काम को

योग के

काम तो

उपयोगी

में दिया।

छी राय

-विभाग

जाने के

हां मुख्य

ने पायी।

क पढ़ने

बुद्धिमान

लोगों को साहित्यिक कार्यकलाप में रत देखता और मेरी अचेतन महत्वाकांक्षा यही थी कि मैं उनका अनुसरण करूं और मैं भी एक साहित्यकार सज्जन बन जाऊं। लेकिन एकदम अप्रत्याशित रूप से मेरे मनोभाव में बदलाव आ गया। एक मनोवैज्ञानिक झटके ने मेरे हृदय में अग्नि प्रज्वलित कर दी और रातोंरात एक साहित्यकार की राह में कर्मयोगी बन गया। बात यूं हुई कि माताजी को दैनिक 'रिपोर्ट' लिखते समय मैंने ऐसा कुछ लिखा था, "काम के समय पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं?" श्रीअरविन्द ने उत्तर भेजा, "मैं तुम्हारे काम को जानता नहीं।" मैं नहीं कह पाऊंगा कि उस संक्षिप्त, रूखे से उत्तर में ऐसा क्या था कि मैंने बहुत अपमानित महसूस किया और साथ ही मुझे शरम भी आयी। मैंने सोचा, "अगर श्रीअरविन्द नहीं जानते कि मेरा काम क्या है तो फिर मैं किस तरह का काम कर रहा हूँ?" तो इस तरह एक सरल वाक्य ने मुझमें परिवर्तन कर दिया। और जैसा मैं कह चुका हूँ, मैं कर्मयोगी के रूप में खिल उठा। इस परिवर्तन के लिए गुरु ने मुझे भव्य सर्टिफिकेट इन शब्दों में दिया, "लकड़ी के गोदाम ने तुमसे महान् प्रगति करवायी और तुमने लकड़ी के गोदाम से भी महान् प्रगति करवायी है।" मैं बेहद खुश हुआ और इस बड़ी सफलता के लिए मैंने अपनी पीठ ठोकी। इस परिवर्तन ने गुरु के हृदय को भी मृदु बना दिया और इसी कारण मुझे लिखी चिट्ठियों में उनका माधुर्य प्रकट हो रहा था।

एक बार काम की देखभाल करते समय मेरे अंगूठे पर एक भारी शहतीर गिर पड़ा। अंगूठा दुखने लगा और काला पड़ गया। दर्शन के लिए आये हुए डॉक्टर मणिलाल को माताजी ने मेरी चिकित्सा के लिए भेजा। स्वयं माताजी की ओर से आयी इस सद्भावना ने मुझे गहराई तक छू दिया। मुझे कई दिनों तक आराम लेना पड़ा किन्तु क्या विचित्र बात थी! मैं उत्सुकता से अपने काम पर जाने की

प्रतीक्षा कर रहा था ! तब मैंने सीख लिया कि किसी भी कार्य को सही मनोवृत्ति से किया जाये तो मनुष्य में रुचि जाग उठती है और वह उसे करते समय खुश रहता है। लकड़ी के विभाग में काम करते समय मैं दावा तो नहीं कर पाता कि मुझे कोई सकारात्मक आध्यात्मिक अनुभूति हुई, सिवा एक के। जहां तक मुझे याद है वह अनुभूति माताजी के साथ एक साक्षात्कार के बाद हुई थी। साक्षात्कार के समय उन्होंने मुझसे पूछा था कि मेरी अभीप्सा किस तरह रूप ले रही है। वे क्या कहना चाहती थीं, मैं यह समझ न पाया। वह भाषा मेरे डॉक्टरी दिमाग के लिए बहुत ज्यादा यौगिक या दार्शनिक थी। तब उन्होंने सरल भाषा में समझाया। मैंने उनको उत्तर दिया कि मैं जो सबसे ज्यादा चाहता हूं वह है आनन्द। माताजी मुस्करायीं और बोलीं कि आनन्द को नीचे उतारना बहुत कठिन है; फिर भी उसकी मांग करने में कोई हानि न होगी। उसी दिन दोपहर को जब मैं अपने काम पर गया और ऊपर नीले आकाश की ओर देख रहा था कि हठात् प्रपात की न्याईं मेरे ऊपर जोरों से बरसता आनन्द उतर आया। वह मुझे इतना अभिभूत कर रहा था कि मेरा मन नाचने के लिए मचल उठा। उसे मैं किस तरह नियन्त्रित करूं, मेरी समझ में न आया और मैं कविता लिखने बैठ गया। जैसे ही मैंने लिखना शुरू किया, मेरी अनुभूति रुक गयी। माताजी की कृपा से दिये हुए वरदान को इस तरह खो देना मेरी कितनी बड़ी बेवकूफी थी ! जब मैंने इसकी कहानी गुरु को सुनायी तो मुझ पर जो डांट पड़ी उसके मैं योग्य ही था। उस साक्षात्कार के समय माताजी ने मुझे यह भी समझाया था कि यहां आश्रम में जो काम हो रहा है वह किस तरह का है। माताजी ने कुछ-कुछ ऐसा कहा था, “तुमने अवश्य पोखर देखे होंगे और उनकी सतह पर साफ, पारदर्शक पानी देखा ही होगा; सारा कीचड़ पानी के नीचे जम कर रह जाता है। हम उस कीचड़

दिसम्बर २००५

मन्यन कर रहे हैं। परिणाम यह है कि सारा पानी गंदला हो गया। यह शुद्धीकरण की प्रक्रिया है। इसके पहले यह कार्य किसी ने नहीं किया।" उस समय मैं सारी बात अच्छी तरह समझ नहीं पाया। मेरे स्मृति-पटल पर वह अंकित रह गया था। अब मैं सर्वत्र उस सत्य को देख पाता हूँ। इस गंदले वातावरण में हमें कितनी देर रुक रहना पड़ेगा भगवान् ही जानें!

१९३६ में माताजी के साथ मेरे जन्म-दिवस के साक्षात्कार के विषय में मैंने श्रीअरविन्द से पूछा, "गुरु, मेरे जन्म-दिवस पर माताजी ने क्या राय बनी? मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं शान्त नहीं था, लेकिन सारे दिन मैंने शान्ति अनुभव की।"

श्रीअरविन्द : माताजी की राय है, "एकदम खराब तो नहीं—मैंने उसे काफी ग्रहणशील पाया।" तो, साहब, अपनी ग्रहणशीलता संजोये रखो और शंका, निराशा, विषाद के साथ गपशप करना छोड़ दो, तब तुम हमेशा शान्त बने रहोगे!

अचानक मुझे अपने "टिम्बर सिंहासन" से उठा कर ज्यादा सम्माननीय सिंहासन की शोभा बढ़ाने के लिए कहीं और बिठाया गया। मैं आश्रम का डॉक्टर बन गया और चार वर्ष तक उस "गद्दी" पर बैठा रहा। उसके बाद मैंने तीसरी—या यूँ कहूं, तिगुनी पदोन्नति पायी और प्रभु की सेवा करने गया। जहांतक मेरी 'मेडिकल साधना' की बात है तो उसके ठोस सबूत मिलते हैं "श्रीअरविन्द के साथ पत्र-व्यवहार" (Correspondence with Sri Aurobindo) पुस्तक की श्रुति और उससे निकले परिणामों से। मेरी धारणा यह है कि घटनाओं को नयी करवटों केवल वह सोपान था जिसके द्वारा 'डिस्पेन्सरी' के रास्ते से मैं सीधा सर्वोच्च स्थान तक छलांग लगा सकूँ। अपनी रुचि के विरुद्ध 'मेडिकल शिक्षा' के लिए मेरे बाहर जाने का अर्थ यही है वह बात भी मेरी समझ में आ गयी।

—नीरदवरण

धन—शक्ति और समृद्धि

धन—शक्ति की भौतिक अभिव्यक्ति

हां तो, जब तुम धन के बारे में सोचते हो तो तुम नोट या सिक्कों या किसी प्रकार की दौलत या मूल्यवान् चीजों के बारे में सोचते हो। लेकिन वह तो केवल एक ऐसी शक्ति की भौतिक अभिव्यक्ति है जिसे प्राण के द्वारा चलाया जा सकता है और जो हस्तगत या नियन्त्रित किये जाने पर लगभग अपने-आप ही धन की अधिक ठोस अभिव्यक्तियों को ले आती है और यह चीज एक प्रकार की शक्ति है। (मौन) यह एकदम भौतिक स्पन्दनों को आकर्षित करनेवाली शक्ति है और उसमें उपयोग करने की क्षमता भी होती है और यह उसकी शक्ति को बढ़ा देती है—यह शारीरिक कसरत की तरह की चीज है, समझे—उपयोग के द्वारा यह इस शक्ति को बढ़ाती है।

उदाहरण के लिए, अगर इस शक्ति पर तुम्हारा अधिकार है—यह एक ऐसी शक्ति है जिसका रंग, प्राणमय जगत् में लाल, बहुत गहरे तेज़ लाल और गहरे, किन्तु न बहुत तेज़ और न हल्के सुनहरे रंग के बीच होता है। हां तो, जब यह शक्ति गतिशील या सञ्चारित होती रहे तो उसका बल बढ़ जाता है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे बिना उपयोग के इकट्ठा करके रखा जा सके। वह ऐसी शक्ति है जिसे हमेशा घूमते रहना चाहिये। उदाहरण के लिए, जो लोग कंजूस होते हैं, जो यथासम्भव सारी सम्पत्ति अपनी ओर खींचते और सारा धन इकट्ठा करते हैं वे इस शक्ति को उसकी गति की शक्ति का उपयोग किये बिना रख छोड़ते हैं; परिणामस्वरूप, या तो वह बच निकलती या सुन्न पड़ जाती है और अपना बल खो बैठती है।

*

दिसम्बर २००५

... धन एक शक्ति है, यह उसके सिवा कुछ नहीं। इसलिए किसी को व्यक्तिगत रूप से उसे अपने वश में रखने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह केवल शक्ति है, प्रकृति की और विश्व की अन्य सभी शक्तियों की तरह। अगर तुम प्रकाश को एक शक्ति के रूप में तो, किसी के दिमाग में यह बात न आयेगी कि वह कहे : "प्रकाश मेरा अधिकार है," और यह चाहे कि प्रकाश को अपने कमरे में बन्द कर दे, किसी और को न दे ! हां, धन से लोग ऐसे बौरा जाते हैं कि वे कल्पना करते हैं मानों यह कोई ऐसी चीज है जिसे वे अपने वश में कर सकते हैं, रख सकते हैं, मानों वह उनकी अपनी हो और जिसे वे अपनी निजी सम्पत्ति बना सकते हों। यह ठीक वही चीज है। मैं कागज़ के रूप में धन की बात नहीं कर रही। यह तो, स्वभावतः ऐसी बात होगी जैसे तुम्हारे दीपक की रोशनी। दीपक तुम्हारा हो सकता है और तुम कहते हो : "यह मेरा प्रकाश है।" धन, तुम्हारे नोट, तुम्हारे चांदी के टुकड़े तुम्हारा धन हैं। परन्तु ये धन नहीं हैं। इन सबके पीछे एक शक्ति होती है, विनिमय की शक्ति जो धन है। वह किसी की नहीं होती। वह सबकी होती है। वह ऐसी चीज है जो सञ्चार से ही जीवित रह सकती है। अगर तुम उसका ढेर लगाना चाहो तो वह सड़ जाती है। यह ऐसा होगा जैसे तुम किसी बर्तन में पानी को बन्द कर दो और हमेशा रखना चाहो। कुछ समय के बाद तुम्हारा पानी बिलकुल सड़ जायेगा। धन के साथ भी यही बात है। लेकिन लोग अभी तक यह नहीं समझे हैं।

—श्रीमां

*

धन किसने बनाया—मनुष्यों ने या देवताओं ने?

मधुर मां, मनुष्यों ने ही तो धन बनाया है। फिर वह भागवत शक्ति कैसे है?

हुं! (हंसते हुए) यह तो ऐसा है जैसे तुम मुझसे कहो : पुरुष और स्त्री आदमी बनाते हैं, तो वह सार-रूप में भागवत कैसे हो सकता है? यह ठीक वही चीज है! सारी सृष्टि बाहरी रूप से, बाहरी चीजों से बनी है, लेकिन उनके पीछे भागवत शक्तियां होती हैं। जिन चीजों का मनुष्यों ने आविष्कार किया है—कागज़ या सिक्के या दूसरी वस्तुएं—ये सब केवल अभिव्यक्ति के साधन हैं—इससे बढ़कर कुछ नहीं...। मैं अभी कह चुकी हूं, वह स्वयं शक्ति नहीं है, वह उसकी भौतिक अभिव्यक्ति है, जैसा कि मनुष्यों ने उसे बनाया है। लेकिन यह शुद्ध रूप से परम्परा है। उदाहरण के लिए, ऐसे देश हैं जहां धन के बदले में छोटे-छोटे सीप दिये जाते हैं। ऐसे भी देश हैं जहां... किसी ने इस तरह की कहानी लिखी है : उत्तर में, धन का मतलब है मछली पकड़ने के लिये कंटिया; और धनी वह कहलाता है जिसके पास सबसे ज्यादा कंटिया हों। क्या तुम जानते हो कंटिया क्या चीज होती है?—लोहे के छोटे-छोटे कांटे जिनसे मछलियां पकड़ते हैं और जिन्हें धागे के सिरे से बांध दिया जाता है। अतएव, करोड़पति वह है जिसके पास सबसे ज्यादा कंटियां हों!

यह विशुद्ध रूप से परम्परा है। इसके पीछे है वह शक्ति जिसकी मैं बात कर रही हूं, हां, तो वह हर प्रकार से अभिव्यक्त होती है। उदाहरण के लिए, सोना भी... मनुष्यों ने सोने को अमुक मूल्य प्रदान किया है, क्योंकि सभी धातुओं में से यही है जो सबसे कम खराब होती है। इसे लगभग अनिश्चित काल तक रखा जा सकता

दिसम्बर २००५

और यही कारण है, इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं। लेकिन यह मात्र परम्परा है। प्रमाण यह कि जब कभी सोने की नयी खान मिलती है और उसकी खुदाई की गयी है तो सोने का मूल्य गिर गया है। यह तो मनुष्यों के बीच केवल रिवाज है। लेकिन धन को शक्ति देनेवाली चीज यह नहीं, वह उसके पीछे की शक्ति है। जैसा कि मैं अभी कह रही थी, यह ऐसी शक्ति है जिसमें किसी भी चीज को आकर्षित करने या उसका उपयोग करने की क्षमता है, सभी भौतिक चीजों को और...

तो इसका उपयोग रिवाज के अनुसार होता है। अब तो जानी-मानी बात है कि धन के लिए कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़े काम आते हैं जो मैले हो जाते हैं और जिन पर कुछ छपा रहता है। वे बिलकुल धनोन्मत्त होते हैं, बहुधा केवल आग सुलगाने के काम के होते हैं। लेकिन ये एक बहुत बड़ी सम्पत्ति माने जाते हैं। क्यों? क्योंकि यह एक परम्परा है। लेकिन जो व्यक्ति इसे आकर्षित करके किसी अच्छे काम के लिए उसका उपयोग करने में, इस जगत् के कल्याण को, इस जगत् के कल्याण और कुशलक्षेम को बढ़ाने में समर्थ है, उसे धन-शक्ति पर, यानी, धन के पीछे जो शक्ति है उस पर प्रभुत्व प्राप्त है।

*

यदि किसी मनुष्य में बहुत अधिक धन कमाने की शक्ति होती है तो क्या उसका यह अर्थ है कि उसे पार्थिव शक्तियों पर एक विशेष प्रकार का संयम प्राप्त है?

यह इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य किस प्रकार उसे कमाता है। यदि तुम उसे निकृष्ट पद्धतियों से प्राप्त करते हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हें नियन्त्रण प्राप्त है। परन्तु कोई व्यक्ति यदि, अति

सतर्कता के साथ अपने कर्तव्य का पालन करते हुए, देखता है कि धन उसके पास आ रहा है तो स्पष्ट ही इसका कारण यह है कि उसे इन शक्तियों पर एक प्रकार का अधिकार प्राप्त है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो धन को आकर्षित करने की शक्ति रखते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए उन्हें बेईमानी करने की ज़रा भी आवश्यकता नहीं होती। दूसरों को, कुछ कौड़ियां पाने के लिए भी, सभी प्रकार के उचित और अनुचित जोड़-तोड़ करने पड़ते हैं। अतएव हम नहीं कह सकते...। हम एक धनवान् को देखते हैं और सोचते हैं कि उसे अवश्य ही धन की शक्तियों पर अधिकार प्राप्त है—नहीं, आवश्यक रूप से नहीं। परन्तु कोई मनुष्य यदि पूर्णतः ईमानदार होता है और जिसे वह अपना कर्तव्य समझता है, उसे, धन कमाने की कोई परवाह न करके करता है, और फिर भी रुपया उसके पास आता है तो स्पष्ट ही उसका उन शक्तियों के साथ एक प्रकार का सादृश्य होता है।

—श्रीमां

उपयोगितावाद—एक आधुनिक बीमारी

लगभग एक शताब्दी से मानवजाति एक रोग से पीड़ित है जो अधिकाधिक बढ़ता ही दीख रहा है और आज वह अपनी चरम अवस्था पर आ पहुंचा है, इसे हम उपयोगितावाद कहते हैं। ऐसा लगता है कि चीजों और मनुष्यों को, परिस्थितियों और कर्म को, सबको, अनन्य रूप से उसी एक दृष्टिकोण से विचारा और सराहा जाता है। जिसकी कोई उपयोगिता नहीं, उसका कोई मोल नहीं। यह ठीक है कि जो उपयोगी है वह निरुपयोगी से बेहतर है, लेकिन पहले यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य किसे उपयोगी मानता है; उपयोगी

दिसम्बर २००५

किसके लिए? किसके प्रति? किसलिए?

और, उत्तरोत्तर, वे जातियां, जो अपने को सभ्य समझती हैं, उसी चीज को उपयोगी कहती हैं जो धन ला सके, कमा सके या पैदा कर सके, सबका निर्णय और मूल्यांकन उसी एक आर्थिक दृष्टिकोण से किया जाता है। मैं इसे ही उपयोगितावाद कहती हूं। यह रोग बहुत ही संक्रामक है, क्योंकि बच्चे भी इससे अछूते नहीं रहते।

उस उम्र में, जब कि सुन्दरता, भव्यता और पूर्णता के सपने संजोये जाने चाहियें, ऐसे सपने जो शायद सामान्य अर्थों से कहीं अधिक उदात्त होते हैं, निश्चय ही कुण्ठित और सामान्य बुद्धि से उच्चतर हैं, आजकल बच्चे पैसे के सपने देखते हैं और उसे कमाने के साधनों के बारे में चिन्तातुर रहते हैं।

इसी तरह, जब वे अपनी पढ़ाई के बारे में सोचते हैं, तो उस सब पर विचार करते हैं जो आगे चलकर उनके लिये उपयोगी हो सके, ताकि जब वे बड़े हों तो बहुत-सा धन कमा सकें।

और परीक्षाओं में सफल होने की तैयारी करना उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि डिप्लोमा, सर्टिफिकेट और उपाधि ही उन्हें उच्च पद प्राप्त करा सकते हैं। इनकी सहायता से वे धन भी खूब कमा सकते हैं।

उनके लिए पढ़ाई का न कोई और उद्देश्य है, न महत्त्व।

ज्ञान के लिए सीखना, प्रकृति और जीवन के रहस्यों को जानने के लिए पढ़ना, चेतना को विकसित करने के लिए अपने-आपको शिक्षित करना, आत्म-प्रभुत्व पाने के लिए स्वयं को अनुशासित करना, अपनी दुर्बलताओं, अक्षमताओं और अज्ञताओं का अतिक्रमण करने के लिए पढ़ना, जीवन में अधिक उच्च, विशाल, उदार और सच्चे उद्देश्य की ओर बढ़ने के लिए अपने-आपको तैयार करना... यह तो वे सोच ही नहीं सकते, इसे तो वे कपोल-कल्पना ही समझते हैं।

बस, एक ही चीज महत्त्वपूर्ण है—व्यावहारिक होना, धन कमाना सीखना और उसके लिए अपने-आपको तैयार करना।

*

क्या चेतना के सुधार से आदमी की आर्थिक स्थिति सुस्थिर हो जाती है?

‘चेतना के सुधार’ का मतलब है बढ़ी हुई, विशालतर चेतना, उसकी अधिक अच्छी व्यवस्था। तब परिणामस्वरूप बाहरी चीजों पर भी, जिनमें ‘आर्थिक स्थिति’ भी आ जाती है, ज्यादा अच्छा नियन्त्रण होगा। लेकिन स्वभावतः जब ‘ज्यादा अच्छी चेतना’ होगी तब व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के जैसी चीजों के साथ कम व्यस्त रहेगा।

—श्रीमां

धन को पुनः जीतना

श्रीमां के लिए धन को पुनः कैसे जीता जा सकता है?

आह !... यहां पर एक संकेत है। तीन वस्तुएं एक-दूसरी पर निर्भर करती हैं (श्रीअरविन्द ने कहा है) : आधिपत्य, धन और सेक्स। मैं समझती हूं कि ये तीनों परस्पराश्रित हैं और इनमें से किसी एक को सुनिश्चित रूप में जीतने के लिए इन तीनों को जीतना होगा—जब तुम एक को जीतना चाहते हो तो तुम्हें दूसरी दोनों को भी जीतना होगा। जबतक मनुष्य इन तीनों चीजों को—आधिपत्य पाने की कामना, धन की कामना और काम-तृप्ति की वासना को वश में नहीं कर लेता, तबतक वह सचमुच इनमें से किसी को दृढ़तापूर्वक और सुनिश्चित रूप में अधिकृत नहीं कर सकता। सच पूछा जाये तो संसार में, जैसा

दिसम्बर २००५

कि वह आजकल है, धन को इतना अधिक महत्त्व जो चीज देती है वह उतना अधिक स्वयं धन नहीं है; हम उन थोड़े-से मूर्खों की बात छोड़ दें जो धन को एकत्र करते और इसलिए खुश होते हैं कि वह उसका ढेर लगा सकते और उसे गिन सकते हैं; साधारणतया लोग धन से प्राप्त सुख-सन्तोषों के लिए ही धन की इच्छा करते और उसे प्राप्त करते हैं। वास्तव में इनमें लगभग एक प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध है। इन तीनों चीजों में से प्रत्येक का कामनाओं के जगत् में न केवल अपना निजी मूल्य है बल्कि वह अन्य दोनों पर टिकी होती है। मैंने तुमसे अपने उस अन्तर्दर्शन का वर्णन किया है, उस विराट् काले सर्प का जो संसार के धनागार पर, पार्थिव धन-सम्पत्ति पर पहरा दे रहा था—उसने कामावेग पर प्रभुत्व प्राप्त करने की मांग की थी। कारण, कुछ सिद्धान्तों के अनुसार, आधिपत्य की यथार्थ आवश्यकता इसी तृप्ति में जाकर समाप्त हो जाती है, और यदि कोई उस पर संयम पा जाये, यदि उसका मानव चेतना से उन्मूलन कर दे तो आधिपत्य की आवश्यकता तथा धन की कामना बहुत कुछ अपने-आप विलीन हो जायेगी। स्पष्ट ही, पार्थिव मानव जीवन की ये ही तीन महान् बाधाएं हैं और जबतक इन पर विजय नहीं मिल जाती तबतक मानव जाति के परिवर्तित होने की शायद ही कोई सम्भावना हो।

—श्रीमां

जब तुम्हारे पास बहुत धन हो

श्रीअरविन्द “धन रखने के कारण उत्पन्न आदतों के दुर्बलता-पूर्ण बन्धन” की चर्चा करते हैं।

जब तुम समृद्ध होते हो और तुम्हारे पास खर्च करने के लिए बहुत

सारा धन होता है, सामान्यतया तुम उसे ऐसी चीजों पर खर्च करते हो जो तुम्हारे लिए सुखद होती हैं, और तुम उन चीजों के अभ्यासी बन जाते हो, उन चीजों से आसक्त हो जाते हो, और यदि एक दिन धन चला जाता है, तुम उसका अभाव अनुभव करते हो, तुम खिन्न हो जाते हो, तुम दुःखी हो जाते हो और ऐसा अनुभव करते हो कि तुमने सब कुछ खो दिया है, क्योंकि अब तुम्हारे पास वे सब चीजें नहीं होतीं जिन्हें रखने का तुम्हें अभ्यास था। यह एक प्रकार का बन्धन है, एक तरह की दुर्बलतापूर्ण आसक्ति है। जो व्यक्ति बिलकुल अनासक्त होता है वह जब इन सब चीजों के बीच रहता है, तब यह सब उसके लिए ठीक होता है, और जब ये चीजें उसके पास नहीं होतीं तब भी ठीक ही होता है; वह इन दोनों अवस्थाओं के प्रति पूर्णतः उदासीन होता है। यही है समुचित मनोभाव; जब चीजें होती हैं तो वह उनका उपयोग करता है, जब नहीं रहती तो वह उनके बिना काम चला लेता है। और उसकी आन्तरिक चेतना में इससे कोई अन्तर नहीं आता। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होता है, पर बात ऐसी ही है।

*

आदमी के पास जितना अधिक धन हो उतनी ही अधिक आवश्यकताएं होती हैं...

मेरे बालक, आदमी के पास जितना अधिक पैसा होता है, वह उतनी ही अधिक मुसीबत की अवस्था में होता है, हां, यह एक मुसीबत है।

पैसा होना एक महान् विपत्ति है। वह तुम्हें मूढ़ बना देता है, वह तुम्हें कंजूस बना देता है, वह तुम्हें दुष्ट बना देता है। यह संसार की सबसे बड़ी मुसीबतों में से है। धन एक ऐसी चीज है जो तुम्हारे पास तबतक न होनी चाहिए जबतक तुम कामनारहित न हो जाओ। जब

दिसम्बर २००५

तुम्हारे अन्दर कामना न रहे, जब तुम्हारे अन्दर आसक्तियां न रहें, जब तुम्हारी चेतना धरती के समान विशाल हो जाये, तब सारी धरती का धन तुम्हारे पास हो सकता है। वह सभी के लिए बहुत अच्छा होगा। ... गरीब होने की अपेक्षा अमीर होने पर अच्छा होना, समझदार होना, बुद्धिमान् और उदार होना, अधिक उदार होना—समझ रहे हो न—कहीं अधिक कठिन है। मैंने बहुत-से देशों में बहुत-से लोग देखे हैं। और सभी देशों में मुझे जो सबसे अधिक उदार लोग मिले वे सबसे गरीब थे। जैसे ही जेबें भर जाती हैं कि एक तरह की बीमारी तुम्हें आ पकड़ती है, वह है धन के लिए एक घिनौनी आसक्ति। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, यह एक अभिशाप है।

अतः, जैसे ही तुम्हारे पास धन आये तो करने लायक पहली चीज यह है कि उसे दे दो। लेकिन जैसा कि कहा जाता है, विवेक के बिना मत दो। उन लोगों की तरह मत करो जो परोपकार करते हैं क्योंकि वे अपनी भलाई से, अपनी उदारता से और अपने महत्त्व से भरे होते हैं। तुम्हें सात्त्विक ढंग से क्रिया करनी चाहिये, यानी, यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा उपयोग करो। और फिर, हर एक को अपनी चेतना में सबसे ऊंची स्थिति में यह खोजना चाहिये कि उसके धन का अच्छे-से-अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। और सञ्चारण के बिना धन का कोई मूल्य नहीं। हर एक के लिए और सबके लिए धन का मूल्य तभी है जब वह खर्च किया जाये।...

ऐसे देश हैं और ऐसे धर्म हैं जो हमेशा यह कहते हैं कि भगवान् जिन लोगों से प्यार करते हैं उन्हें गरीब बना देते हैं। मुझे नहीं मालूम कि यह सच है या नहीं। लेकिन एक बात सच्ची है कि, निश्चय ही, जब कोई जन्म से धनवान् होता है या बहुत धनाढ्य बन जाता है, जब उसके पास भौतिक सम्पत्ति की दृष्टि से बहुत कुछ होता है तो, निश्चय ही, यह इस बात का सूचक नहीं है कि भगवान् ने उसे

अपनी भागवत 'कृपा' के लिए चुना है। अगर वह सच्चे मार्ग पर भगवान् की ओर चलना चाहे, तो उसे परिमार्जन करना होगा...

यह शक्ति उन लोगों के हाथों में जानी चाहिये जो उसका यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना जानते हों, यानी, जैसा कि मैंने पहले कहा है, उन लोगों के हाथों में जिन्होंने किसी प्रकार सभी व्यक्तिगत कामनाओं और सभी आसक्तियों से अपने-आपको मुक्त कर लिया है या उन्हें किसी तरह निकाल बाहर किया है। इसमें हम धरती की आवश्यकताओं को समझने कि लिये पर्याप्त रूप से विशाल अन्तर्दृष्टि को जोड़ सकते हैं, साथ ही, एक ऐसे ज्ञान को, जो इतने पर्याप्त रूप में पूर्ण हो, जोड़ सकते हैं जो सभी आवश्यकताओं को व्यवस्थित करना जानता हो और इस शक्ति को उन उपायों से काम में लाना जानता हो।

अगर, इसके अलावा; इन लोगों में श्रेष्ठतर आध्यात्मिक ज्ञान हो, तो वे इस शक्ति का उपयोग धरती पर थोड़ा-थोड़ा करके उस चीज का निर्माण करने के लिए कर सकते हैं जो दिव्य 'सामर्थ्य', 'शक्ति', और 'कृपा' को अभिव्यक्त करने योग्य होगी। और तब, धन की, समृद्धि की यह शक्ति, यह आर्थिक बल, जिसके बारे में मैंने अभी कहा है कि वह एक अभिशाप की तरह है, वही सबके भले के लिए परम आशीर्वाद बन जायेगा।

चूँकि मेरा ख्याल है कि अच्छी-से-अच्छी चीजें सबसे बुरी बन जाती हैं, शायद बुरी-से-बुरी चीजें ही अच्छी-से-अच्छी बन सकती हैं। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि बुरे-से-बुरे लोग ही अच्छे-से-अच्छे बनते हैं। मैं आशा करती हूँ कि अच्छे-से-अच्छे लोग बुरे-से-बुरे नहीं बन जायेंगे, क्योंकि यह दुःखद होगा!

लेकिन अन्ततः, निश्चय ही, बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी, यदि उसका दुरुपयोग किया जाये, तो वह एक बहुत बड़ी मुसीबत बन सकती है,

दिसम्बर २००५

जब कि वही बहुत बड़ी शक्ति, यदि उसका सदुपयोग किया जाये तो आशीर्वाद बन सकती है। सब कुछ इस पर निर्भर है कि तुम चीजों का उपयोग कैसे करते हो। जगत् में हर चीज का एक स्थान है, एक उपयोग है, एक सच्चा उपयोग है, और अगर उसे किसी और काम में लगाया जाये तो इससे अव्यवस्था पैदा होती है, गड़बड़झाला होता है, अन्ध व्यवस्था आती है। और चूंकि जगत् में, जैसा कि वह है, बहुत ही कम चीजें ऐसी हैं जिन्हें उनके सच्चे उपयोग के लिए काम में लाया जा रहा है, इसलिए, बहुत ही कम चीजें हैं जो अपने सच्चे स्थान पर हैं। और चूंकि संसार एक भीषण अव्यवस्था में है, इसीलिए ये सब दुःख और ये सब कष्ट हैं। अगर हर चीज अपने स्थान पर एक सामञ्जस्यपूर्ण सन्तुलन में होती, तो समस्त संसार अब जिस दुःख और कष्ट की अवस्था में है उसमें होने की आवश्यकता के बिना प्रगति कर पाता।

ऐसी कोई चीज नहीं है जो अपने-आपमें बुरी हो, लेकिन ऐसी बहुत-सी चीजें हैं—प्रायः सभी—जो अपने स्थान पर नहीं हैं।

—श्रीमां

वैराग्य

... उस सार्वजनिक अन्ध-विश्वास को ले लो जो समस्त जगत् में फैला हुआ है कि वैरागी जीवन और योग एक ही हैं। यदि तुम किसी को योगी अथवा योगिनी कहकर उसका वर्णन करो तो तुरत उस व्यक्ति के बारे में लोग यही कल्पना करने लगेंगे कि वह व्यक्ति कोई ऐसा होगा जो खाता नहीं अथवा सारे दिन एक ही आसन पर बिना हिले-डुले बैठा रहता है, किसी कुटिया में अत्यन्त दरिद्रतापूर्वक रहता है, जिसने अपना सब कुछ दे दिया है और अपने लिए कुछ

भी नहीं रखा। जब किसी आध्यात्मिक मनुष्य के सम्बन्ध में किसी से कुछ कहा जाता है तो सौ में निन्यानबे आदमियों के मन में उस व्यक्ति के सम्बन्ध में इसी प्रकार का चित्र खिंच जाता है, इसके लिए आध्यात्मिकता का एकमात्र सबूत है दरिद्रता तथा सुखद या आरामदेह चीजों से परहेज़। यह एक मानसिक रचना है और यदि तुम आध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार और अनुसरण करने के लिए स्वतन्त्र होना चाहते हो तो इसे नष्ट करना होगा। कारण, आध्यात्मिक जीवन में तुम सच्ची अभीप्सा के साथ प्रवेश करते हो और चाहते हो कि तुम अपनी चेतना और जीवन में भगवान् से मिलो तथा उनका साक्षात्कार करो; तब तुम एक ऐसे स्थान पर जा पहुंचते हो जिसे किसी तरह भी कुटिया नहीं कहा जा सकता और वहां तुम्हारी एक ऐसे आध्यात्मिक पुरुष से भेंट होती है जो सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, सब कुछ खाते हैं, उनके चारों ओर सुन्दर या अमीरी चीजों का ठाठ है, जो कुछ उनके पास है उसे वे गरीबों को बांट नहीं देते, बल्कि जो लोग भेंट चढ़ाते हैं उसे स्वीकार करते और उसका उपभोग करते हैं। यह देख कर तुम अपने बंधे हुए मानसिक नियम के अनुसार तुरत घबरा जाते और चिल्ला उठते हो : “क्यों, यह सब क्या है? मैंने तो सोचा था कि मेरी भेंट किसी योगी से होगी!” इस मिथ्या धारणा को तोड़ कर गायब कर देना चाहिये। यह धारणा चली जाये तो तुम्हें कुछ ऐसी चीज प्राप्त होगी जो तुम्हारे वैराग्य के संकीर्ण सिद्धान्त से बहुत श्रेष्ठ है, तुम्हारा पूर्ण आत्मोद्घाटन हो सकेगा जिसके फलस्वरूप तुम्हारी सत्ता मुक्त रहेगी। यदि कोई चीज प्राप्त होती हो तो उसे स्वीकार करो और यदि उसी चीज को छोड़ देना हो तो उसी तत्परता के साथ छोड़ दो। अगर चीजें आयें तो उन्हें स्वीकार करो और अगर चली जायें तो जाने दो और लेते और छोड़ते समय समता की वही मुस्कान बनी रहे।

दिसम्बर २००५

जब तुम भगवान् के पास जाते हो तो तुम्हें समस्त मानसिक प्रारणाओं को त्याग देना चाहिये; किन्तु, इसके बदले, तुम अपनी प्रारणाओं को भगवान् पर लादना चाहते हो और चाहते हो कि वे उनका अनुसरण करें। योगी के लिए सच्चा भाव तो केवल यही है कि वह नमनशील हो और भगवान् की ओर से जो भी आदेश मिले उसका पालन करने के लिए तैयार रहे; उसके लिए कुछ भी अनिवार्य न हो और उसे कोई चीज भार न लगे। अक्सर जो लोग आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हैं उनका पहला आवेश यही होता है कि उनके पास जो कुछ हो उसे फेंक दें; किन्तु अपना सब कुछ भगवान् के अर्पण करने के लिए नहीं, एक बोझ से छुटकारा पा जाने के लिए। जिनके पास धन है तथा जिनके इर्द-गिर्द अमीरी और भोग की सामग्रियाँ हैं, वे जब भगवान् की ओर मुड़ते हैं तो तुरत उनकी प्रवृत्ति इन सब चीजों से दूर भागने की ओर होती है,—अथवा, जैसा कि वे कहते हैं : “इनके बन्धन से बच निकलने” की होती है। परन्तु यह गलत प्रवृत्ति है, तुम्हें यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि जो चीजें तुम्हारे पास हैं वे तुम्हारी हैं—वे तो भगवान् की हैं। यदि भगवान् चाहते हैं कि तुम किसी चीज का उपभोग करो तो उपभोग कर लो; किन्तु दूसरे ही क्षण, यदि उसे छोड़ना पड़े तो उसके लिए भी प्रसन्नचित्त तैयार रहो।

—श्रीमां

धन और भविष्य

संसार में एक ऐसा स्थान होना चाहिये... जहाँ सभी सद्भावना-वाले लोग, जिनके अन्दर सच्ची अभीप्सा हो, स्वतन्त्रता से रह सकें... और एक ही अधिकार को मानें; परम सत्य के अधिकार को, वह शान्ति, एकता और सामञ्जस्य का स्थान होगा जहाँ मनुष्य की सारी

युद्ध-वृत्तियों का उपयोग दुःख और दर्द को जीतने में, अपनी कमजोरियों और अज्ञान पर प्रभुत्व प्राप्त करने में, तथा अपनी सीमाओं और अशक्यताओं पर विजय प्राप्त करने में होगा; ऐसा स्थान जहां मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोद की अपेक्षा आत्मा की आवश्यकताओं और प्रगति को अधिक महत्त्व दिया जायेगा...। इस स्थान पर सेवा करने और संगठित करने के अवसर उपाधियों और पदों का स्थान ले लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा किया जायेगा। सामान्य अवस्था में मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवन के सुखों व शक्तियों के बढ़ावे में नहीं, बल्कि कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों की वृद्धि में अभिव्यक्ति पायेगी। सभी लोगों को सभी प्रकार का कलात्मक सौन्दर्य, चित्रकला, शिल्प, संगीत, साहित्य आदि समान रूप से प्राप्य होगा। इस कलात्मक सौन्दर्य का आनन्द प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों के बल पर नहीं, बल्कि अपनी आन्तरिक क्षमताओं के अनुपात में प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि इस आदर्श स्थान में धन सम्राट् नहीं होगा; भौतिक सम्पत्ति तथा सामाजिक पद की अपेक्षा व्यक्तित्व का अधिक मूल्य होगा। यहां पर, काम आजीविका के लिए नहीं, बल्कि अपने-आपको अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए होगा, साथ ही यह काम पूरे समुदाय के लिए भी होगा। दूसरी ओर, समुदाय हर एक के निर्वाह तथा कार्यक्षेत्र का प्रबन्ध करेगा। संक्षेप में, यह ऐसा स्थान होगा जहां मानव सम्बन्ध, जो प्रायः ऐकान्तिक रूप से प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित होते हैं, अधिक अच्छा करने की स्पर्धा तथा सहयोग में और भातृ-भाव में बदल जायेंगे।

—श्रीमां

दिसम्बर २००५

व्यापार और योग

मैं यह कह सकता हूँ कि प्राचीन आध्यात्मिक भारत में व्यापार को जितनी बुरी या दूषित वस्तु माना जाता था उससे ज़रा भी अधिक बुरी या दूषित वस्तु मैं नहीं समझता। यदि मैं समझता तो मुझे 'अ' से अथवा बम्बई में पूर्व अफ्रीका के साथ व्यापार करनेवाले अपने शिष्यों से धन न मिल पाता; और न तब मैं उन्हें अपना व्यापार करते रहने के लिए प्रोत्साहित ही कर पाता बल्कि तब मुझे उनसे यह कहना होता कि इसे छोड़ो और केवल अपनी आध्यात्मिक उन्नति की ओर ध्यान दो। तब मैं कैसे 'अ' की आध्यात्मिक ज्योति की खोज और उसकी कपड़े की मिल में सामञ्जस्य बैठाऊँ? क्या मुझे उससे यह नहीं कह देना चाहिये कि अपनी मिल को स्वयं उसी के भरोसे और शैतान के हाथों में छोड़ दो और किसी आश्रम में जाकर ध्यान करो? यदि स्वयं मुझे भी व्यापार करने का आदेश मिला होता, जैसा कि मुझे राजनीति में जाने का आदेश मिला था, तो ज़रा भी आध्यात्मिक या नैतिक मनस्ताप के बिना मैंने उसे अवश्य किया होता। सब कुछ निर्भर करता है उस भाव पर जिसके साथ कोई कार्य किया जाता है, उन सिद्धान्तों पर जिन पर वह कार्य आधारित होता है और उस व्यवहार पर जिसकी ओर वह कार्य प्रयुक्त होता है। मैंने राजनीतिक कार्य किया है और अत्यन्त उग्र प्रकार का क्रान्तिकारी राजनीतिक, 'घोरं कर्म', किया है और मैंने युद्ध का समर्थन किया है और उसमें लोगों को भेजा है, यद्यपि राजनीति सर्वदा या बहुधा कोई बहुत निर्दोष कार्य नहीं होती और न युद्ध को ही कोई आध्यात्मिक कर्म कहा जा सकता है। परन्तु कृष्ण अर्जुन को अत्यन्त भयंकर प्रकार का युद्ध करने के लिए पुकारते हैं और उसके उदाहरण के द्वारा मनुष्यों को हर प्रकार का मानवीय कर्म,

‘सर्वकर्माणि’, करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। क्या तुम दृढ़तापूर्वक यह कहते हो कि कृष्ण कोई आध्यात्मिक पुरुष नहीं थे और अर्जुन को दी हुई उनकी सलाह गलत थी या सिद्धान्ततः गलत थी? कृष्ण तो और आगे जाते और यह घोषित करते हैं कि यदि कोई मनुष्य अपनी मूल प्रकृति, स्वभाव और क्षमता द्वारा अधिप्रेरित कर्म को समुचित तरीके और समोचित मनोभाव के साथ तथा अपने और उस कर्म के धर्म के अनुसार करे तो वह भगवान् की ओर अग्रसर हो सकता है। वे ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही वैश्य के कर्म और धर्म का समर्थन करते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य के लिए यह बिलकुल सम्भव है कि वह व्यापार करे, धन कमाये, लाभ-अर्जन करे और फिर भी आध्यात्मिक पुरुष बना रहे, योग का अभ्यास करे, आन्तरिक जीवन प्राप्त करे। गीता निरन्तर आध्यात्मिक मुक्ति के साधन के रूप में कर्मों का समर्थन करती और भक्ति तथा ज्ञान के साथ-साथ कर्मों के योग का निर्देश देती है। परन्तु कृष्ण इस उच्चतर विधान को भी सबसे ऊपर स्थान देते हैं कि कर्म बिना कामना के, किसी फल या पुरस्कार के प्रति आसक्ति रखे बिना, किसी अहंकारपूर्ण मनोभाव या उद्देश्य के बिना, भगवान् की पूजा के रूप में, उनको अर्पित यज्ञ के रूप में करना होगा। इन चीजों के प्रति यही परम्परागत भारतीय मनोभाव है कि सभी कर्म किये जा सकते हैं यदि वे धर्म के अनुसार किये जायें और, यदि उन्हें समुचित ढंग से किया जाये तो वे भगवान् को प्राप्त करने से या आध्यात्मिक ज्ञान तथा आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने से नहीं रोकते।

निस्सन्देह, एक संन्यासी-भाव भी है जो बहुतों के लिए आवश्यक है और आध्यात्मिक परम्परा में जिसका अपना स्थान है। मैं स्वयं भी यह कहूंगा कि कोई व्यक्ति यदि त्यागभाव के साथ जीवन नहीं बिता सकता अथवा निःस्व वैरागी के जीवन के जैसे दरिद्र जीवन का

दिसम्बर २००५

नुसरण नहीं कर सकता तो वह आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण नहीं हो
 सकता। स्पष्ट ही, धन और धन कमाने की लालसा का उसके स्वभाव
 उसी तरह अभाव होना चाहिये जिस तरह भोजन के लोभ या
 दूसरे किसी लोभ का अभाव होना चाहिये तथा इन चीजों की समस्त
 आसक्ति का परित्याग उसकी चेतना से हो जाना चाहिये। परन्तु, मैं
 जीवन की संन्यासी-पद्धति को आध्यात्मिक परिपूर्णता के लिए अनिवार्य
 अथवा उसके साथ अभिन्न नहीं मानता। एक आध्यात्मिक आत्मप्रभुत्व
 का मार्ग है और भगवान् के प्रति आध्यात्मिक आत्मदान तथा
 आत्मसमर्पण का मार्ग है जिसमें कर्म के बीच भी या किसी प्रकार के
 कर्म का या सभी प्रकार के कर्म का, जिसकी मांग भगवान् हमसे
 करते हैं, अहंकार और कामना का त्याग किया जा सकता है। यदि
 ऐसा न होता तो भारत में जनक या विदुर जैसे महान् आध्यात्मिक
 पुरुष न हुए होते और फिर कोई कृष्ण भी न हुए होते अथवा कृष्ण
 वृन्दावन और मथुरा और द्वारका के स्वामी अथवा राजा और योद्धा
 और कुरुक्षेत्र के सारथी न हुए होते। बल्कि एक अधिक महान् संन्यासी
 हुए होते। भारतीय शास्त्र और भारतीय परम्परा महाभारत तथा अन्य
 ग्रन्थों में भी, जीवन के त्याग-रूप आध्यात्मिकता तथा कर्ममय
 आध्यात्मिक जीवन, दोनों को स्थान देती है। कोई यह नहीं कह
 सकता कि केवल एक ही भारतीय परम्परा है और जीवन तथा सब
 प्रकार के कर्मों को, 'सर्वकर्माणि' को, स्वीकार करना अ-भारतीय,
 यूरोपियन या पाश्चात्य और अनाध्यात्मिक है।

—श्रीअरविन्द

भौतिक वस्तुओं का रख-रखाव

अत्यन्त थोड़े समय में भौतिक वस्तुओं को अनियन्त्रित रूप में बरबाद करना और असावधानी के साथ नष्ट करना, शिथिलतावश अव्यवस्थित रखना, चाहे प्राणिक लोभ या तामसिक जड़ता के वश चीजों का दुर्व्यवहार करना समृद्धि के लिए घातक है और धन-शक्ति को दूर भगा देता या निरुत्साहित करता है। ये चीजें दीर्घकाल से समाज में प्रचलित हैं और, यदि ये बनी रहें तो, हमारे साधनों में वृद्धि होने का भली-भांति अर्थ होगा उसी अनुपात में वस्तुओं की बरबादी, और कुव्यवस्था में भी वृद्धि और उससे स्थूल-भौतिक सुयोग-सुविधा व्यर्थ हो जायेगी। यदि कोई ठोस प्रगति करनी हो तो इसका इलाज अवश्य होना चाहिये।

स्वयं वैराग्य के ही लिए वैराग्य इस योग का आदर्श नहीं है, परन्तु प्राण-स्तर में आत्मसंयम तथा भौतिक स्तर में समुचित व्यवस्था उसके बहुत महत्त्वपूर्ण अंग हैं—और यहाँतक कि हमारे उद्देश्य के लिए सच्चे संयम के बेरोक अभाव की अपेक्षा वैराग्यपूर्ण अनुशासन कहीं अधिक अच्छा है। भौतिक वस्तुओं पर प्रभुत्व पाने का अर्थ यह नहीं है कि प्रचुर मात्रा में उन्हें पाया जाये और उन्हें अधिक-से-अधिक बाहर फेंक दिया जाये अथवा जितनी तेज़ी से वे आये उतनी ही तेज़ी से अथवा उससे भी अधिक तेज़ी से उन्हें नष्ट कर दिया जाये। प्रभुत्व के अन्दर यह भी शामिल है कि वस्तुओं का उचित और सावधानीपूर्वक व्यवहार किया जाये और उनके व्यवहार में भी आत्म-संयम बनाये रखा जाये।

*

स्थूल वस्तुएं घृणा करने के लिए नहीं हैं—उनके बिना इस स्थूल

दिसम्बर २००५

जात में कोई भगवदभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

*

प्रत्येक भौतिक वस्तु में एक चेतना है जिसके साथ मनुष्य सम्पर्क साध सकता है। प्रत्येक वस्तु की, मकान, मोटरगाड़ी, साज-सामान आदि की एक प्रकार की व्यष्टि-सत्ता होती है। प्राचीन युग के लोग इसे जानते थे और इसलिए वे प्रत्येक भौतिक वस्तु में एक आत्मा या “अधिदेवता” देखते थे।

—श्रीअरविन्द

सरल बनो

जैसे ही किसी अभिव्यक्ति में से समस्त प्रयास का लोप हो जाता है वह बहुत सरल बन जाती है, वैसी ही सरल जैसे कोई पुष्प बिना शोर-शराबे या प्रबल आवेग के सहज ही खिलता है तथा अपने सौन्दर्य को अभिव्यक्त करता है और अपनी सुगन्ध फैलाता है। इसी सरलता में महानतम शक्ति है, वह शक्ति जिसमें कम-से-कम मिलावट होती है और जो हानिकारक प्रतिक्रियाओं को कम-से-कम प्रकट करती है...।

सरलता, सरलता! तेरी उपस्थिति की पवित्रता कितनी मधुर है!...

*

सृष्टि का एक विशेष पक्ष है—जो शायद बहुत आधुनिक भी हो सकता है—वह है अव्यवस्था तथा अस्तव्यस्तता, असामञ्जस्य और

अस्तव्यस्तता से बच निकलने की आवश्यकता : ऐसी अस्तव्यस्तता, ऐसी अव्यवस्था जो हर सम्भव रूप ग्रहण कर लेती है, जो संघर्ष, निरर्थक प्रयास, अपव्यय बन जाती है। यह उस स्तर पर निर्भर है जिसमें तुम हो, लेकिन भौतिक जगत् में, क्रिया में, इसका अर्थ है निरर्थक जटिलताएं, गलतफ़हमियां, घपला, अव्यवस्था। वेद में इसे ही 'वक्रता' कहा जाता था—मुझे इस शब्द का पर्याय नहीं मालूम, एक ऐसी चीज जो विकृत है, जो सीधे लक्ष्य की ओर जाने की बजाय तेज़ तथा अनावश्यक टेढ़े-मेढ़े रास्ते लेती है। यह उस विशुद्ध भागवत क्रिया के सामञ्जस्य की सबसे अधिक विरोधी वस्तुओं में से एक है जिस भागवत क्रिया में सरलता है...

*

तथाकथित मानव बुद्धि की समस्त जटिलताओं के ऊपर भागवत कृपा की ज्योतिर्मय सरलता रहती है, और वह कार्य करने को तत्पर है, अगर हम उसे करने दें।

—श्रीमां

सोसायटी समाचार

२३ फरवरी से ५ मार्च २००६ तक डॉ. मंगेश नडकर्णी पॉण्डिचेरी में सोसायटी के 'बीच ऑफिस' में सावित्री-अध्ययन-सत्र करेंगे। ये सत्र अंग्रेज़ी में सवेरे ९ बजे से ११.४५ तक चलेंगे। सभी का इस निःशुल्क सत्र में स्वागत है।

सन् २००६ के जनवरी अंक में सभी सदस्यों को पत्रिका के साथ नये वर्ष के जेबी कैलेंडर सहित एक पृष्ठचित्र भेजा जायेगा जिस

दिसम्बर २००५

श्रीअरविन्द का एक सन्देश उद्धृत होगा। जो शाखाएं और केन्द्र अधिक मात्रा में इन जेबी कैलेण्डरों का आदेश देना चाहते हैं वे अधिक जानकारी के लिए कृपया श्रीअरविन्द सोसायटी, बीच ऑफिस, रंगपिल्लिन्ड स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी-६०५००१ से सीधा पत्र-व्यवहार करें।

अगस्त तथा सितम्बर के महीनों में श्री गोपाल भट्टाचार्यजी ने जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा अमरीका का दौरा किया। जर्मनी के Weinheim शहर में १३ अगस्त को श्रीअरविन्द की वर्षगांठ का महोत्सव मनाया गया, जहां वे मुख्य अतिथि थे। अमरीका में उन्होंने एक वर्कशॉप का भी आयोजन किया जिसमें ध्यान, चेतना, आध्यात्मिकता इत्यादि विषयों पर भाषण हुए।

केन्द्रों तथा शाखाओं के समाचार

हरदा (मध्य प्रदेश) में ३ तथा ४ सितम्बर को युवा-शिविर का आयोजन किया श्री कैवल्य स्मार्त ने। इसमें १९ युवाओं ने हिस्सा लिया। तिरुपति (आन्ध्रप्रदेश) में १२ सितम्बर को श्रीअरविन्द के पवित्र देहावशेष पधराये जाने की छठी जयन्ती मनायी। सोसायटी के डॉ. आलोक पाण्डे ने भी इसमें हिस्सा लिया।

कोयम्बटूर (तमिलनाडु) में १७ तथा १८ सितम्बर को डॉ. आलोक पाण्डे ने अंग्रेजी में श्रीमां तथा श्रीअरविन्द का योग, सत्ता के स्तर और उनका समन्वीकरण, समर्पण इत्यादि विषयों पर भाषण दिये। भाषणों के बाद प्रश्नोत्तर का सिलसिला भी चला।

चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) केन्द्र में १७ तथा १८ सितम्बर को 'युवा विकास' नामक शिविर का आयोजन श्री कैवल्य स्मार्त की निगरानी में हुआ। इसमें भाग लेनेवालों ने युवकों के बारे में श्रीमां तथा श्रीअरविन्द के दृष्टिकोण को जाना, सराहा। शिविर बहुत ही सफल रहा।

पुरोधे तथा अग्निशिखा के हमारे ग्राहकों के लिए
नयी रियायती दरें :

अग्निशिखा			पुरोधे		अग्निशिखा एवं पुरोधे	
वर्ष	दरें		दरें		दरें	
	पुरानी	नयी	पुरानी	नयी	पुरानी	नयी
१	४०	४०	५०	५०	९०	८५
३	१२०	११०	१५०	१४०	२७०	२४०
५	२००	१८०	२५०	२३०	४५०	४००
१०	४००	३५०	५००	४५०	९००	७५०
२०	८००	६५०	१०००	८५०	१८००	१४५०
२५	१०००	८००	१२५०	१०५०	२२५०	१८००

नशिखा

सम्बर २००५

WITH BEST
COMPLIMENTS
FROM

एवं

नयी

८५

२४०

४००

७५०

९४५०

९८००

Spintex Private Limited

01, Harsha House, Karampura Comml. Complex
New Delhi - 110015 (INDIA)

Phone No.: 91-11-25920530, 25920531, 25920532

Fax: 91-11-25920536, 25920537

E-Mail: spintex@del.3.vsnl.net.in / spintex1@vsnl.net

Url: www.spintexgroup.com

के सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश का सर्वोत्तम आदर्श शिक्षण संस्था
श्रीमां-श्रीअरविन्द के शिक्षा दर्शन पर आधारित आवासीय शिक्षण संस्था



अमर नाथ विद्या आश्रम

सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल, मथुरा
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली से संबन्धित

स्थापित—१९६१

- ◆ पूज्या मां के आशीर्वाद से पुष्पित-पल्लवित सह-शिक्षण संस्था।
- ◆ नर्सरी से कक्षा १२ तक शिक्षण एवं आवास व्यवस्था
- ◆ श्रीमां एवं श्रीअरविन्द के शिक्षादर्शन पर आधारित भारतीय जीवन मूल्यों की संस्कारयुक्त शिक्षा।
- ◆ प्राचीन, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिकतम ज्ञान विज्ञान के मध्य सुखद समन्वय।
- ◆ बालक के सर्वांगीण विकास हेतु समस्त संसाधन, समर्पित शिक्षण आश्रम तुल्य पवित्र वातावरण।
- ◆ प्रतिवर्ष शिक्षण सत्र १ अप्रैल से तथा पंजीकरण २० जनवरी प्रारम्भ।
- ◆ प्रोस्पेक्टस मूल्य रु. १५०/- डाक द्वारा रु. २००/-

आदित्य कुमार वाजपेयी

प्रधानाचार्य

सम्पर्क :

अमरनाथ विद्या आश्रम सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल,
पवित्र वाजपेयी मार्ग, मथुरा—२८१००९ (उत्तर प्रदेश)

Web site: ava.ac.in

☎ 0565- 2462200 (कार्यालय) 2404734 (छात्रावास)

3095238 (शिशु-विभाग) 2461595 (फैक्स)

e-mail: amarnath_mtr@rediffmail.com,

aditya_vajpeyi@rediffmail.com

OF
TITUT
G U.P.
संस्था

ण सं

मथु
मे संव

था।

जीव

म ज्ञा

शिक्ष

तवरी

तपेय

ताचा

स्कूल,
(ग)

स)

n

